'हिन्दी में रिपोर्ताज की परम्परा और प्रयोग : एक मूल्यांकन'

'HINDI MEIN REPORTAZ KI PARMPARA AUR PRAYOG: EK MULYANKAN'
AN EVALUATION OF TRADITION AND APPLICATION OF REPORTAZ IN HINDI

(पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध)

शोध–निर्देशक
प्रो. ओमप्रकाश सिंह

शोधार्थी
सुशील कुमार यादव

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2017

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School Of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत, New Delhi-110067, India

Dated: 9.11.17

DECLARATION

I hereby declare ;that the research work done in this Ph.D Thesis entitle- **"HINDI MEIN REPORTAZ KI PARMPARA AUR PRAYOG : EK MULYANKAN (AN EVALUATION OF TRADITION AND APPLICATION OF REPORTAZ IN HINDI)"** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

SUSHIL KUMAR YADAV
(Research Scholar)

PROF. OMPRAKASH SINGH
(Supervisor)

PROF. GOBIND PRASAD
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

''पता नहीं प्रभु हैं या नहीं
किन्तु उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।''

(अंधा युग : धर्मवीर भारती)

अनु

एवं

अभ्युदय

के लिए.....

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका **i-v**

अध्याय– एक : रिपोर्ताज का स्वरूप विश्लेषण **1–61**

1.1 रिपोर्ताज : अर्थ एवं आशय

1.2 रिपोर्ताज और रिपोर्ट

1.3 रिपोर्ताज और गद्य की अन्य नवीन विधाएँ

कहानी

यात्रा–वृत्तांत

रेखाचित्र

संस्मरण

अध्याय – दो : हिन्दी रिपोर्ताज की परंपरा और विकास **62–103**

2.1 हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव

2.2 स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति

2.3 स्वतंत्रता पश्चात हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति

अध्याय – तीन : हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य का कथ्य विश्लेषण **104–164**

3.1 प्राकृतिक आपदाएँ

3.2 मानवजनित समस्याएँ

3.3 यांत्रिक दुर्घटनाएँ

3.4 साहित्यिक समस्याएँ

3.5 ऐतिहासिक तथ्य

अध्याय – चार : हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य : युगीन संदर्भ और जीवन मूल्य **165–222**

4.1 देशप्रेम

4.2 स्वतंत्रता

4.3 जीवन के प्रति दृष्टिकोण

4.4 मानवीय संवेदना

4.5 जीवनानुभव

अध्याय – पाँच : रिपोर्ताज विधा का शिल्पगत वैशिष्ट्य **223–257**

5.1 कथ्य की नवीनता

5.2 शब्द योजना

5.3 बिम्ब और प्रतीक विधान

5.4 भाषा

उपसंहार **258–263**

संदर्भ ग्रंथ सूची **264–273**

भूमिका

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की शुरुआत गद्य विधाओं के साथ होती है। यूँ तो आधुनिक युग नाटक, कहानी और उपन्यास के लेखन एवं विकास की बात करता है परन्तु कुछ विधाएँ ऐसी रही हैं जिनमें जीवन की प्रामाणिक घटनाएँ, तथ्य, ब्यौरे तथा अतीत संबंधी स्मृतियाँ अपने मूल रूप में हमारे सामने आती हैं। इन्हीं विधाओं ने हमें कथा से इतर गद्य विधाओं के साथ जोड़ा है। ये विधाएँ न सिर्फ अतीत बल्कि वर्तमान और भविष्य में होने वाले परिवर्तन का भी आगाज करती हैं। रिपोर्ताज ऐसी ही आधुनिक कथेतर विधा है जिसमें जीवन की घटनाएँ, तत्कालीन समाज एवं परिस्थितियाँ न सिर्फ अपने प्रामाणिकता के साथ हमारे समक्ष उपस्थित हो पाती हैं बल्कि उनमें मौजूद गहन संवेदनात्मक अनुभूति पाठक के हृदय को विचलित भी करती है। इन्हीं संवेदनाओं एवं यथार्थपरकता ने रिपोर्ताज विधा को लोकप्रिय बनाया है और आने वाले समय के लिए शोध संबंधी चुनौतियाँ भी खड़ी की हैं।

रिपोर्ताज विधा मानवीय मूल्यों की पक्षधर है, फिर भी अपने उद्‌भव काल से उपेक्षित सी रही है जिसका मूल कारण है उसके साहित्य, शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक आलोचना का अभाव। रिपोर्ताज विधा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को देखते हुए ही मेरे मन में जिज्ञासा हुई कि इस विधा की महत्ता का आकलन किया जाए और उन सभी पहलुओं पर बात की जाए जो आज भी अपना प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं पा सके हैं।

इस कार्य के चयन से लेकर सामग्री की खोज एवं प्रामाणिक तथ्यों एवं बिन्दुओं का अवलोकन करना अनुभव के एक नए संसार से गुजरना था। रिपोर्ताजों में व्यक्त संवेदना और भिन्न–भिन्न बिन्दुओं पर तथ्यों की एकजुटता को रेखांकित करना इस कार्य की नवीनता बन गई है। मैंने यह भरसक प्रयास किया है कि अब तक रिपोर्ताज विधा जिन तथ्यों एवं भावों से अछूती थी उन्हें नवीन दृष्टि के साथ सुधी जनों के सम्मुख प्रस्तुत करूँ। फिर भी प्रयास में बहुत कुछ छूट गया है। मेरा यह कार्य सुधी जनों को रिपोर्ताज विधा संबंधी अनुभूतियों एवं तथ्यों से प्रभावित कर पाया हो, तो मेरा यह प्रयास सफल होगा।

प्रस्तुत शोध प्रबंध पाँच अध्यायों में नियोजित है। प्रथम अध्याय में रिपोर्ताज के स्वरूप को तथ्य बिन्दुओं में विभक्त कर तर्कसंगत रूप में विश्लेषित किया गया है। रिपोर्ताज की व्युत्पत्ति और परिभाषा के विश्लेषण के क्रम में नवीन स्थापनाओं को प्रस्तुत किया गया है। रिपोर्ताज विधा, पत्रकारिता की ही देन है। यह रिपोर्ट से किन–किन बिन्दुओं में अलग है एवं गद्य की अन्य नवीन विधाओं से समानता रखते हुए अपनी विशिष्ट पहचान किस प्रकार बना पाई है, यह दिखलाने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में मैंने हिन्दी रिपोर्ताज की परंपरा और विकास पर बात की है। यह सच है कि कोई भी विधा अचानक अस्तित्व में नहीं आती। जब जीवन को देखने और समझने की दृष्टि बदल जाती है तो अभिव्यक्ति के पुराने ढंग सीमित प्रतीत होने लगते हैं। इस अध्याय के अंतर्गत हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज का प्रस्थान बिन्दु, प्रारंभिक रिपोर्ताज एवं उन समस्त कारकों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है जिनकी वजह से इस क्रांतिकारी विधा का आविर्भाव हुआ। मैंने यह बताने का भी प्रयास किया है कि रिपोर्ताज की विकास परंपरा किन रास्तों से होकर एक महत्त्वपूर्ण विधा में परिणत हो सकी।

तृतीय अध्याय हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य के कथ्य को विश्लेषित करता है। कथ्य विश्लेषण के माध्यम से यह रेखांकित करने का प्रयास किया गया है कि रिपोर्ताज समाचारों का इतिवृत्तात्मक वर्णन मात्र नहीं होता अपितु उसमें उस देश की प्राकृतिक, मानवजनित, ऐतिहासिक, यांत्रिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का अनुभूतिजन्य वर्णन भी होता है। रिपोर्ताज विधा का विषय–विस्तार किसी और विधा की अपेक्षा व्यापक होता है। विषय–विस्तार के साथ–साथ संवेदना भी विस्तार पाती है। स्वतंत्रता पूर्व के रिपोर्ताजों में गरीबी, बेरोजगारी, सांप्रदायिकता, औद्योगिकरण और इससे उपजी मानव–त्रासदी जैसे स्वातंत्र्योत्तर विषय भी रिपोर्ताज की परिधि में विस्तार पाते हैं।

शोध कार्य का चौथा अध्याय रिपोर्ताज साहित्य के अंतर्गत बदलते युग के साथ–साथ बदलते जीवन मूल्यों की बात करता है। रिपोर्ताज विधा के माध्यम से समसामयिकता के प्रति आग्रह तथा संघर्षकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ

को तत्काल शब्दों में बाँध दिया जाता है जिससे युगीन संदर्भ हमारे सम्मुख अपने यथार्थ रूप में तीव्रता के साथ वर्णित हो पाते हैं। देशप्रेम, स्वतंत्रता, मानवीय संवेदना तथा बदलते जीवन के अनुभव मानव जीवन के साथ व्यापक रूप से जुड़े होते हैं।

पंचम अध्याय के अंतर्गत मैंने रिपोर्ताज विधा के शिल्पगत वैशिष्ट्य को रेखांकित करने का प्रयास किया है। रिपोर्ताज साहित्य का शिल्प किसी बँधे–बँधाए मार्ग का अनुसरण नहीं करता। कथ्य वैविध्य की भाँति ही इसकी शिल्पगत विशिष्टता सिर्फ अचंभित ही नहीं करती, बल्कि नए आयामों को तलाशती भी है। रिपोर्ताज साहित्य की अपनी एक शैली विकसित हुई है जिसे रिपोर्ताज शैली भी कह सकते हैं, यही तथ्य उजागर किया गया है। विषय–वस्तु को व्यक्त करने का नया ढंग, अनुरूप शब्द योजना की आयोजना की तलाश की गई है। प्रसंगानुकूल भाषा एवं बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से रिपोर्ताज की शिल्पगत विशिष्टता को अनन्य पहचान के रूप में लक्षित किया गया है।

अंत में उपसंहार में हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज की परंपरा और उसके प्रभाव पर बात की गई है। इसमें रिपोर्ताज साहित्य के समग्र विश्लेषित बिन्दुओं एवं उनकी संभावनाओं पर विवेचना करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश हुई है कि हिन्दी का आधुनिक युग निश्चित रूप से हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य से न सिर्फ प्रभावित रहा है अपितु हिन्दी कथेतर साहित्य के विकास में इस विधा का महत्त्वपूर्ण योगदान शामिल है। शोध प्रबंध इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भले ही रिपोर्ताज लेखन रिपोर्ट, पत्रकारिता आदि से परस्पर प्रभावों को आदान–प्रदान या प्रभावित करता रहा है लेकिन अनुभूतिजन्य गहनता या आनुभूतिक संवेदना और शिल्पगत वैशिष्ट्य रिपोर्ताज की अपनी महती उपलब्धि है।

शोध विषय के चयन के साथ–साथ उसकी रूपरेखा बनाने से लेकर प्रत्येक अध्याय को बाँधने में आदरणीय गुरुवर ने भरपूर सहायता दी। उन्होंने समय–समय पर न सिर्फ शोध–कार्य के लिए प्रोत्साहित किया बल्कि अपने बहुमूल्य सुझावों से मेरा मार्गदर्शन किया। आदरणीय गुरुवर के लिए कृतज्ञता व्यक्त करके उसे शब्दबद्ध करना धृष्टता होगी।

हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो. कमलेश कुमार गुप्त और दीदी का स्नेहाशीष मेरा मार्गदर्शन करता रहा है। उन्हें आभार व्यक्त करना, उनके स्नेह से वंचित होना होगा।

मैं पिताजी और अम्मा के प्रति कृतज्ञ हूँ। उनके विश्वास और आशीर्वाद ने ही इस कार्य को पूरा करने को प्रेरित किया।

अनुपमा एवं अभ्युदय के सानिध्य में यह शोध कार्य अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ। अभ्युदय ने अपने अमूल्य समय को मुझे देकर इस कार्य को पूर्ण करने में अनूठा सहयोग दिया है। नंदन एवं मोना का भी ऋणी हूँ जिन्होंने समय–समय पर प्रोत्साहित किया है। साथ ही उन सभी मित्रों का शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य में सहयोग दिया।

अंत में मैं श्री हरेन्द्र सिंह जी को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने लंबे समय से इस कार्य को अंतिम रूप देने में पूर्ण सहयोग किया।

–सुशील

अध्याय– एक

रिपोर्ताज का स्वरूप विश्लेषण

1.1 रिपोर्ताज : अर्थ एवं आशय

1.2 रिपोर्ताज और रिपोर्ट

1.3 रिपोर्ताज और गद्य की अन्य नवीन विधाएँ

कहानी

यात्रा–वृत्तांत

रेखाचित्र

संस्मरण

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य की विधाओं के विकास का काल है। इस काल में एक तरफ उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक और आलोचना का विकास गद्य की विधाओं के रूप में हुआ तो दूसरी तरफ जीवनी, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र, इंटरव्यू, रिपोर्ताज आदि नवीन कथेतर गद्य की विधाएं भी विकसित हुईं। साहित्य की विधा को गणित या विज्ञान की तरह न तो पारिभाषित किया जा सकता है और न ही उसके बारे में कोई अंतिम निर्णय ही दिया जा सकता है। ऐसा इसलिए कि साहित्य एक ओर तो अपनी परंपराओं से जुड़ा है; और दूसरी ओर उसमें प्रयोग की अनेक संभावनाएं भी निहित हैं। फिर भी अध्ययन को सुव्यवस्थित तथा अन्य विधाओं से इसका अंतर स्थापित करने के लिए परिभाषा की आवश्यकता पड़ती है। रिपोर्ताज हिन्दी गद्य की नव्यतम विधा है। रिपोर्ताज को परिभाषित करने से पूर्व 'रिपोर्ताज' शब्द के अर्थ और प्रयोग को समझना अनिवार्य है।

1.1 रिपोर्ताज : अर्थ और आशय

'रिपोर्ताज' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, जिसका प्रचलन सर्वप्रथम रूसी साहित्य में हुआ। इस शब्द को रूसी साहित्य में प्रचलित करने का श्रेय 'इलिया एलेनवर्ग को है जो सैनिकों के साथ मोर्चे पर गए और वहां से आंखों देखे वृत्तांत के आधार पर आशु–निबंध पत्रों में प्रकाशित कराते रहे।[1] विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. हरवंशलाल शर्मा, माजदा असद, डॉ. ओम प्रकाश सिंहल, डॉ. रामचंद्र तिवारी, अजित कुमार, डॉ. मक्खनलाल शर्मा और कैलाशचंद्र भाटिया ने 'रिपोर्ताज' को फ्रांसीसी भाषा का शब्द माना है। विजयेन्द्र स्नातक का विचार है 'रिपोर्ताज फ्रांसीसी शब्द है जो किसी सीमा तक अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' का समानार्थी है।''[2] डॉ. हरवंशलाल शर्मा 'रिपोर्ताज' शब्द को विदेशी मानते हुए कहते हैं –'रिपोर्ताज' शब्द फ्रांसीसी भाषा से हिन्दी में आया और इसी रूप में प्रचलित है।''[3]

माजदा असद 'रिपोर्ताज' का अंग्रेजी अर्थ 'रिपोर्ट' मानती हैं। उनका मानना है ''यह फ्रांसीसी शब्द है जिसका अर्थ अंग्रेजी में रिपोर्ट है। हिन्दी ने इस शब्द को इसके फ्रांसीसी मूल रूप में अपना लिया है।[4]

डॉ. ओम प्रकाश सिंहल भी रिपोर्ताज को फ्रांसीसी भाषा का शब्द मानते हैं। उनके अनुसार– 'रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है तथा इसकी गणना नव्यतम साहित्य रूपों के अंतर्गत की जाती है।''[5]

डॉ. रामचंद्र तिवारी के मत से '' रिपोर्ताज विदेशी शब्द है। फ्रेंच भाषा के रिपोर्ताज शब्द को हिन्दी में प्रचलित कर दिया गया है।''[6]

हिन्दी साहित्य कोश में भी रिपोर्ताज को फ्रांसीसी भाषा का शब्द बताया गया है। अजित कुमार के विचार से 'रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है।''[7]

डॉ. मक्खनलाल शर्मा और कैलाशचंद्र भाटिया भी रिपोर्ताज को फ्रांसीसी भाषा का शब्द मानते हैं। 'रिपोर्ताज (सूचनिका) मूलतः फ्रांसीसी भाषा का शब्द है[8] और यह अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट का समानार्थी ही है जिसमें किसी घटना का यथातथ्य वर्णन किया जाता है।[9]

हिन्दी में रिपोर्ताज शब्द को प्रचलित करने का श्रेय डॉ. रांगेय राघव, शिवदान सिंह चौहान और प्रकाशचंद्र गुप्त प्रभृत विद्वानों को है। हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज शब्द रूसी भाषा से लिया गया क्योंकि 'इस शब्द का पर्यायी संस्कृत तथा किसी भारतीय भाषा में नहीं है।[10]

भगवतीचरण वर्मा के अनुसार 'रिपोर्ताज' अंग्रेजी शब्द है। जबकि डॉ. वीरपाल वर्मा फ्रेंच में रिपोर्ताज शब्द के प्रचलन को तो स्वीकार करते हैं किन्तु हिन्दी में प्रयुक्त 'रिपोर्ताज' शब्द को अंग्रेजी के 'रिपोर्ताज' से व्युत्पन्न मानते हैं।[11] अपने तर्क को उचित ठहराने के लिए डॉ. वीरपाल वर्मा लिखते हैं– ''रिपोर्टाज शब्द हिन्दी में 10–11 वर्षों तक रिपोर्ताज ही रहा। किन्तु हिन्दी भाषा की ध्वन्यात्मक प्रवृत्ति ने उसे धीरे–धीरे 'रिपोर्ताज' बना दिया। जैसे अक्टूबर से अक्तूबर या रेस्टोरेन्ट से रेस्तरां''[12]

डॉ. वीरपाल वर्मा का तर्क सत्य नहीं प्रतीत होता। विजयेन्द्र स्नातक, माजदा असद, डॉ. मक्खनलाल शर्मा आदि के 'रिपोर्ताज' शब्द संबंधी विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'रिपोर्ताज', अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट का समानार्थी है, न कि 'रिपोर्ताज' से व्युत्पन्न। रिपोर्ताज विधा के आदि लेखक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिन्दी में

प्रयुक्त रिपोर्ताज शब्द को रूसी साहित्य की देन मानते हैं। वे कहते हैं– ''इस विधा के लिए रिपोर्ताज नाम रूसी के माध्यम से हिन्दी ने लिया।''[13]

'रिपोर्ताज' शब्द का रूसी के माध्यम से हिन्दी में आना प्रमाणित करता है कि यह फ्रांसीसी भाषा का शब्द है न कि अंग्रेजी के 'रिपोर्टाज' से बना रिपोर्ताज।

साहित्य समीक्षकों और रिपोर्ताजकारों ने 'रिपोर्ताज' को अपने–अपने तरीके से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। इसी कारण 'रिपोर्ताज' के लिए अनेक शब्द प्रचलित हुए। शिवदान सिंह चौहान के विचार से 'रिपोर्ताज' एक रिपोर्ट है।''[14] जबकि प्रकाश चंद्र गुप्त रिपोर्ताज को 'तीव्र भावना में रंगी साहित्यिक रिपोर्ट मात्र'[15] मानते हैं। रिपोर्ताज न तो 'रिपोर्ट' है और न ही 'रिपोर्ट मात्र'। यह सत्य है कि रिपोर्ताज का संबंध पत्रकारिता से है, पर वह 'रिपोर्ट' और 'रिपोर्ट' मात्र से आगे मानवीय मूल्यों से संपृक्त साहित्य विधा है।

डॉ. सिस्टर क्लेमेंट मेरी ने रिपोर्ताज के लिए 'आशु–निबंध'[16] शब्द का प्रयोग किया है और कन्हैयालाला मिश्र प्रभाकर' ने 'निबंधात्मक गद्य काव्य'[17] का। रिपोर्ताज, निबंध की भावभूमि को स्पर्श करता है। इन दोनों विधाओं में यथार्थ, विवरण को प्रधानता आदि तत्त्व समान रूप से पाए जाते हैं, पर रिपोर्ताज को निबंध नहीं कह सकते। समसामयिक घटनाओं पर आधारित होने के कारण रिपोर्ताज में समसामयिकता अधिक होती है, जबकि निबंध के लिए समसामयिक होना आवश्यक नहीं है। रिपोर्ताज घटना प्रधान है, इसलिए इसमें वैयक्तिकता के लिए विशेष जगह नहीं होती जबकि निबंध निजी भावभूति और स्वच्छंद विचारों से ओत–प्रोत होता है। रिपोर्ताज को 'आशु निबंध' और 'निबंधात्मक गद्य काव्य' नहीं कह सकते।

प्रभाकर माचवे ने 'आंखों देखी रपट' और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'आंखो देखा हाल' जैसे शब्द रिपोर्ताज के लिए प्रयुक्त किए हैं। रिपोर्ताज यथार्थ घटनाओं पर आधारित होता है क्योंकि 'रिपोर्ताज लेखक के लिए घटना का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक है।' किन्तु कभी–कभी कल्पना, कला और प्रतिभा के बल पर 'कानों सुनी घटनाओं पर रिपोर्ताज लिखा जा सकता है।' अतः रिपोर्ताज के लिए ये शब्द भी उपयुक्त नहीं है।

तारिणीचरण दास, डॉ. हरवंशलाल शर्मा, भगीरथ मिश्र, बालकृष्ण राव के अनुसार इस गद्य विधा का नाम रिपोर्ताज है। मक्खनलाल शर्मा ने रिपोर्ताज को 'सूचनिका' शब्द से अभिव्यक्त किया है। सूचनिका शब्द से सूचना का आभास होता है जबकि रिपोर्ताज 'सूचना' मात्र नहीं अपितु रिपोर्ताज 'मनुष्य के प्रति सहज सुलभ आकर्षण तथा पीड़ित मानवता के प्रति गहरी संवेदना का ज्ञान है। अतः 'सूचनिका' शब्द 'रिपोर्ताज' के अर्थ को अभिव्यक्त नहीं कर पाता है। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार–

''कुछ विद्वानों ने इस विधा के लिए विदेशी शब्द को न अपनाकर हिन्दी का अपना 'सूचिका' शब्द प्रयोग करना चाहा। संभवतः डॉ. भगीरथ मिश्र ने सर्वप्रथम ऐसा प्रयास किया। किन्तु सूचनिका शब्द अभी तक सर्वग्राह्य और लोकप्रिय नहीं हुआ है। न ही यह शब्द अभी तक रिपोर्ताज की बैसाखियों के बिना चल पा रहा है। जहां कहीं भी सूचनिका शब्द का उल्लेख हुआ है वहां रिपोर्ताज शब्द भी अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कोष्ठक में दे दिया गया है।''[18]

शब्द प्रयोग

'रिपोर्ताज' के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है, परन्तु प्रामाणिक दृष्टि से सफल नहीं हो सका है। रिपोर्ट, रिपोर्ट मात्र, आशु–निबंध, निबंधात्मक गद्य काव्य, आंखों देखा हाल, आंखो देखी रपट और सूचनिका आदि शब्द रिपोर्ताज के लिए अभिव्यक्त होते रहे हैं; लेकिन अर्थ की दृष्टि से ये सीमित हैं। यद्यपि इन शब्दों के प्रयोग से इस विधा की कोई–न–कोई विशेषता उभर कर सामने आयी फिर भी रिपोर्ताज विधा के लिए ये शब्द उपयुक्त नहीं हैं। रिपोर्ताज विधा द्वितीय विश्वयुद्ध की देन है। युद्ध की विभीषिका से उपजे इस शब्द की शुरुआत रूसी साहित्य में सर्वप्रथम साहित्य प्रारंभ हुआ। हिन्दी साहित्य का प्रथम रिपोर्ताज 'वेदों की खोज' माना जाता है। यह सर्वप्रथम ब्राह्मणसर्वस्व पत्रिका के जनवरी 1927 के अंक में प्रकाशित हुआ। कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर ने इस शब्द को 1926 में प्रयोग के तौर पर लिया। उस समय इस विधा के लिए रिपोर्ताज शब्द का प्रचलन हिन्दी में न होने के कारण रिपोर्ताज को 'निबंधात्मक गद्य काव्य' कहना पड़ा। यद्यपि यह प्रमाणित हो गया है कि 'रिपोर्ताज' शब्द रूसी साहित्य से हिन्दी में आया, इस

स्थिति में यदि हम मिश्र जी की बातों पर ध्यान दें तो इस विधा के लिए 'रिपोर्ताज' शब्द की उपयुक्तता प्रमाणित हो जाएगी। वे लिखते हैं– ''इस रिपोर्ताज को लिखकर ऐसा मालूम होता है मेरे विकसित हो रहे मन में यह प्रश्न उठा कि यह है क्या? साहित्यिक भाषा में यों कि अपनी इस कृति के संबंध में मेरी जिज्ञासा विधात्मक थी कि यह लेख नहीं है, कहानी भी नहीं; गद्य काव्य भी नहीं है, तो फिर है क्या? रिपोर्ताज शब्द तब तक उपजा न था, तो मेरी उस समय की बुद्धि ने इसे 'निबंधात्मक गद्य काव्य' कहा और यह कथन मुझे इतना मौलिक लगा कि मैंने इसे 'वेदों की खोज' इस शीर्षक के नीचे उपशीर्षक की तरह लिखना आवश्यक समझा।[19]

बहुमान्य है कि 'रिपोर्ताज' शब्द इस विद्या के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। 'रिपोर्ताज' फ्रेंच शब्द है जिसे हिन्दी साहित्य ने इसी रूप में अपना लिया गया है। यह शब्द इस विद्या के लिए रूढ़ हो गया है। हिन्दी के लगभग सभी समीक्षक और शोधकर्ता इसी शब्द का प्रयोग करते हैं।

परिभाषा

रिपोर्ताज संघर्षशील विधा है। अन्य साहित्य विधाओं की तरह रिपोर्ताज को भी परिभाषित करना कठिन है। साहित्यिक और मानवीय मूल्य परिवर्तित होते रहते हैं। इन बदलते मूल्यों को पकड़ने में जब अन्य गद्य विधाएं असमर्थ हो जाती हैं, तब रिपोर्ताज उनका गहन विवेचन और विश्लेषण करता है। यही वजह है कि रिपोर्ताज को एक निश्चित परिभाषा में बांधना, इसको सीमित करना होगा। विधागत अध्ययन के क्रम में रिपोर्ताजकारों एवं साहित्यकारों ने इसकी परिभाषा सुनिश्चित करने का प्रयास किया है। इन परिभाषाओं से गुजरते हुए और इनका विवेचन विश्लेषण करते हुए ही हम रिपोर्ताज को परिभाषित करने का प्रयास करेंगे।

रिपोर्ताज में कलात्मकता को अनिवार्य मानते हुए डॉ. कमला सिन्हा लिखती हैं–

''जब किसी संस्थिति या घटना का हूबहू वर्णन प्रस्तुत कर दिया जाता है और उसके प्रस्तुतीकरण में कलात्मकता आ जाती है, तब वह रिपोर्ताज कहलाता

है।''[20] यह परिभाषा कलात्मकता की बात तो करती है किन्तु कलात्मकता के साथ–साथ मानवीय मूल्यों और घटना के प्रभाव को अनदेखा करती है। बालकृष्ण राव समसामयिकता को रिपोर्ताज के लिए अनिवार्य मानते हैं और इसमें वर्णित होने वाली घटनाओं को कथात्मक शैली में प्रस्तुत किए जाने का आग्रह करते हैं। वर्णित घटना को सत्य और तथ्य पर आधारित मानते हुए वे कहते हैं–

''किसी घटना की कलात्मक एवं रस–संवेद्य साहित्यिक रिपोर्ट को ही रिपोर्ताज कहते हैं। इसमें घटनाएं इतनी भाव संवेद्य बना दी जाती हैं कि पाठक रसमग्न हो 'जाये।'[21] बालकृष्ण राव की परिभाषा डॉ. कमला सिन्हा से अलग नहीं है। ये कलात्मकता के साथ रसमयता को समाहित करते हुए रिपोर्ताज को सिर्फ साहित्यिक रिपोर्ट भर मानते हैं। मानवीय मूल्य को इन्होंने भी महत्त्व नहीं दिया है। यदि मानवीय मूल्य को रिपोर्ताज से अलग कर दिया जाये तो वीरगाथा काल के रसमय साहित्य को हमें इस विधा का आदि साहित्य मानना पड़ेगा। समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले समसामयिक घटनाओं की कलात्मक रिपोर्ट को भी हम रिपोर्ताज नहीं कह सकते हैं। मानवीय मूल्य जैसे तत्त्वों के अभाव में वह सिर्फ साहित्यिक रिपोर्ट हो सकती है। दूसरी बात यह कि साहित्यकार संवाददाता हो, आवश्यक नहीं।

डॉ. मक्खनलाल शर्मा रिपोर्ट और रेखाचित्र के सम्मिलित रूप को रिपोर्ताज मानते हैं। रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए वे लिखते हैं– ''रिपोर्ट का सीधा संबंध समाचार पत्र से होता है। जब इस रिपोर्ट में कलात्मक तत्त्व तथा साहित्यिकता का समावेश हो जाता है तभी इसे रिपोर्ताज की संज्ञा उपलब्ध हो पाती है। रिपोर्ट और रेखाचित्र को मिला दें तो रिपोर्ताज का रूप सामने आ जाता है।''[22] उपरोक्त दोनों परिभाषाओं से यह परिभाषा साम्य रखती है। मक्खनलाल शर्मा कलात्मकता और साहित्यिकता की बात करते हुए रिपोर्ताज को रिपोर्ट और रेखाचित्र का समन्वित रूप मानते हैं। रिपोर्ट में घटना का वर्णन होता है जबकि रेखाचित्र में चरित्र या व्यक्ति का चरण किया जाता है। रिपोर्ताज घटना प्रधान होता है चरित्र प्रधान नहीं। किन्तु जैसे–जैसे रिपोर्ताज विधा विकसित होती गयी, शैली का भी विकास हुआ। अब किसी–किसी रिपोर्ताज में चरित्र–चित्रण भी किया जाने लगा। अतः यह

परिभाषा मौलिक नहीं है फिर कुछ सीमा तक रिपोर्ताज शब्द को परिभाषित करने में समर्थ है।

रमेश कुंतल मेघ रिपोर्ताज को सूचनात्मक मानते हैं। रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए वे लिखते हैं– ''वैसे रिपोर्ताज का संबंध वर्तमान से होता– जिनमें लेखक छोटी–छोटी घटनाओं के वातावरण में अपने अंतर्वेगों द्वारा पाठक को प्रभावित करता है। ये सूचनात्मक तथा तरंगात्मक होते हैं। अद्यतन विकास के कारण इनमें काल्पनिक घटनाएं जुडने लगी हैं, कला संधान अतीतापेक्षी भी हो गया है– तथा चरित्र भी संलग्न किए जाने लगे हैं।''[23] इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि रिपोर्ताज विकसित विधा है जो काल और चरित्र का अतिक्रमण कर चुकी है। यह विधा इतनी विकसित होते हुए सिर्फ सूचनात्मक कैसे हो सकती है और काल्पनिक घटनाओं को केन्द्र मानकर प्रामाणिक रिपोर्ताज की रचना संभव नहीं है। रिपोर्ताज में यथार्थ घटनाओं का वर्णन किया जाता है। यह परिभाषा रिपोर्ताज के अद्यतन विकास की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है पर रिपोर्ताज न तो सिर्फ सूचनात्मक हो सकता है और न ही कल्पना आधारित।

रिपोर्ताज का जन्म पत्रकारिता से हुआ है। इसको परिभाषित करने में रिपोर्ट, संवाददाता और समाचार पत्र का उल्लेख होना स्वाभाविक है। डॉ. जीवन प्रकाश जोशी ने रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए कहा है कि संवाददाताओं की रिपोर्ट जब अपनी शैली में कुछ साहित्यिकता का समावेश कर लेती है तब वह रिपोर्ताज कहलाती है।''[24] यह रिपोर्ताज की सामान्य परिभाषा है जिसमें दो बातों पर आपत्ति दर्ज की जा सकती है। प्रथम; 'शैली में कुछ साहित्यिकता का समावेश' कर लेने से कोई रिपोर्ट रिपोर्ताज नहीं हो सकता, क्योंकि रिपोर्ताज विधा का विकसित साहित्य शास्त्र है। दूसरा, प्रत्येक रिपोर्ताजकार संवाददाता हो यह आवश्यक नहीं।

प्रकाशचंद्र गुप्त रिपोर्ताज का जन्म संघर्ष के क्षणों में मानते हैं। इसलिए वे रिपोर्ताज को अवकाश के समय में लिखा जाने वाला साहित्य नहीं मानते। उनके अनुसार –''रिपोर्ताज तीव्र भावना में रंगी साहित्यिक रिपोर्ट मात्र होता है। इस विधा का जन्म संघर्ष की खंदकों में हुआ है। इन्हें वर्डस्वर्थ की काव्य भावनाओं के समान शांति के क्षणों में लिखने के लिए छोड़ देने का अवकाश नहीं होता।''[25] यह

परिभाषा दोषयुक्त है। रिपोर्ताज सिर्फ साहित्यिक रिपोर्ट मात्र नहीं होता। वर्डसवर्थ की कविताओं के साथ तुलना करने पर रिपोर्ताज की उपलब्धि का पता चलता है और सीमा का भी। यह परिभाषा रिपोर्ताज को स्वतंत्र रूप से परिभाषित नहीं करती।

डॉ. रामविलास शर्मा, रिपोर्ट से रिपोर्ताज को उद्‌भूत मानते हैं। वे कहते हैं– ''किसी घटना या घटनाओं का ऐसा वर्णन करना कि वस्तुगत सत्य पाठक के हृदय को प्रभावित कर सके, रिपोर्ताज कहलाएगा। कल्पना के सहारे कोई रिपोर्ताज लेखक नहीं हो सकता।''[26] यह परिभाषा रिपोर्ताज की यथार्थता, घटना प्रभावान्विति आदि तत्त्वों की ओर संकेत करती है, फिर भी रिपोर्ताज में सिर्फ घटना और संवेदना ही नहीं है। संप्रेषणीयता और समसामयिकता जैसे तत्त्वों की पुष्टि इस परिभाषा से नहीं हो पाती।

डॉ. सिस्टर क्लेमेंट मेरी रिपोर्ताज को समसामयिकता से जोड़ते हुए परिभाषित करती हैं –रिपोर्ताज वस्तु या घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया पर आधारित होता है और उसमें प्रत्यक्ष साक्षात्कार की अनुभूति रहती है। वह प्रमुखतः वर्णनात्मक है परन्तु उसमें हर्षोल्लास, करुणा तथा अवसाद जैसे संवेदनों की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त स्थान रहता है। घटना का यथावत वर्णन और तद्‌विषयक लेखक का उत्साह, ये दोनों तत्त्व मिलकर ही रिपोर्ताज का निर्माण करते हैं।''[27] यह परिभाषा रिपोर्ताज की समसामायिकता, प्रत्यक्षानुभूति, सवेदनशीलता, यथार्थता आदि तत्त्वों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। डॉ. क्लेमेंट मेरी की परिभाषा रिपोर्ताज की स्वतंत्रता पर विशेष जोर देती है।

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रिपोर्ताज में रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक अस्तित्त्व को स्वीकार करते हैं। वे रिपोर्ताज को तत्काल घटित होने वाली यथार्थ घटनाओं का चलचित्र भी मानते हैं। उनके अनुसार– ''रिपोर्ताज वस्तुगत सत्य को प्रभावशाली बनाता है, उसका संबंध सिर्फ वर्तमान से होता है किन्तु उसका लेखक वर्तमान के उस बिन्दु पर होता है जिसमें भूतकालीन मूल्य और भावनाएं रहती हैं और भविष्य के प्रति उत्कट लालसा भी। अतः रिपोर्ताज में सर्वत्र एकहरा वर्णन नहीं होता। इसमें लेखक की गूढ़ चेतना के उलझते हुए भी और अपने में चिंतन और

अनुभव से संवलित शब्द और वाक्य अनायास ही सम्मिलित होते चलते हैं और साथ ही आमूलचूल स्पंदित भावकण क्षण–प्रति–क्षण घटने वाली वास्तविकता का मानवीय संदर्भ देते चलते हैं।''[28] यह परिभाषा रिपोर्ताज को वर्तमान, अतीत और भविष्य तीनों से जोड़ते हुए मानवीय मूल्य, यथार्थ, समसामयिक आदि तत्त्वों की ओर हमारा ध्यान ले जाती है जिसमें लेखक संकलित शब्दों और वाक्यों के द्वारा अपने प्रत्यक्ष अनुभव और चिंतन की अभिव्यक्ति करता है। रिपोर्ताज स्फूर्ति और रसमयता का तत्त्व होता है जिस पर इसकी संप्रेषणीयता निर्भर करती है। चिंतन और अनुभव से संकलित शब्द और वाक्य लेखक की गूढ़ चेतना को बोझिल बनाकर दर्शन के करीब ला सकते हैं जिससे रिपोर्ताज की संप्रेषणीयता प्रभावित होगी। इस परिभाषा में रिपोर्ताज की स्फूर्ति और रसमयता जैसे तत्त्वों की अवहेलना हुई है।

भगवतीचरण वर्मा रिपोर्ताज का जन्म पत्रकारिता के विकास क्रम में मानते हैं। वे रिपोर्ताज को सिद्धांततः एक शिथिल विधा हैं जिसमें मानव के भावनात्मक संघर्ष को प्रमुखता नहीं दी जाती। रिपोर्ताज को मूल रूप से किसी वातावरण के प्रस्तृतीकरण की विधा मानते हुए वर्णनात्मकता को वे रिपोर्ताज का मूल मानते हैं। उनके अनुसार– ''रिपार्ताज का क्षेत्र मूल रूप से वातावरण होता है, वह वातावरण व्यक्तियों के क्रमों की उपज भले ही हो, लेकिन व्यक्ति रिपोर्ताज में वातावरण का भाग भर होता है। व्यक्तियों के कर्म तथा आपसी टकराव की प्रक्रिया को रिपोर्ताज में सम्मिलित तो किया जाता है लेकिन इन्हें प्रमुखता नहीं मिलती, प्रमुखता मिलती है केवल वातावरण को। रिपोर्ताज मूल रूप से वर्णनात्मक विधा है। शब्दों के माध्यम से वातावरण को प्रस्तुत करना, उस वातावरण की सामूहिक घटनाओं तथा सामूहिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं का चित्रण करना– इस क्रम में थोड़ी बहुत भावनात्मक अभिव्यक्ति रिपोर्ताज में आ जाती है।''[29] इस परिभाषा में वातावरण और वर्णनात्मकता को विशेष प्रमुखता मिली है। जिससे अन्य तत्त्व स्वयं ही बाहर हो गए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि रिपोर्ताज साहित्यिक विधा न होकर, पत्रकारिता का विकसित रूप है। यह सत्य है कि रिपोर्ताज में चरित्र–चित्रण को प्रमुखता नहीं दी जाती किन्तु संवेदनशीलता और मानवीय मूल्य ही रिपोर्ताज को पत्रकारिता से अलग साहित्यिक विधा बनाते हैं। इस परिभाषा में इन दोनों तत्त्वों की अनदेखी की गयी

है। रिपोर्ताज विधा पर वर्तमान साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग आधारित है जिसका विकास शक्तिशाली साहित्यिक विधा के रूप में हो रहा है। अतः यह परिभाषा रिपोर्ताज विधा के लिए उपयुक्त नहीं है।

सत्यपाल भी रिपोर्ताज का जन्म पत्रकारिता के विकास क्रम में ही मानते हैं। उनके अनुसार– ''पत्र की जिस घटना को सत्य की रक्षा करते हुए कलात्मक रूप से संवेदनात्मक शक्ति के साथ प्रस्तुत किया जाता है वह रिपोर्ताज नामक साहित्यिक विधा की कोटि में आ जाता है।''[30] यह परिभाषा रिपोर्ताज के स्वरूप को पत्रकारिता से अलग नहीं कर पाता। 'सत्य की रक्षा करते हुए' वाक्य में रिपोर्ताज की यथातथ्यता पर जोर दिया गया है और 'कलात्मक रूप' वाक्यांश में रिपोर्ताज को सूचना–मात्र से अलग करने का प्रयास किया गया है जबकि ये दोनों विशेषतायें लगभग रिपोर्ट की भी हैं।

तारिणीचरण दास रिपोर्ताज को सत्य और तथ्य पर आधारित एक मार्मिक गद्य विधा मानते हैं। रिपोर्ताज विधा के सम्प्रेषण क्षमता पर अपना विचार केन्द्रित करते हुए ये लिखते हैं– ''यह विधा दृष्ट सत्य को दूसरों के अनुभव्य तथ्य में परिणत करने में अग्रणी है। मनुष्य के प्रति सहज–सुलभ आकर्षण तथा पीड़ित मानवता के प्रति गहरी संवेदना का ज्ञापन रिपोर्ताज का प्रधान धर्म है।

जीवंत ऐतिहासिक तथ्य के साथ अनुभूति सत्य को संवेदनशील कथ्य में रूपांतरित करना ही असली रिपोर्ताज का लक्षण है। अर्थात एक के अनुभव को हजारों के द्वारा अनुभूत करना रिपोर्ताज का कार्य या धर्म है।''[31] यह परिभाषा अन्य से भिन्न है। इस परिभाषा में रिपोर्ताज के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया गया है और जीवंतता, सत्यानुभूत कथ्य, संवेदनशीलता, संप्रेषणीयता मानवीय मूल्य आदि तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। नाटकीयता और चित्रात्मकता का यहाँ अभाव है।

विजयेन्द्र स्नातक रिपोर्ताज को घटना प्रधान मानते हुए रिपोर्ताज –लेखक के लिए अनुभव की व्यापकता, जनजीवन से निकट संपर्क और सहज संवेदनशीलता को आवश्यक मानते हैं। रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए वे लिखते हैं– ''रिपोर्ताज में कल्पना का आश्रय न लेकर प्रत्यक्ष रूप में देखी गयी घटनाओं अथवा स्वयं सुनी

गयी बातों का साहित्यिक शैली में मार्मिक चित्रण रहता है। इस प्रकार रिपोर्ताज लेखन के लिए एक ओर पत्रकार, दूसरी ओर निबंधकार और तीसरी ओर कहानीकार की प्रतीक्षा अपेक्षित रहती है।''[32] इस परिभाषा में विरोधाभास दिखायी है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि रिपोर्ताज, पत्र, निबंध और कहानी का मिला–जुला रूप है। पत्र की झलक मिलती है, जबकि निबंध और कहानी में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रिपोर्ताज में कल्पना का आश्रय नहीं लिया जा सकता। संवेदनशीलता, प्रमाणिक अनुभव और जनजीवन से निकटता के गुण होने के बावजूद इस परिभाषा से यही माना जा सकता है कि रिपोर्ताज, पत्र का साहित्यिक विकास मात्र है। ये सभी गुण अनिवार्य रूप से पत्रकारिता से जुड़े हैं।

रिपोर्ताज में पाठकों को प्रभावित करने की क्षमता होनी चाहिए। इस तथ्य पर विशेष बल देते हुए डॉ. ओम प्रकाश सिंहल रिपोर्ताज की परिभाषा इस प्रकार देते हैं– ''जिस रचना में वर्ण्य विषय का आंखों देखा तथा कानों–सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाये कि पाठक की हृदयतंत्री के तार झंकृत हो उठें और वह उसे भूल न सके, उसे रिपोर्ताज कहते हैं।''[33] यह परिभाषा रिपोर्ताज की प्रभावशीलता को व्यंजित करती है साथ ही घटना की सत्यता दूसरों के अनुभव तथ्यों को भी प्रभावित करती है। प्रभावशीलता तथा संप्रेषणीयता रिपोर्ताज के आधारभूमि हैं।

कल्पना के आधार पर नहीं, अपितु आंखों देखी और कानों सुनी घटनाओं पर ही रिपोर्ताज लिखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य कोश में रिपोर्ताज को पारिभाषित करते हुए अजित कुमार लिखते हैं ''रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं। विस्तृत तथ्य को रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करने में रिपोर्ताज की सफलता है। आंखों देखी और कानों–सुनी घटनाओं पर रिपोर्ताज लिखा जा सकता है, कल्पना के आधार पर नहीं। लेकिन तथ्यों के वर्णन मात्र से रिपोर्ताज नहीं बना करता, रिपोर्ट भले ही बन सके। घटना–प्रधान होने के साथ–साथ ही रिपोर्ताज को कथा तत्त्व से भी युक्त होना चाहिए।''[34] यह परिभाषा रिपोर्ताज की विशेषताओं को पूर्णरूपेण प्रस्तुत नहीं करता। कलात्मकता और साहित्यिक शब्द के आवरण में यह परिभाषा रिपोर्ताज की विशेषताओं को छुपा लेती है। हां, कथा तत्त्व और चित्रात्मकता की बात अवश्य की गयी है।

डॉ. रामचंद्र तिवारी, किसी घटना को अपनी मानसिक अनुभूति से दीप्तिमान करके पुनः प्रस्तुत या मूर्त कर देने को रिपोर्ताज का सहज धर्म मानते हैं। उनके अनुसार– ''वास्तविक घटना को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देना 'रिपोर्ट' है। ठेठ हिन्दी में इसे 'रपट लिखाना' भी कहते हैं। जब सफल पत्रकार या साहित्यकार वास्तविक घटना को अपनी भावना में रंगकर बिम्बधर्मी भाषा के माध्यम से सजीव बनाकर प्रस्तुत करता है तब वह रिपोर्ताज की कला–सृष्टि करता है।''[35] यह परिभाषा भी दोष मुक्त नहीं है। इसमें भावना के साथ भाषा के बिम्बधर्मी होने की बात की गयी है किन्तु रिपोर्ताज को रिपोर्ट से ही संबंधित करके देखा गया है। यह रिपोर्ताज की स्वतंत्र परिभाषा नहीं है।

डॉ. भगीरथ मिश्र रिपोर्ताज को किसी स्थान या घटना का यथार्थ, जीवंत, मर्मस्पर्शी और संवेदना को उभारने वाला वर्णन मानते हैं जिसमें प्रधानता दृश्य या घटना की होती है, चरित्र या व्यक्ति की नहीं। वे रिपोर्ताज के संबंध में लिखते हैं ''किसी घटना या दृश्य का अत्यंत विवरणपूर्ण, सूक्ष्म, रोचक वर्णन इसमें इस प्रकार किया जाये कि वह हमारी आंखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाये और हम उससे प्रभावित हो उठे।''[36] प्रस्तुत परिभाषा में रिपोर्ताज के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों–वर्णनात्मकता, रोचकता, चित्रात्मकता, और संवेदनशीलता को प्रमुखता दी गयी है और कथात्मकता स्वानुभूति और मानवीय–मूल्य जैसे तत्त्वों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। फिर भी इस परिभाषा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें रिपोर्ताज के स्वतंत्र अस्तित्त्व को महत्त्व दिया गया है। इस परिभाषा में संस्मरण या रेखाचित्र का भास तनिक नहीं होता तथा रिपोर्ताज की पूर्ण पृथकता परिलक्षित होती है।

शांतिस्वरूप गुप्त, रिपोर्ताज में अन्य तत्त्वों के अलावा साहित्यिक आनंद को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। शांतिस्वरूप गुप्त रिपोर्ताज को इस प्रकार परिभाषित करते हैं– ''वह एक साहित्यिक विधा है उसमें साहित्य, कल्पना भावुकता, संवेदना का पुट होता है उसमें वस्तुगत तथ्य को कलात्मक एवं प्रभावोत्पादक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक को तथ्य का भी परिचय हो जाता है और उसे साहित्यिक आनंद भी प्राप्त होता है।''[37] रिपोर्ताज में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। यह परिभाषा भावकुता, संवेदनाशीलता, कलात्मकता और साहित्यिक आनंद को

विशेष महत्त्व देती है। घटना की प्रामाणिकता का उल्लेख इस परिभाषा में कहीं नहीं है।

रिपोर्ताज के आदि लेखक कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर इस विधा को पारिभाषित करते हुए लिखते हैं– ''लेख में घटना का विवरण होता है, स्केच में रेखाचित्र और संस्मरण में जीवन का स्पंदन, पर विवरण, चित्र और स्पंदन का समन्वय ही रिपोर्ताज है। दूसरे शब्दों में रिपोर्टिंग में समाचार होता है, संपादकीय में विचार, पर रिपोर्ताज में समाचार और विचार का संगम है।''[38] इस परिभाषा में मिश्र जी ने रिपोर्ताज को लेख, स्केच और संस्मरण के तत्त्वों से युक्त माना है। समाचार और विचार तत्त्व के आधार पर रिपोर्ताज का संबंध रिपोर्टिंग से स्थापित करते हैं। यह रिपोर्ताज की स्वतंत्र परिभाषा नहीं है। इसमें समसामयिकता, तथ्यात्मकता और मानवीय मूल्य जैसे तत्त्व छूट गए हैं।

डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया रिपोर्ताज विधा को दो तरह से पारिभाषित करते हैं। पहली परिभाषा में वे रिपोर्ताज को संघर्षशील विधा मानते हुए कहते हैं– ''संघर्ष के क्षणों को तत्काल शब्दों में प्रस्तुत करना ही रिपोर्ताज है। युग संघर्ष, युग चेतना तथा असाधारण जीवन को कला में बांधना ही इसको साहित्यिकता प्रदान करता है।''[39] यह परिभाषा घटना सापेक्षता तथा समसामयिकता पर विशेष बल देते हुए उसके साहित्यिक रूप की पक्षधर है। परंतु इस परिभाषा से यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि रिपोर्ताज का साहित्यिक रूप कैसा होना चाहिये। दूसरी परिभाषा में डॉ. भाटिया रिपोर्ताज के साहित्यिक स्वरूप को ही पारिभाषित करने का प्रयास करते हुए लिखते हैं– ''यह अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' का समानार्थी फ्रांसीसी शब्द रिपोर्ताज ही है जिसमें किसी घटना का यथातथ्य वर्णन किया जाता है। घटना का यथातथ्य विवरण कलात्मक तथा रस–संवेद्यात्मक रूप में दिया जाता है। शैली कथात्मक अवश्य होती है, पर यह कथा नहीं विवरण 'डायरी' पर आधारित हो सकता है पर यह डायरी नहीं। यात्रा वर्णन पर आधारित होता है पर यह यात्रा–वृत्तांत नहीं है। इसमें लेखक प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर किसी घटना की रिपोर्ट तैयार करता है और उसमें अपने सहज साहित्यिक कला से जब लालित्य ले आता है तो वही गद्य की आकर्षक विधा 'रिपोर्ताज' कहलाता है। इस प्रकार 'रिपोर्ट' के कलात्मक एवं

साहित्यिक रूप को ही 'रिपोर्ताज' कहते हैं।''[40] उपर्युक्त परिभाषा में लेखक ने कहानी को डायरी, यात्रा–वृत्तांत आदि विधाओं से स्वतंत्र, रिपोर्ताज को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस परिभाषा में प्रत्यक्ष दर्शन का आधार भी है और सहज साहित्यिक कला से उत्पन्न लालित्य भी। लेखक यह भी स्वीकार करता है कि रिपोर्ट का साहित्यिक और कलात्मक रूप ही रिपोर्ताज होता है। इसी पुस्तक की 'भूमिका' में डॉ. सत्येन्द्र की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है–''लगता है जैसे पत्रकार को किसी विशेष घटना या स्थिति पर अपने पत्र (समाचार पत्र) को एक रिपोर्ट देनी थी, पर वह वस्तुनिष्ठ विवरण से अधिक उस स्थिति से संलग्न और उस पर मंडराती हुई मानवीय–संवेदनाओं से तादात्म्य बैठा कर और स्थिति या घटना विशेष को केवल धुरी बना सका, चित्रण वह उन तत्त्वों का करने लगा जिनका मानवीय संवेदनशीलता से सीधा संबंध है। इस प्रकार उसकी रचना 'रिपोर्ताज' बन गयी, जिसमें लेखक की कला ने नया प्राण फूंक दिया कि उसकी रचना एक विशेष महत्त्व से अभिमंडित हो उठी।'' संवेदना को विशेष महत्त्व दिया गया। इस परिभाषा में वस्तुनिष्ठ, विवरण से अधिक उस स्थिति में संलग्न 'होना' और मंडराती हुई मानवीय संवेदनशीलता' पर विशेष जोर दिया गया है। डॉ. सत्येन्द्र ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि लेखक की कला ही इस विधा को प्राणवान बनाती है। अप्रत्यक्ष रूप से वे कला–विहीन वस्तुनिष्ठ विवरण को रिपोर्ट मात्र मानते हैं। डॉ. सत्येन्द्र की परिभाषा रिपोर्ताज के तत्त्वों और विशेषताओं को बताने के बजाय उसकी रचना प्रक्रिया की ओर संकेत करती है।

डॉ. रांगेय राघव ने रिपोर्ताज की परिभाषा इस प्रकार दी है–

''लेखकों ने युद्ध के मोर्चों से तथा युद्ध से प्रभावित क्षेत्रों से तथ्यात्मक संस्मरण प्रस्तुत किए। उनमें वह मानवीय स्पंदन था कि वे रिपोर्टें सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में आकर 'रिपोर्ताज' की नयी विधा के रूप में अवतरित हुई।''[41] इस परिभाषा में घटना मानवीय स्पंदन, तथ्यात्मकता और चित्रात्मकता जैसे रिपोर्ताज के तत्त्वों की ओर संकेत किया गया। यह परिभाषा इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें इस विधा के आरंभिक समय और जन्म स्थान की ओर इंगित किया गया

है। किन्तु अब रिपोर्ताज का क्षेत्र व्यापक हो गया है, यह सिर्फ युद्ध संबंधित घटनाओं पर ही नहीं लिखा जाता।

रिपोर्ताज को सर्वप्रथम शास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचित–विश्लेषित करने का सफल प्रयास शिवदान सिंह चौहान ने किया। यद्यपि उन्होंने कहीं भी रिपोर्ताज को परिभाषित नहीं किया फिर भी उनके लेख से अन्य महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी मिलती है। वर्तमान जीवन के संघर्षमयी वास्तविकता को समझने के लिए रिपोर्ताज एक सशक्त साहित्यिक रूप विधान है। रिपोर्ताज को अन्य साहित्यिक विधाओं से पृथक करते हुए वे लिखते हैं–

''ललित साहित्य सामाजिक प्रभाव और स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक तीव्र अस्त्र है। लेकिन वह आज की समस्या का आज ही हल पेश करने में असमर्थ है। इसका प्रभाव युगों तक चलता है। दैनिक जीवन की विशिष्ट समस्याओं तक उसकी पहुंच नहीं होती। इसलिए आधुनिक जीवन की इस नयी द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नये साहित्यिक रूप–विधानों को जन्म देना पड़ा। रिपोर्ताज उसमें से सबसे प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण रूप–विधान हैं।''[42] प्रस्तुत वक्तव्य से रिपोर्ताज की त्वरात्मक अभिव्यक्ति का पता चलता है। यदि साहित्य सामाजिक प्रभाव को व्यक्त करने एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अस्त्र है तो रिपोर्ताज अन्य साहित्यिक विधाओं से इस उद्देश्य में अग्रणी है। युग संघर्ष, युग चेतना, यथार्थ मानवीय मूल्य और समसामयिकता जैसे तत्त्वों को यहाँ उभारा गया है। रिपोर्ताज के रूप–विधान की दृष्टि से यह परिभाषा अन्यतम है।

प्रो. माजदा असद का मानना है कि रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटना का अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व है। उन्होंने लिखा है–

''किसी घटना के यथातथ्य चित्रण के साथ–साथ लेखक की कल्पना, कला और प्रतिभा भी आवश्यक है। युग चेतना, युग संघर्ष, असाधारण स्थिति को साहित्यिक अभिव्यक्ति देना रिपोर्ताज है। जो घटना अंतर्राष्ट्रीय समाचार बनने की क्षमता रखता हो उसका वर्णन इस विधा के अंतर्गत होता है। सहसा घटित होने वाला, मन को हिलाने वाली महत्त्वपूर्ण घटना का तात्कालिक प्रतिक्रिया का साहित्यिक भावावेशपूर्ण शैली में अभिव्यक्ति रिपोर्ताज कहलाती हैं।''[43] यह परिभाषा

रिपोर्ताज को उसकी अन्य विशिष्टताओं के साथ ही उसके अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। उसमें रिपोर्ताज के तत्त्वों का भी समावेश किया गया है।

डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार– ''रिपोर्ताज एक ऐसी विधा है, जिसमें किसी घटना (प्रायः सार्वजनिक) का अति सूक्ष्म एवं हृदयग्राही विवरण इस प्रकार दिया जाय कि वह पाठक की आंखों के समक्ष चित्रपट के चित्र की भांति सजीव हो उठे।''[44] वीरपाल वर्मा की यह परिभाषा, 'काव्यशास्त्र' में भगीरथ मिश्र द्वारा दी गई परिभाषा से काफी मिलती है। प्रस्तुत परिभाषा में समसामयिकता और यथातथ्यता जैसे महत्त्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान नहीं जाता है।

डॉ. अली मुहम्मद ने रिपोर्ताज की परिभाषा निम्न शब्दों में की है– ''विश्वव्यापी समाचार की क्षमता वाला, समसामयिक यथार्थ घटना, उसके परिवेश की चित्रात्मकता और उसमें सम्मिलित शक्तियों के समन्वित प्रभाव वाला जीवन, सरस कथ्य, यथातथ्य संप्रेषित होकर जब मानवीय मूल्य युक्त संवेदना जगा देता है, तब वह साहित्य सृजन रिपोर्ताज कहलाता है।''[45] यह परिभाषा शिवदान सिंह और माजदा असद की परिभाषाओं से साम्य रखती है। प्रस्तुत परिभाषा समसामयिकता, यर्थाथता, संप्रेषणीयता एवं मानवीय मूल्य जैसे तत्त्वों से युक्त है।

उपर्युक्त पारिभाषिक विवेचन–विश्लेषण से गुजरते हुए यह स्पष्ट होता है कि रिपोर्ताज विधा पत्रकारिता की देन है। इस प्रकार रिपोर्ट और रिपोर्ताज का गहरा संबंध है और अपने उद्‌भवकाल में रिपोर्ताज, रिपोर्ट के सहारे ही रचा गया। किन्तु रिपोर्ताज, रिपोर्ट का साहित्य रूप मात्र नहीं है। संवेदनशीलता और मानवीय मूल्य जैसे तत्त्व रिपोर्ताज को रिपोर्ट से अलग करते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पल–पल परिवर्तित होने वाले मानवीय एवं साहित्यिक मूल्यों को पकड़ने में सक्षम रिपोर्ताज एक ऐसा प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण रूप–विधान है जिसमें वर्णित होने वाली समसामयिक यथार्थ घटनाएं और उनके प्रभाव इतने संप्रेषणीय होते हैं कि ये घटनाएं विश्व समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। द्रतगामी वास्तविकता का वहन करने वाली इस विधा में मानवीय मूल्य, सामाजिक प्रभाव और स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति तीव्रतम होती है।

रिपोर्ताज की तात्त्विक विशेषताएं

प्रत्येक साहित्यिक विधा अपनी विधागत विशिष्टताओं से संचालित होती हैं जिनके आधार पर अन्य विधाएं एक–दूसरे से अलग और विशिष्ट होती हैं। साहित्यिक विशेषताएं उसमें निहित तत्त्वों पर निर्भर करती हैं। रिपोर्ताज विधा को पारिभाषित करने के क्रम में कुछ तत्त्व उभरकर आये हैं जो उसकी विशेषता उजागर करते हैं। इन तत्त्वों के आधार पर ही रिपोर्ताज की विशेषता को निर्धारित करने का प्रयास किया जाएगा। रिपोर्ताज विधा में जिन तत्त्वों को लक्ष्य किया गया है उनमें से कुछ तत्त्व साहित्य की अन्य विधाओं में भी प्रस्तुत हैं। समान रूप से पाए जाने वाले तत्त्वों के आधार पर रिपोर्ताज से अन्य विधाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना मेरा अभीष्ट नहीं है। यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि ये तत्त्व रिपोर्ताज विधा के स्वरूप को किस सीमा तक सुनिश्चित करते हैं और इसे एक सशक्त साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करते हैं। रिपोर्ताज के तत्त्व और विशेषताएं इस प्रकार वर्गीकृत हुई हैं–

1. तथ्यात्मक यथार्थता

यथार्थ तत्त्व रिपोर्ताज की प्राथमिक और अनिवार्य विशेषता है। रिपोर्ताज में वर्णित किए जाने वाले तथ्य यथार्थ घटनाओं पर आधारित होते हैं। कल्पना का हल्का आभास भी रिपोर्ताज की यथार्थता को संदिग्ध बना देता है। यह एक ऐसा तत्त्व है जो रिपोर्ताज को अन्य विधाओं से अलग करता है। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया के अनुसार– ''कुछ लेखक चटपटी शैली में कल्पना पर आधारित किसी घटना का यथातथ्य कलात्मक चित्रण कर देते हैं वस्तुत : यह रिपोर्ताज नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वह वास्तविक घटना से परे है।''[46]

डॉ. भगीरथ मिश्र भी यथार्थता को रिपोर्ताज की आवश्यक विशेषता मानते हैं। उनके अनुसार– ''रिपोर्ताज की घटना या दृश्य काल्पनिक नहीं वरन वास्तविक होने चाहिए।''[47]

डॉ. रामचंद्र तिवारी भी स्वीकार करते हैं कि रिपोर्ताज लेखन कल्पना के सहारे नहीं हो सकता। उसके लिए लेखक का प्रत्यक्षदर्शी होना अनिवार्य है। वे

कहते हैं– ''रिपोर्ताज लेखक के लिए घटना का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक है। ड्राइंग रूम में बैठकर सुंदर घटित होने वाली घटना को कल्पना के सहारे प्रस्तुत करके नहीं लिखा जा सकता। प्रत्येक घटना प्रत्यक्षदर्शियों के मन पर जो प्रभाव छोड़ती है वही छाप रिपोर्ताज लेखक अपने रेखांकन के माध्यम से पाठकों पर छोड़ता है।''[48]

यह स्पष्ट हो गया है कि रिपोर्ताज का जन्म पत्रकारिता के विकास क्रम में हुआ है और कुछ सीमा तक रिपोर्ताज साहित्यिक रिपोर्ट' भी होता है। समाचार पत्रों की रिपोर्ट सच्ची घटनाओं के आधार पर ही बनायी जाती है। जिस तरह पत्रकार का लेखन कल्पना पर आधारित न होकर घटना के प्रत्यक्ष निरीक्षण पर निर्भर करता है उसी प्रकार रिपोर्ताज लेखन भी प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होता है। रिपोर्ताज में सत्य का उत्कट आग्रह अनिवार्य रूप से आवश्यक है। बदलती हुई वास्तविकता और परिवर्तित होते हुए जीवन और मानव मूल्यों को रूपायित करने में साहित्यकार कितना सफल होता है, यह रिपोर्ताज की वर्णित होने वाली यथार्थ घटनाओं पर निर्भर करता है। घटना की यथार्थता के साक्षेप लेखक की निरीक्षण क्षमता भी होनी चाहिए तभी वह रचना की प्रामाणिकता और सजीवता को उभार सकेगा। डॉ. रामचंद्र तिवारी का उपरोक्त कथन इसी बात की पुष्टि करता है। युग संघर्ष, युग चेतना तथा असाधारण जीवन को कला में बांधने के लिए आवश्यक है कि लेखक घटना की पृष्ठभूमि के साथ तादात्म्य स्थापित करे और यह तभी संभव है जब लेखक घटना का प्रत्यक्षदर्शी हो।

डॉ. मक्खनलाल शर्मा के अनुसार– रिपोर्ताज कभी भी कल्पना–प्रसूत नहीं हो सकता। उसे सदैव ही आंखों–देखी और कानों–सुनी बातों पर आधारित होना होता है। रिपोर्ताज तथ्य–वर्णन मात्र नहीं होता, उसमें घटना तत्त्व तथा कथात्मकता का पुट किसी–न–किसी रूप में अनिवार्यतः रहता है। जिस व्यक्ति में सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता तथा कलात्मक अभिरुचि एवं प्रस्तुतीकरण की शक्ति रही है वही रिपोर्ताज लेखक बन सकता है।''[49]

डॉ. तारिणीदास के अनुसार रिपोर्ताज सत्य और तथ्य पर आधारित एक मार्मिक गद्य विधा है।[50]

'तूफानों के बीच' की भूमिका में डॉ. रांगेय राघव ने अपनी कृति–सर्जना का श्रेय जनता को इस प्रकार दिया है– किन्तु मैं जनता से स्फूर्ति पाकर यह सब लिख सका हूं। मैंने यह सब आंखों–देखा लिखा है।[51] कहना न होगा कि रांगेय राघव ने इस रिपोर्ताज संकलन में बंगाल के अकाल का अतियथार्थ रूप ही वर्णित किया है।

शिवदान सिंह चौहान ने घटना के इतिहास और उसके परिवेश के साथ ही घटना में भाग लेने वाली शक्तियों को भी रिपोर्ताज के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों में शामिल किया है। उनके अनुसार–''रिपोर्ताज के अंदर लेखक को वर्ण्य घटना या वस्तु का चित्रण करने के लिए उस पर तीन दिशाओं से आक्रमण करना होता है। अर्थात् उसकी रिपोर्ट में तीन तत्त्वों का समावेश रहता है। किसी घटना का इतिहास और उसके परिवेश (Environment) तो रहता ही है, एक तीसरा तत्त्व भी रहता है जो रिपोर्ताज की कला को क्रांतिकारी रूप–विधान बना देता है। यह तीसरा तत्त्व है उस घटना में भाग लेने वाली शक्तियों के भीतरी इरादों, उनके कार्यक्रमों, उनकी गतिविधियों, रीति–नीति और उनके संघर्ष के परिणाम पर निर्भर भविष्य की दिशाओं का स्पष्टीकरण।''[52]

डॉ. माजदा असद भी रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटना या यथार्थता को विशेष महत्त्व देती है। उनका मानना है कि– ''इस विधा में किसी घटना का वर्णन ज्यों–का–त्यों किया जाता है, अलबत्ता घटना का यथातथ्य निरूपण कलात्मकता और संवेदनात्मक के साथ होता है।[53] स्पष्ट है कि किसी घटना का यथातथ्य निरूपण ज्यों–का–त्यों किया जाना अनिवार्य है।

अजित कुमार भी घटनाओं के काल्पनिक आधार को नहीं मानते। वे भी 'आंखों–देखी और कानों–सुनी घटनाओं पर लिखे रिपोर्ताज को प्रमाणित मानते हैं, 'कल्पना के आधार पर' लिखे रिपोर्ताज को नहीं।[54]

डॉ. सत्येन्द्र रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाओं के यथार्थ ही नहीं अति यथार्थ रूप की भी वकालत करते हैं। उनका मानना है– ''इसमें वर्णन और विवरण स्थिति या घटना को अति यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं।''[55] यह कथन रिपोर्ताज के यथार्थ ही नहीं अति यथार्थ रूप का पक्षधर है। रिपोर्ताजकार अपनी रचना में

किसी घटना के अति यथार्थ को तभी व्यक्त कर सकता है, जब वह घटना का साक्षी हो और उसकी रचना जीवन–यथार्थ के साथ एकमेक हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रिपार्ताज विधा के लिए वर्णित होने वाली घटनाएं यथातथ्य निरूपित और यथार्थ होनी चाहिए। रिपोर्ताज में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। यदि कल्पना का स्थान है भी तो सिर्फ इतना ही कि रिपोर्ताजकार कला और प्रतिभा के साथ कल्पना का सहारा लेकर किसी भी वास्तविक घटना को मनोरम रूप में प्रस्तुत कर सके। आंखों–देखी और कानों–सुनी घटनाओं पर रिपोर्ताज लिखे जाते हैं। अतः रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाएं या दृश्य प्रामाणिकता के यथार्थ–भूमि पर स्थित होते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रिपोर्ताज की यही विशेषता उसे अन्य विधाओं से पृथक कर देता है।

2. समसामयिकता

रिपोर्ताज विधा 'आंखिन देखी' का साहित्यिक कलात्मक अभिव्यक्ति है। इसलिए इसका संबंध वर्तमान से होता है। जैसे–जैसे रिपोर्ताज विधा विकसित होती गयी, कानों–सुनी' यथार्थ घटनाओं को इसमें प्रश्रय मिलने लगा।

रिपोर्ताज वर्तमान से संबंधित होता है। रमेश कुंतल मेघ के अनुसार–''रिपोर्ताजों का संबंध वर्तमान से होता है–''जिनमें लेखक छोटी–छोटी घटनाओं के वातावरण में अपने अंतर्वेगों द्वारा पाठक को प्रभावित करता है।''[56]

समसामयिकता का आग्रह ही रिपोर्ताज को जीवंतता प्रदान करता है एवं अन्य सभी विधाओं से पृथक प्रभावशाली साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करता है। रिपोर्ताज तेजी से बदलते युग की समस्त जटिलताओं एवं संघर्शों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर पाता है। अन्य विधाएं इन तत्त्वों तक नहीं पहुंच पाती। इसके मूल में रिपोर्ताज का वर्तमान से जुड़ा होना ही है। ि ावदान सिंह चौहान के भाब्दों में–

''ललित साहित्य सामाजिक प्रभाव और स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक तीव्र अस्त्र है। लेकिन वह आज की समस्या का आज ही हल पे ा करने में असमर्थ है। इसका प्रभाव युगों तक चलता है। दैनिक जीवन की वि ाश्ट समस्याओं तक

उसकी पहुंच नहीं होती। इसलिए आधुनिक जीवन की इस नई द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुश्य को नये साहित्यिक रूप विधाओं को जन्म देना पड़ा है। रिपोर्ताज उनमें से सबसे प्रभाव ाली और महत्त्वपूर्ण रूप विधान है।[57] आज की समस्या का आज ही हल पेश करने एवं आधुनिक जीवन की इस नयी द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने जैसे वाक्यांशों से रिपोर्ताज में निहित समसामयिकता की वि ोशता को समझा जा सकता है।

रिपोर्ताज समसामयिक घटनाओं से संबद्ध होने के कारण वर्तमान से जुड़ा रहता है। लेखक घटना परिवेश के चित्रण के साथ–साथ तात्कालिक यथार्थ को अपनी विशय–वस्तु बनाता है। ''रिपोर्ताज लेखक के लिए आव यक है कि वह जनसाधारण के जीवन की सच्ची और सही जानकारी रखे और उत्सवों, मेलों, बाढ़ों, अकालों, युद्धों और महामारियों जैसे सुख–दुख के क्षणों में जनता को निकट से देखे। तभी वह अखबारी रिपोर्टर और साहित्यिक रचनाकार की हैसियत से जन–जीवन का प्रभावोत्पादक ब्योरा लिख सकेगा।[58] रिपोर्ताज मार्मिक विधा है जो क्रांतिकारी संघर्श की ही अभिव्यक्ति बन सकती है, प्रतिक्रियावादी साहित्य का नहीं। रिपोर्ताज में संघर्श के क्षणों को तत्काल शब्द दिया जाता है। इस स्थिति में रिपोर्ताज की भौली भावनात्मक हो जाती है। कारण यह कि, घटना से उमड़ी तीव्र संवेदना को ही इसमें वर्णित किया जाता है। डॉ. कैला ाचंद्र भाटिया ने ठीक कहा है –''घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया से भावावे ा प्रधान भौली में लिखी गई विधा ही रिपोर्ताज है।''[59]

डॉ. क्लेमेंट मेरी भी रिपोर्ताज के समसामयिकता को विशेष महत्त्वपूर्ण मानती हैं जिसमें हर्षोल्लास, करुणा और अवसाद जैसे मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त किया जाता है। वे कहती हैं– ''रिपोर्ताज वस्तु या घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया पर आधारित होता है और उसमें प्रत्यक्ष साक्षात्कार की अनुभूति रहती है।''[60]

रिपोर्ताज में तत्कालीन जीवन–सत्यों को ही उद्घाटित नहीं किया जाता, जीवन–मूल्यों को भी प्रमुखता प्रदान की जाती है। यही कारण है कि रिपोर्ताज में नवीन और भाा वत की अभिव्यक्ति होती है। रिपोर्ताज में वर्णन तो वर्तमान का ही

होता है पर वह अतीत को जहां अपने में धारण किए रहता है वहीं भविष्य को भी प्रकाशित करता है।

डॉ वि वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं – ''रिपोर्ताज वस्तुगत सत्य को प्रभावशाली बनाता है, उसका संबंध सिर्फ वर्तमान से होता है किन्तु उसका लेखक वर्तमान के उस बिन्दु पर होता है जिसमें भूतकालीन मूल्य और भावनाएं रहती हैं और भविश्य के प्रति उत्कट लालसा भी।''[61]

रिपोर्ताज में जन कल्याणकारी और सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना राश्ट्रीय और अन्तर्राश्ट्रीय यथार्थ घटनाओं के आधार पर की जाती है। इसलिए इसमें सिर्फ समसामयिकता ही नहीं, अपितु उस युग की समस्त जटिलताओं एवं संघर्शों को भी शामिल किया जाता है। ''युगीन वि ोशतायें रिपोर्ताज में वर्णित होती हैं। इसलिए रिपोर्ताज का सामयिक ही नहीं, ऐतिहासिक महत्त्व भी है, क्योंकि वह घटनाओं की प्रस्तुति के द्वारा अपने युग के जीवन–इतिहास को प्रस्तुत करता है। इसमें किसी महत्त्वपूर्ण घटना को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि अन्य अनेक आयामों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।''[62]

3 समाचार संप्रे शणीयता

रिपोर्ताज का संबंध पत्रकारिता से है या यह मानना गलत न होगा कि पत्रकारिता के विकास क्रम में ही रिपोर्ताज विधा का जन्म हुआ है। पत्रकारिता, समाचार पर आधारित होती है। समाचार की संप्रेषणीयता जितनी तीव्र होगी, पत्रकारिता का विकास उतना अधिक होगा। स्पश्ट हो चुका है कि रिपोर्ताज, रिपोर्ट का साहित्यिक और कलात्मक रूप है ऐसी स्थिति में रिपोर्ताज विधा की सफलता इस तथ्य में निहित है कि इसका संप्रेशण कितना तीव्र और अधिक से अधिक लोगों तक सफल हो सका है। रिपोर्ताज सत्य और तथ्य पर आधारित मार्मिक विधा है। अतः इसमें स्थान पाने वाली घटनाओं का वर्णन जितनी संवेदन ाीलता के साथ प्रस्तुत किया जाएगा, संप्रेशण उतना ही तीव्र होगा परिणामस्वरूप और जनमानस आंदोलित एवं उद्वेलित होंगे। डॉ. ओम प्रका ा सिंहल उन्ही घटनाओं को रिपोर्ताज के उपयुक्त मानते हैं जो यथार्थ और समसामयिक होने के साथ ही महत्त्वपर्ण होती हैं। उनके अनुसार ''एक अच्छे रिपोर्ताज की पहली आव यक भार्त यह है कि

रिपोर्ताज लिखने के लिए जिन घटनाओं का चयन किया जाये वे कोई महत्त्वपूर्ण सामयिक समाचार देने वाली होनी चाहिए।''[63]

रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाएं काल्पनिक नहीं होनी चाहिए क्योंकि काल्पनिक घटनाएँ कितनी भी खूबसूरती के साथ क्यों न प्रस्तुत कर दी जाएं, रिपोर्ताज का अंग नहीं बन सकतीं। काल्पनिक घटनाएं जनमानस पर अपना प्रभाव छोड़ने में असमर्थ होती हैं। रिपोर्ताज लेखन में जिन काल्पनिक घटनाओं को आधार बनाया गया है वे पाठक की सहानुभूति नहीं पाती। डॉ. कैला ा चंद्र भाटिया का यह कहना उचित है कि–

''कुछ लेखक चटपटी भौली में कल्पना पर आधारित किसी घटना का यथातथ्य कलात्मक चित्रण कर देते है जिसे पढ़कर पाठक उस घटना से तदात्म्यता स्थापित करता है। जिस रचना में यह वि ोशता जितना ही अधिक होगी वह उतनी ही सफल समझी जाएगी। जिन रिपोर्ताजों में तथ्यों का लेखा–जोखा मात्र रहता है, उनकी संप्रेशण क्षमता कम होती है और वे जनमानस को प्रभावित करने में भी अक्षम होती हैं क्योंकि 'सहसा घटित होने वाली, मन को हिलाने वाली महत्त्वपूर्ण घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया की साहित्यिक भावेशपूर्ण भौली में अभिव्यक्ति ही रिपोर्ताज कहलाती है। इस संबंध में डॉ. तारिणीचरण दास का कथन उपयुक्त है – ''एक के अनुभव को हजारों के द्वारा अनुभव करा सकना रिपोर्ताज का कार्य या धर्म है।''[64]

रिपोर्ताज लेखक अपने लेखन के माध्यम से इस विधा को जनवादी साहित्य बनाने का प्रयास करता है। जन–जन के सुख–दुख, हर्षोल्लास तीज–त्यौहार आदि सभी रंग अनायास ही इसमें शामिल हो जाते हैं। यदि लेखन कार्य में संप्रेशण की क्षमता न रहे तो यह रचना मात्र तथ्यों का लेखा–जोखा बनकर रह जाएगी। रिपोर्ताज में निहित गति ीलता और स्पंदन, संप्रेषणीयता पर ही निर्भर करते हैं।

4 चित्रात्मकता

रिपोर्ताज की सफलता इस बात में निहित है कि इसमें वर्णित घटनाओं या दृश्य का बिम्ब इस रूप में प्रस्तुत किया जाए कि पाठक के सामने घटना का चित्र

उपस्थित जान पड़े और पाठक साधारणीकृत भाव में आ जाये। इसे ही रिपोर्ताज की चित्रात्मकता अथवा नाटकीयता का तत्त्व माना जाना चाहिए। इस संबंध में डॉ. शशिभूषण सिंहल का मानना है– ''रिपोर्ताज में लेखक प्रत्यत्न करता है कि किसी पक्ष को छोड़े बिना स्थिति का सविस्तार वर्णन किया जाय। वर्णन को सजीवता देने के लिए वह नाटकीयता का यथावसर प्रयोग करता चलता है। नाटकीयता का उद्देश्य होता है कि वह घटना पाठक की आंखों के सामने घटती जान पड़े। नाटकीयता या प्रत्यक्षीकरण का बोध यथार्थ का आभास देने वाली गतिविधि का चित्रण कर जगाया जाता है। इस क्रम में लेखक स्थिति और घटनाओं के ऊपरी रूप को अधिक प्रस्तुत करता है, घटनाओं के भीतर निहित मानवीय तत्त्व या गहन भावनाओं के चित्रण–विश्लेषण का अवकाश उसे नहीं होता।''[65] डॉ. सिंहल के कथन से मेरी सहमति और आपत्ति दोनों है। जहां तक डॉ. सिंहल नाटकीयता या प्रत्यक्षीकरण का बोध यथार्थ का आभास देने वाली गतिविधि का चित्रण कर जगाने' की बात करते हैं वहां तक तो ठीक है किन्तु मानवीय तत्त्व या गहन भावनाओं के चित्रण–विश्लेषण की अवकाश नहीं कहने की बात उचित नहीं है। वर्तमान जीवन की संघर्षमयी वास्तविकता की अभिव्यक्ति रिपोर्ताज में होती है और मानवीय मूल्य इस विधा की सबसे बड़ी विशेषता है। ऐसे में डॉ. सिंहल द्वारा दर्ज की गयी मानवीय तत्त्व या गहन भावनाओं संबंधी आपत्ति समझ से परे है। इस संबंध में डॉ. शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''क्योंकि रिपोर्ताज एक रिपोर्ट है लेकिन इसके साथ उसमें घटना अपने परिवेश की संपूर्ण चित्रात्मकता के साथ भावों और संवेदना के ज्वार–भाटों की तरंगों से एक सजीव अनुभव भी बन जाता है और पाठक को सवाक् चित्रपट की भांति यथार्थ और विश्वस्त रूप से उनका अनुभव प्रदान करती हैं।''[66]

पाठकीय संवेदना तब तक नहीं जागृत होती, जब तक उस घटना या दृश्य का पूरा बिम्ब नहीं उभरता है। घटना या दृश्य में उपस्थित सभी तथ्यों को उभारने के लिए रिपोर्ताजकार के वर्णन में चित्रोपमता आवश्यक है। इसी विशेषता के आधार पर रिपोर्ताजकार वर्ण्य–घटना को पाठक की आंखों के सामने उपस्थित कर देता है। डॉ. ओमप्रकाश सिंहल ने लिखा है– ''शिल्प की दृष्टि से रिपोर्ताज का सर्वप्रमुख

गुण है चित्रोपमता। नानाविध छोटी–छोटी घटनाओं और विवरणों के माध्यम से सवाक चित्रपट के समान प्रभावी चित्र का निर्माण रिपोर्ताज का अभीष्ट होता है। घटनाओं का प्रत्यक्ष द्रष्टा होने के नाते वह अपनी आंखों के लैंस से जिस दृश्य को मूर्त कर देता है उसमें किसी प्रकार धुंधलापन नहीं होता।''[67] यद्यपि रिपोर्ताज यथार्थ घटनाओं पर आधारित होता है और इसमें वर्णित घटनाएं लेखक का आँखों देखा सच होता है, फिर भी यह आवश्यक है कि यथार्थ का चित्रण जीवंत होना चाहिये। जब तक यह चित्रण जीवंत नहीं होगा, कृति रिपोर्ट भले ही बन सकती है, परन्तु रिपोर्ताज नहीं बन सकती।

चित्रण की जीवंतता के लिए संवेदना और चित्रात्मकता अनिवार्य है। डॉ. माजदा असद के अनुसार रिपोर्ताज के लिए आवश्यक है– ''मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सहज–सबल पात्रों का यथार्थ चित्रण, वस्तु या घटना का पूरा ज्ञान या स्वयं निरीक्षण। इसमें घटना चलचित्र की तरह आंखों के सामने तेजी से घूम जाती है। चित्रात्मकता और संवेदना घटना को सजीवता प्रदान करती है।''[68]

किसी घटना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तभी किया जा सकता है जब पाठक के समक्ष घटना का पूरा बिम्ब उपस्थित हो और उसमें संवेदना इतनी तीव्र हो कि वह रसमग्न हो जाये और यह तभी संभव है जब रिपोर्ताज में वस्तुगत यथार्थ को चित्रात्मक शैली में वर्णित किया जाये। इसी चित्रात्मक विशेषता के कारण रिपोर्ताज को 'शब्द चित्र' भी कहा गया है जिसमें परिवर्तित होते वातावरण का सूक्ष्म और प्रभावी चित्रण किया जाता है। रिपोर्ताज में एक ओर घटना के मध्य से उभरते हुए पात्र अपना प्रभाव छोड़ते चलते हैं तो दूसरी ओर लेखक परिवेश की चित्रात्मकता को अनुभूतियों के साथ जोड़ देता है। श्याम सुंदर घोष के शब्दों में– ''रिपोर्ताज की चित्रात्मकता प्राय : परिवेश की चित्रात्मकता भी होती है। रिपोर्ताज लेखक वस्तु पर जितना ध्यान देता है, उतना ध्यान उसके परिवेश पर भी देता है। उसका यह परिवेश ग्रहण रागात्मक और आंतरिक भाव से होता है। परिवेश का फोटोग्राफिक चित्रण करते हुए भी उस पर अपनी संवेदना की कूंची फेर देता है।''[69] अतः रिपोर्ताज के लिए चित्रात्मकता का तत्त्व विशेष महत्त्वपूर्ण है।

5 मानवीय मूल्य

मानवीय मूल्य, साहित्य की अनिवार्य विशेषता है। यह वह धुरी है जिसके चारों ओर साहित्य घूमता रहता है। जिस रचना में मानवीय मूल्यों की अनदेखी की गयी वह रचना शीघ्र ही कालकवलित हो गयी। किन्तु जिस रचनाकार ने अपनी सर्जना में मानवीयता को प्रमुखता दी उसकी रचना कालजयी हो गयी। तुलसीदास की रचना 'रामचरितमानस' ऐसी ही रचना है जो काल का अतिक्रमण करके आज भी उतनी ही प्रासंगिक बनी हुई है जितनी अपने रचनाकाल में थी।

रिपोर्ताज ऐसी साहित्यिक विधा है जिसके केन्द्र में मानवीय मूल्य की प्रमुखता है। सभी रिपोर्ताजकारों ने अपनी रचना में इस तत्त्व का ध्यान रखा है। कुछ विचारकों का मत है कि रिपोर्ताज में भावनात्मक संघर्ष नहीं है और रिपोर्ताजकार को मानवीय तत्त्वों के विवेचन–विश्लेषण का अवकाश नहीं रहता है। ऐसे विचारकों में भगवतीचरण वर्मा और डॉ. शशिभूषण सिंहल प्रमुख हैं।

भगवतीचरण वर्मा का आरोप है– ''रिपोर्ताज मूल रूप से किसी वातावरण के प्रस्तुतीकरण की विधा है, उसमें मानव के भावनात्मक संघर्ष को प्रमुखता नहीं मिलती और इसलिए कला के क्षेत्र में रिपोर्ताज को सिद्धांततः एक शिथिल विधा के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है।''[70]

डॉ. शशिभूषण सिंहल भी रिपोर्ताज में मानवीय तत्त्वों के विवेचन–विश्लेषण का अभाव मानते हुए कहते हैं– ''लेखक स्थिति और घटना के ऊपरी रूप को अधिक प्रस्तुत करता है। घटना के भीतर निहित मानवीय तत्त्व या गहन भावनाओं के चित्रण – विश्लेषण का अवकाश उसे नहीं होता।''[71]

भगवतीचरण वर्मा और डॉ. शशिभूषण सिंहल का आरोप असंगत प्रतीत होता है। रिपोर्ताज संघर्षशील विधा है, बदलते जीवन के संघर्ष को वास्तविकता के साथ सिर्फ रिपोर्ताज ही व्यक्त कर सकता है। यह स्पष्ट हो चुका है कि रिपोर्ताज समसामयिक यथार्थ घटनाओं पर आधारित होता है। इसमें अतीत की भावनाएं एवं भविष्य के प्रति उत्कट लालसा रहती है। 'रिपोर्ताज क्रांतिकारी संघर्ष का ही माध्यम बन सकता है, प्रतिक्रियावादी साहित्य का नहीं; ऐसी स्थिति में यह गुंजाइश ही कहां

बचती है कि रिपोर्ताज को शिथिल एवं भावनात्मक संघर्ष से रहित विधा माना जाये। यदि घटना के भीतर से 'मानवीय तत्त्व' को निकाल दिया जाये तो वह विधा रिपोर्ताज हो ही नहीं सकती। यदि ऐसा संभव होता तो वीरगाथा काल के साहित्य में रिपोर्ताज विधा का उत्स ढूढ़ा जाता। वीरगाथाकाल में होने वाले युद्ध पूर्णरूपेण अमानवीय थे। आदिकालीन हिन्दी कवियों ने अपने आश्रयदाता के बल–पराक्रम का वर्णन किया किन्तु युद्ध की विभीषिका, जनता के कष्टों की ओर ध्यान नहीं गया। यह है–घटना या स्थिति के ऊपरी रूप का वर्णन। यदि इसमें मानवीयता का तत्त्व समाहित रहता तो निसंदेह वीरगाथाकाल की रचनाओं में हम रिपोर्ताज विधा के आदि साहित्यिक रूप को अवश्य ढूंढ़ते। कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज में मानवीय तत्त्व अनिवार्य हैं। अतः उपरोक्त दोनों विचारकों के आरोप बेबुनियाद हैं। तारिणीचरण दास के शब्दों में –''संवेदना से ही इसकी उत्पत्ति और संवेदना की जागृति में इसका अंत है।''[72]

इतना ही नहीं तारिणीचरण दास मानवीय मूल्य को रिपोर्ताज का धर्म मानते हैं। वे लिखते हैं– ''मनुष्य के प्रति सहज सुलभ आकर्षण तथा पीड़ित मानवता के प्रति गहरी संवेदना का ज्ञापन रिपोर्ताज का प्रधान धर्म है।''[73]

डॉ. अजित कुमार के अनुसार 'रिपोर्ताज लेखक के लिए आवश्यक है कि वह जनसाधारण के जीवन की सच्ची और सही जानकारी रखे और उत्सवों, मेलों, बाढ़ों, अकालों, युद्धों और महामारियों जेसे सुख–दुख के क्षणों में जनता को निकट से देखें।''[74] डॉ. अजित कुमार का विचार उत्तम है क्योंकि रिपोर्ताज लेखक को 'जनप्रिय' दृष्टिकोण रखना चाहिए। यदि रिपोर्ताजकार का दृष्टिकोण मानवीय नहीं है तो वह और उसकी रचना दोनों ही पाठकों की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सकती क्योंकि :पूंजीवाद या उसके समर्थक 'कलाकार' रिपोर्ताज की कला का विकास नहीं कर पाते।''[75] डॉ. रामविलास शर्मा भी रिपोर्ताज में मानवीय–मूल्यों की वकालत करते हैं। उनके अनुसार रिपोर्ताज में मानवीयता का समावेश तभी हो सकता है जब लेखक के हृदय में जनसाधारण के प्रति सच्ची और गहरी संवेदना हो। वे लिखते हैं – ''रिपोर्ताज लिखने के लिए जनता से सच्चा प्रेम होना चाहिए। वैसे तो साहित्य

के सभी रूपों के लिए यह शर्त है लेकिन रिपोर्ताज के लिए वह और भी जरूरी है।''[76]

रिपोर्ताज में लेखक के हृदय की संवेदना प्रवाहित होती है। यह संवेदना ही किसी शुष्क घटना को साहित्यिक विधा में परिवर्तित कर देती है, जिसके मूल में मानवीयता ही है। मानवीयता का तत्त्व ही देशकाल की सीमा का अतिक्रमण कर रिपोर्ताज को अंतर्राष्ट्रीय समाचार की क्षमता से युक्त साहित्यिक विधा का रूप प्रदान करता है। डॉ. माजदा असद के विचार से–''रिपोर्ताज देशकाल की सीमाओं से परे मानव मन को समाचार या घटना के कलात्मक प्रस्तुतीकरण से झकझोरने वाले किसी जीवन मूल्य से बंधा होता है।''[77]

उपरोक्त विवेचन–विश्लेषण से यह प्रमाणित होता है कि मानवीयता का तत्त्व रिपोर्ताज विधा की अनिवार्य विशेषता है और यह तत्त्व ही रिपोर्ताज को श्रेष्ठ साहित्य के रूप में स्थापित करता है।

6 घटना का प्रभाव

रिपोर्ताज घटना–प्रधान साहित्यिक विधा है जिसमें लेखक का पूरा ध्यान पड़ने वाले प्रभाव पर रहता है। प्रधान एक ही घटना होती है किन्तु इससे जुड़ी अन्य घटनाएं पाठक की भावनात्मक संवेदना को उद्दीप्त करने में सहायक होती हैं। इन सभी घटनाओं के सम्मिलित प्रभाव को ही रिपोर्ताजकार व्यक्त करता है। वर्णित होने वाली घटनाएं अपने इतिहास और संपूर्ण परिवेश के साथ व्यंजित होती है, तभी इनका स्थायी महत्त्व स्थापित हो पाता है, अन्यथा ये साधारण रिपोर्ट होकर ही रह जाती है। घटना के कारण, कार्य और प्रभाव एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े होते हैं कि अगर इनमें से कोई भी छूट जाये तो, वह रचना प्रभावहीन हो जाएगी। डॉ. शिवदान सिंह चौहान रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटना के आंतरिक शक्तियों का उद्‌घाटन करते हुए लिखते हैं –

''रिपोर्ताज के अंदर लेखक को वर्ण्य घटना या वस्तु का चित्रण करने के लिए उस पर तीन दिशाओं से आक्रमण करना होता है अर्थात उसकी रिपोर्ट में तीन तत्त्वों का समावेश रहता है। किसी घटना का इतिहास और उसका परिवेश

(Environment) तो रहता ही है, एक तीसरा तत्त्व भी रहता है जो रिपोर्ताज को कला का क्रांतिकारी रूप विधा बना देता है। यह तीसरा तत्त्व है उस घटना में भाग लेने वाली शक्तियों के भीतर इरादों, उनके कार्यक्रमों, उनकी गतिविधि, रीति–नीति और उनके संघर्ष के परिणाम पर निर्भर भविष्य की दिशाओं का स्पष्टीकरण।''[78]

रिपोर्ताज में किसी पक्ष को छोड़े बिना स्थिति का सविस्तार वर्णन करता है। लेखक सामाजिक, राजनीतिक और अन्य सभी पक्षों का मार्मिक चित्रण करता है। लेखक घटना का द्रष्टा या स्रोता ही नहीं होता। वह भोक्ता भी हो सकता है। यही कारण है कि रिपोर्ताजकार घटना का जीवंत वर्णन कर पाता है। वह घटना के कारणों और उसके परिणामों को भी व्यक्त करने में समर्थ होता है। डॉ. ओम प्रकाश सिंहल के शब्दों में–

''उसका अभीष्ट तो अपने युग में घटी किसी महत्त्वपूर्ण घटना के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और तत्संबंधी अन्य सभी आयामों को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करना ही होता है। रिपोर्ताज का लेखक किसी घटना का सिंहावलोकन मात्र नहीं करता अपितु घटना का प्रत्यक्ष द्रष्टा होने के नाते वास्तविक सत्य के उद्‌घाटन में सर्वथा समर्थ होता है। वह घटना विशेष से संबद्ध विभिन्न जटिलताओं को ही नहीं अपितु उस घटनाचक्र को परिचालित करने वाला नानाविध शक्तियों और उनके भीतर इरादों का पर्दाफाश करने का सफल एवं स्तुत्य प्रयत्न करता है।''[79]

रिपोर्ताज घटना के सहारे ही रचा जाता है। इसमें चरित्र–चित्रण नहीं होता है और यदि इसमें कभी चरित्र का समावेश होता भी है तो वह घटना का अंग मात्र होता है। भगवतीचरण वर्मा लिखते हैं– ''शब्दों के माध्यम से वातावरण को प्रस्तुत कर देना, उस वातावरण की सामूहिक घटनाओं तथा सामूहिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं का चित्रण करना– इस क्रम में थोड़ा–बहुत भावनात्मक अभिव्यक्ति रिपोर्ताज में आ जाती है। लेकिन जो चरित्र इन रिपोर्ताजों में आते हैं, इनमें किसी को ऐसे केन्द्र के रूप में नहीं माना जा सकता जिसके इर्द–गिर्द घटनाक्रम का जाल बुना जा सके–वे कर्ता न होकर सामूहिक वातावरण के अंग–भर होते हैं।''[80]

घटना का संबंध सामाजिक परिवेश से संचालित होता है। यही कारण है कि घटना के प्रभाव का विश्लेषण उसकी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।

वातावरण एवं परिवेश से जुड़कर ही घटना एवं स्थितियां अपना मूल्य ग्रहण करती हैं जो रिपोर्ताज विधा की प्रमुख विशेषता है। घटना से जुड़े संदर्भ रिपोर्ताज के सामाजिक पक्ष पर विशेष प्रभाव डालते हैं। शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में– ''यह साहित्य का ऐसा रूपविधान है जिसका महत्त्व आज की सामाजिक परिस्थिति को जाने बिना नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि उसका जन्म इन्हीं परिस्थितियों से हुआ है।''[81]

रिपोर्ताज में वर्णित होनी वाली घटनाएं यथार्थ होती हैं। यथार्थ घटनाओं के आधार पर ही इसके प्रभाव को उभारा जा सकता है, काल्पनिक घटनाओं पर नहीं। घटनाओं के प्रभाव को मानवीय संदर्भों में ही विश्लेषित किया जाता है।

7 रसमयता

रसमयता साहित्यिक सरसता होती है जिसकी अनुभूति से पाठक आनंद का अनुभव प्राप्त करता है। लेखक और रचना की सफलता इस बात में निहित है कि वह पाठक की अनुभूतियों को किस सीमा तक प्रभावित करती है। रिपोर्ताज में लेखक का उद्देश्य कहानी की रचना करना नहीं है। अपितु वह यथातथ्य वर्णित होने वाली घटनाओं में सरसता का समावेश कर साधारण रिपोर्ट को कथातत्त्व से युक्त कर देता है और वह रचना रिपोर्ताज बन जाती है।

रिपोर्ताज में तथ्य और घटना के पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन विशेष रूप से किया जाता है। किन्तु तब तक वह साहित्यिक विधा नहीं हो सकती, जब तक उसमें रसात्मकता का समावेश नहीं। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार – ''आंखों से देखने पर भी यदि केवल वस्तुगत सत्य का शुष्क वर्णन हुआ तो भी उसे रिपोर्ताज न कह सकेंगे।''[82]

कोई भी रचना रसात्मक तभी हो सकती है जब वह कथातत्व से युक्त हो। रिपोर्ताज में कथात्मक शैली में घटना–विवरण दिया जाता है। अतः रिपोर्ताज में घटना की प्रधानता होने के साथ ही कथातत्त्व अनिवार्य रूप से होना चाहिये। अजित कुमार के अनुसार– ''तथ्यों के वर्णन मात्र से रिपोर्ताज नहीं बन सकता,

रिपोर्ट भले ही बन सके। घटना–प्रधान होने के साथ ही रिपोर्ताज को कथातत्त्व से भी युक्त होना चाहिये।''[83]

रिपोर्ताज में वर्णित होनी वाली घटनाएं मानव की जिज्ञासा को उदीप्त कर देती हैं। मानव की यह जिज्ञासु प्रवृत्ति साहित्य में रस के संचार की आधारभूमि होती है। रिपोर्ताजकार छोटी–छोटी बातों के माध्यम से पाठक को आदि से अंत तक रसमग्न करता रहता है और पाठक साहित्य रस में निमग्न होता रहता है। अतः रिपोर्ताजकार अपनी रचना को रसमय बनाये रखने के लिए उसे कथातत्त्व से युक्त रखता है। डॉ. ओम प्रकाश सिंहल भी रिपोर्ताज में कथातत्त्व की अनिवार्यता को उक्त शब्दों में स्वीकार करते हैं–

''घटनाएं कथा–निर्माण के विभिन्न घटकों में से एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। यही कारण है कि प्रत्येक रिपोर्ताज में छोटी या बड़ी कोई न कोई कहानी जरूर होती है। कहानी के अभाव में मर्मस्पर्शी रिपोर्ताज की रचना हो ही नहीं सकती।''[84]

कहानी, उपन्यास और कविता में कल्पना का अंश विद्यमान रहता है, जिसके द्वारा हम इन विधाओं को आसानी से रसमय बना सकते हैं किन्तु रिपोर्ताज को रसमय बनाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि इसमें वर्णित होने वाली घटनाएं यथार्थ होती हैं और 'इन्हें वर्डसवर्थ की काव्य भावनाओं के समान शांति के क्षणों में लिखने के लिए छोड़ देने का अवकाश नहीं होता।''[85] ऐसे क्षणों में रिपोर्ताज को रसमय बनाने के लिए रिपोर्ताजकार को हास्यास्पद स्थिति से भी बचना होता है। यदि वह अपनी रचना में इस तत्त्व का सफलतापूर्वक समावेश नहीं कर पाता है तो उसकी रचना सिर्फ रिपोर्ट ही रह जाती है। आशय यह कि रसात्मकता का तत्त्व रिपोर्ताज का मानदंड होता है। अली मुहम्मद के शब्दों में– ''घटना या दृश्य का ज्ञान और आनन्दमयी लिपिबद्ध अनुभूति, जो पाठक को रसमग्न कर देती है, रिपोर्ताज की सफलता की सूचक होती है। यही वह कसौटी है जिस पर किसी रिपोर्ताज को कसा जा सकता है और उसकी सफलता–असफलता को परखा जा सकता है। अनुभूत घटना का भावमय हृदयग्राही वर्णन, जिसमें काव्यरूप जैसा आनन्द प्रदान करने की क्षमता हो मार्मिक रिपोर्ताज का ही रूप होता है। रिपोर्ताजकार कवि हृदय अवश्य रखता है, भले ही वह कवि न हो।''[86]

8 साहित्यिक कलात्मकता

किसी रचना को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने के लिए रचनाकार में कलात्मकता का गुण आवश्यक है। यह कलात्मक तत्त्व नीरस रिपोर्ट को भी साहित्य में परिवर्तित कर देती है। साहित्य में शब्द, शैली, और घटनाक्रम की सर्वोत्तम प्रस्तुति ही कलात्मकता होती है।

किसी यथार्थ घटना के कलात्मक प्रस्तुतीकरण को ही रिपोर्ताज कहा जाता है। मक्खनलाल शर्मा रिपोर्ताज के लिए तथ्य वर्णन और कथातत्त्व ही अनिवार्य नहीं मानते अपितु सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता के साथ कलात्मक प्रस्तुतीकरण को भी अनिवार्य मानते हैं। बिना कलात्मक प्रस्तुतीकरण के वह रचना रिपोर्ताज नहीं हो सकती। उनके अनुसार – रिपोर्ताज तथ्य वर्णन मात्र नहीं होता, उसमें घटना तत्त्व तथा कथात्मकता का पुट किसी न किसी रूप में अनिवार्यतः रहता है। जिस व्यक्ति में सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता तथा कलात्मक अभिरुचि एवं प्रस्तुतीकरण की शक्ति होती है वही रिपोर्ताज लेखक बन सकता है।''[87]

कला तत्त्व से युक्त ही कोई रचना साहित्यिक हो सकती है। रिपोर्ताज के लिए कलातत्त्व अनिवार्य है। किसी कलात्मक रचना को साहित्यिक संज्ञा तभी दी जाती है जब उसमें शब्द, शैली और घटनाक्रम को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाये। डॉ. माजदा असद के अनुसार– ''लेखक स्वयं अपनी आंखों से देखकर रिपोर्ट तैयार करता है और अपनी सहज स्पंदन कला से घटना में रमणीयता ला उसे साहित्यिक बना देता है। दूसरे शब्दों में साहित्यिक एवं कलात्मक रिपोर्ट को रिपोर्ताज कहा जा सकता है।''[88]

अतः कलात्मक प्रस्तुतीकरण के द्वारा ही लेखक वर्तमान घटनाओं पर आधारित रिपोर्ताज विधा को ऐतिहासिक महत्त्व के साहित्य में परिणत कर देता है, जिसमें किसी महत्त्वपूर्ण घटना के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि अनेक आयामों का वर्णन किया जाता है।

9 रोचकता

अन्य समस्त साहित्यिक विधाओं की भांति रिपोर्ताज में भी रोचकता का गुण विद्यमान होना चाहिए। रोचकता किसी साहित्य का वह गुण है जो पाठक को आनंद की अनुभूति प्रदान करता है उसे पूरी रचना को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। रसात्मकता के साथ–साथ रोचकता भी पाठक को रचना से बांधे रखती है। अन्य साहित्य विधाएं कल्पना पर आधारित होती हैं। अतः उनमें रोचकता का गुण आसानी से पैदा किया जा सकता है किन्तु रिपोर्ताज में यह आसानी से संभव नहीं है। डॉ. वीरपाल वर्मा के शब्दों में– 'अन्य साहित्यिक विधाओं की भांति रिपोर्ताज में भी रोचकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह स्थान तब और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है जब हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हैं कि जहां अन्य विधाओं के लेखक कल्पना करके भी रोचकता उत्पन्न करते हैं, वहां रिपोर्ताज लेखक सत्य की पूर्णतः रक्षा करते हुए रोचकता को उत्पन्न करता है। विशेषतः पत्रकारों में यह विशेषता अधिक मात्रा में पायी जाती है।''[89]

रिपोर्ताज में रोचकता उसकी कौतूहल वृत्ति के कारण उत्पन्न होती है जो रचनाकार के समक्ष एक चुनौती प्रस्तुत करती है कि घटना की यथार्थता को बिना ठेस पहुंचाये रचना में इस तत्त्व का समावेश कर दे। अतः रोचकता, रिपोर्ताज का अनिवार्य तत्त्व है।

10 मर्मस्पर्शिता

अन्य गद्य विधाओं की भांति मर्मस्पर्शिता रिपोर्ताज का अनिवार्य तत्त्व है। रिपोर्ताजकार के लिए आवश्यक है कि रचना में वर्णित मार्मिक स्थलों के द्वारा पाठक की संवेदना को उद्वेलित कर सके। आचार्य शुक्ल लिखते हैं– ''प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।''[90]

यही बात रिपोर्ताज विधा पर भी लागू होती है। रिपोर्ताज जो पाठक के मर्म को नहीं छू पाता, वह रिपोर्ट ही रह जाता है। रिपोर्ताज का मर्मस्पर्शिता ही उसके समाचार संप्रेषणीयता को बढ़ावा देता है। अन्य विधाओं की तरह रिपोर्ताज को

मार्मिकता से युक्त करना आसान नहीं है। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार –''यद्यपि मार्मिकता की भूमिका प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं में होती है, तथापि विशेष रूप से रिपोर्ताज के लिए इसकी भूमिका इसलिए बढ़ जाती है कि इस विधा में घटना का यथातथ्य चित्रण होता है। अतः वर्णित मार्मिकता भी कल्पनाजनित न होकर वास्तविक ही होती है, लेखक की अपनी स्वयं की आंखों–देंखी होती है।''[91]

लेखक सिर्फ द्रष्टा ही नहीं होता, घटनाओं का भोक्ता भी होता है। मार्मिक वर्णन को पढ़कर पाठक अपनी अनुभूति को पात्रों के दुख तथा उनकी विवशता से जोड़ देता है। मानवता के प्रति गहरी संवेदना का ज्ञापन ही रिपोर्ताजकार का प्रधान धर्म बन जाता है। डॉ. तारिणीचरण दास ने ठीक ही लिखा है कि– ''रिपोर्ताज सत्य और तथ्य पर आधारित एक मार्मिक गद्य विधा है।''[92]

मार्मिक रिपोर्ताज लिखने के लिए आवश्यक है कि लेखक के मन में 'जनसाधारण के प्रति सच्चा प्रेम हो एवं वह उनके दुख में दुखी एवं सुख में आनन्द का अनुभव करे। रिपोर्ताज में क्रांतिकारी संघर्षों को अभिव्यक्ति दी जाती है, प्रतिक्रियावादी ताकतें इसमें स्थान नहीं पाती। जिन लेखकों के हृदय में मानवता के प्रति प्रेम नहीं है, वे रिपोर्ताज नहीं लिख सकते। डॉ. शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में–''पूंजीवाद या उसके समर्थक 'कलाकार' रिपोर्ताज की कला का विकास नहीं कर पाते।''[93]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त तत्त्व और विशेषताएं रिपोर्ताज विधा के लिए अनिवार्य हैं। इन तत्त्वों के सम्मिलित प्रभाव के आधार पर ही समाचार–पत्रों के रिपोर्ट, साहित्यिक विधा बनकर रिपोर्ताज का रूप लेते हैं। इनमें से कुछ तत्त्व अन्य साहित्यिक विधाओं में सामान्य रूप से पाए जाते हैं किन्तु रिपोर्ताज में इनकी उपस्थिति असमान्य रूप से होती है। तत्त्वों का यह असमान्य रूप अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग रिपोर्ताज को क्रांतिकारी संघर्ष का माध्यम बनाते हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर रिपोर्ताज ऐतिहासिक जीवंत तथ्य के साथ ही वर्तमान जीवन की संघर्षमयी वास्तविकता का वाहक बनता है।

1.2 रिपोर्ताज और रिपोर्ट

'रिपोर्ताज' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है और 'रिपोर्ट' अंग्रेजी भाषा का। रिपोर्ट का अर्थ होता है – आंखों देखा हाल और रिपोर्ताज साहित्यिक विधा है। शब्दगत समानता होने के कारण प्रायः भूलवश दोनों को एक मानने का भ्रम पैदा होता है। यद्यपि दोनों में अंतर स्थापित करना बहुत कठिन है, फिर भी साहित्यिक दृष्टि से दोनों के अर्थ और अंतर–संबंध को स्पष्ट करना अनिवार्य है।

डॉ. मक्खनलाल शर्मा के अनुसार–''रिपोर्ताज (सूचनिका) मूलतः फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। अंग्रेजी का 'रिपोर्ट' शब्द घटना के यथातथ्य साध्य वर्णन से युक्त होती है। रिपोर्ट का सीधा संबंध समाचार पत्र से होता है। जब इस रिपोर्ट में कलात्मक तत्त्व तथा साहित्यिकता का समावेश हो जाता है तभी इसे रिपोर्ताज की संज्ञा उपलब्ध हो जाती है। रिपोर्ट और रेखाचित्र को मिला दें तो रिपोर्ताज का रूप सामने आ जाता है।''[94]

डॉ. शर्मा के इस वक्तव्य से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं–

i) रिपोर्ताज, जिसे हिन्दी में सूचनिका कहते हैं, फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, जबकि 'रिपोर्ट' अंग्रेजी भाषा का।

ii) रिपोर्ट का संबंध समाचार से होता है जिसमें यथातथ्य वर्णन मात्र होता है यानि तथ्यों का ब्यौरा मात्र होता है।

iii) कलात्मकता और साहित्यिकता का समावेश हो जाने पर ही कोई रिपोर्ट, रिपोर्ताज बनती है।

iv) रिपोर्ट और रिपोर्ताज दोनों का संबंध पत्रकारिता से अनिवार्य रूप से है। इस संबंध में अली मुहम्मद का यह कहना सत्य प्रतीत होता है – ''जब पत्रकारिता का संयोग कहानी, निबंध, रेखाचित्र या संस्मरण से कर दिया जाता है तब वह रिपोर्ताज की श्रेणी में आकर एक नई विधा के जन्म का कारण बनती है।''[95]

शांति स्वरूप गुप्त रिपोर्ताज को पत्रकारिता से जुड़ा मानते हैं। वे दोनों में संबंध स्थापित करते हुए भी कल्पना, भावुकता और शैलीगत आधार पर रिपोर्ट और रिपोर्ताज में अंतर स्थापित करते हैं। उनके विचार से–''पत्रकार–कला से इसका गहरा संबंध है। रिपोर्ट समाचार पत्र के लिए संवाददाता लिखता है, उसमें तथ्यों का अंकन मात्र होता है क्योंकि उसका लक्ष्य पाठकों को तथ्यों से परिचित कराना होता है, रिपोर्ताज समाचार पत्रों की शैली में न लिखा जाकर साहित्यिक शैली में लिखा जाता है। अतः वह साहित्यिक विधा है, उसमें साहित्य कल्पना, भावुकता, संवेदना का पुट होता है।''[96]

पत्रकारिता और साहित्य का क्षेत्र अलग–अलग है किन्तु दोनों विधाएं अपने स्वतंत्र विकास के लिए एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसलिए इनमें कुछ समानताओं का होना अकारण नहीं है। कहना न होगा कि भारतेन्दु–मंडल के लगभग सभी साहित्यकार, पत्रकार भी थे। मेरी दृष्टि में यही प्रमुख कारण है कि रिपोर्ताज का विकास पत्रकारिता से हुआ है। यह सत्य ही है कि हिन्दी रिपोर्ताज का उत्स, विद्वानों द्वारा भारतेन्दु कृत 'दिल्ली दरबार–दर्पण', बाबू चंडी प्रसाद सिंह कृत 'प्रिंस ऑफ बेल्स' और 'युवराज की यात्रा' में ढूंढा जाता है। किन्तु रिपोर्ताज, रिपोर्ट से अलग होता है। गुलाब राय के शब्दों में– ''रिपोर्ट की भांति यहाँ घटना और घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है किन्तु इसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है, वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार आवरण डाल उसे प्रभावमय बना देता है।''[97]

रिपोर्ताज और रिपोर्ट दोनों में यथार्थ घटनाओं के माध्यम से रचनाकार नये मानवीय संबंधों की तलाश करता है। इसी अर्थ में पत्रकारिता और रिपोर्ताज में समानता है। किन्तु दोनों में अटूट संबंध होते हुए अंतर भी है। पत्रकार यथार्थ घटना के स्थूल रूप को चित्रित करता है जबकि रिपोर्ताजकार की दृष्टि घटना में उपस्थित सूक्ष्म यथार्थ और शक्तियों के भीतरी इरादों, उनके कार्यक्रमों, उनकी गतिविधि, रीति–नीति और उनके संघर्ष के परिणाम पर निर्भर भविष्य की दिशाओं की ओर रहती है।

दोनों विधाएं समसामयिक घटनाओं पर आधारित हैं। रिपोर्ताज में तात्कालिक प्रभाव का वर्णन महत्त्वपूर्ण होता है जबकि रिपोर्ताज सामयिक घटनाओं को शाश्वत सत्य से जोड़ देता है। कलावादी विद्वान जब 'कला, कला के लिए' की बात करते हैं, वहीं रिपोर्ताजकार अपनी रचना में युग बोध और युग संघर्ष का वर्णन करता है। रिपोर्ताज ऐतिहासिक महत्त्व के विषय में माजदा असद लिखती हैं ''रिपोर्ताज का ऐतिहासिक महत्त्व भी है, क्योंकि वह घटनाओं की प्रस्तुति के द्वारा अपने युग के जीवन–इतिहास को प्रस्तुत करता है।''[98]

समाचार–पत्रों की रिपोर्ट में संवेदनात्मक अनुभूति का अभाव रहता है। पत्रकार किसी घटना को तटस्थ भाव से देखने का प्रयास करता है, जबकि रिपोर्ताजकार उस घटना के साथ तटस्थ होकर नहीं रह पाता और उसकी संवेदनात्मक अनुभूति उस घटना तथा उसके प्रभाव से जुड़ जाती है। संवेदना के आधार पर रिपोर्ट और रिपोर्ताज में अंतर बताते हुए भगवतीचरण वर्मा लिखते हैं – पत्रकारिता का एक नियम है– जहां तक संभव हो सके पत्रकार को व्यक्तिगत भावना से अलग रहना चाहिए। लेकिन वैयक्तिक और सामाजिक भावना में तटस्थता संभव नहीं है। इसलिए वे रोचक वर्णन जो मानव के कौतूहल को प्रभावित कर सके, वे तो पत्रकारिता में सफल होते हैं, लेकिन जहां पत्रकार अपनी निजी भावना से ग्रस्त हुआ कि उसकी भेजी खबरें अपना महत्त्व खो देती हैं। रोचकता के साथ लेखक की भावनात्मक अभिव्यक्ति ने मिलकर रिपोर्ताज की पत्रकारिता से अलग साहित्यिक विधा के रूप में जन्म दिया।''[99]

रिपोर्ट में घटना के तथ्यों पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि कला की तरफ ध्यान देना जरूरी नहीं समझा जाता। रिपोर्ताज में तथ्यों का कलात्मक और प्रभावोत्पादक ढंग से वर्णन किया जाता है। डॉ. ओमप्रकाश सिंहल के अनुसार– ''रिपोर्ट से यह इस अर्थ में भिन्न है कि उसमें जहां कलात्मक अभिव्यक्ति का अभाव होता है तथा तथ्यों का लेखा–जोखा मात्र रहता है, वहां रिपोर्ताज में तथ्यों को कलात्मक और प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त किया जाता है।''[100]

मानवीय–मूल्य ऐसा तत्त्व है जो रिपोर्ट और रिपोर्ताज के बीच अविभाज्य रेखा को स्पष्ट कर देता है। रिपोर्ट में सिर्फ समाचार और तथ्यात्मक विवरण होता

है, उसमें मानवीय मूल्यों को महत्त्व नहीं दिया जाता। इसका उद्देश्य समाज को समाचार से अवगत कराना होता है। रिपोर्ताज साहित्यिक विधा है और कोई भी रचना साहित्यिक तब तक नहीं हो सकती जब तक वह मानवीय मूल्य जैसे शाश्वत सत्य को धारण न करती हो। मानवीय मूल्य के आधार पर रिपोर्ट और रिपोर्ताज में अंतर को इस प्रकार समझा जा सकता है–''सामान्य समाचार में जहां तथ्यों का लेखा–जोखा भर रहता है वहां ये (रिपोर्ताज) देशकाल की क्षुद्र सीमाओं को तोड़कर संपूर्ण मानव जाति के हृदय को झकझोर कर रख देने वाले किसी जीवन–मूल्य के साथ संबद्ध होते हैं।''[101]

रिपोर्ताज में मानवीय मूल्य के साथ सूक्ष्म पैनी दृष्टि और विश्लेषण क्षमता अनिवार्य है क्योंकि केवल सुनी या पढ़ी घटनाओं पर रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता। कला–विहीन सौन्दर्य, अनुभूत सत्य का वर्णन भी सच्चे अर्थों में रिपोर्ताज नहीं हो सकता। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार– ''जो पत्रकार सिर्फ रिपोर्ट लिखना जानते हैं वे रिपोर्ताज लेखक नहीं हो सकते। जो लेखक घर बैठे कल्पना के सहारे साहित्य रचा करते हैं, उन्हें भी इस ओर सफलता पाने के लिए अपना पुराना क्रम बदलना होगा। रिपोर्ताज लिखने के लिए यह जरूरी है कि वह आधा पत्रकार हो और आधा कलाकार वह अपने चारों ओर के गतिशील जीवन की यथार्थ घटनाओं का इतिहासकार है, इसलिए वह अपना काम घर बैठे नहीं कर सकता।''[102]

स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर रिपोर्ट और रिपोर्ताज में अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। कोरी कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता।

हिन्दी साहित्य कोश में दोनों के अंतर को साहित्यिकता का आधार बनाया गया है। अजित कुमार लिखते हैं– ''रिपोर्ट किसी घटना के यथातथ्य साध्य वर्णन को कहते हैं। रिपोर्ट सामान्यतः समाचार पत्र के लिए लिखी जाती है और उसमें साहित्यिकता नहीं होती। रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।''[103]

कथात्मकता, रिपोर्ताज विधा की प्रमुख वि ोशता है। किसी यथार्थ घटना का वर्णन कितना भी कलात्मक और साहित्यिक रूप से क्यों न किया जाये, जब तक उसमें कथा का समावे ा नहीं होता वह रिपोर्ताज नहीं हो सकता; रिपोर्ट भले ही हो जाये। कथा तत्त्व, रिपोर्ताज की रसमयता और संप्रेशणीयता को तीव्र कर देता है जबकि रिपोर्ट में रसमयता का ध्यान ही नहीं दिया जाता क्योंकि पत्रकार का उद्देश्य तथ्यों का ब्यौरा देना होता है न कि कहानी कहना। अजित कुमार कथातत्त्व के आधार पर दोनों में अंतर बताते हुए कहते हैं–''तथ्यों के वर्णन मात्र से रिपोर्ताज नहीं बन सकता, रिपोर्ट भले ही बन सके। घटना प्रधान होने के साथ ही रिपोर्ताज भी कथातत्त्व से भी युक्त होना चाहिए।''[104]

रसमयता, मर्मस्पि ाता और चित्रात्मकता आदि अनेक तत्त्वों के आधार पर भी रिपोर्ट और रिपोर्ताज के अंतर को समझा जा सकता है। रिपोर्ताज एक मार्मिक गद्य विधा है जिसमें घटनाएं इस रूप में वर्णित की जाती हैं कि चित्रपट के समान वे आंखों के सामने घूम जायें, जबकि रिपोर्ट में इन तत्त्वों का कोई स्थान नहीं है। दोनों विधाएं पत्रकारिता से ही जुड़ी हैं। रिपोर्ताज में जहां लोकमंगल की भावना जुड़ी होती है वहीं रिपोर्ट इन सबसे परे भाुद्ध रूप से समाचार–संप्रेशण पर आधारित है जिसमें सिर्फ कटु सत्य का ही वर्णन किया जाता है। रिपोर्ट में साधारण और नगण्य सी घटनाओं को स्थान प्राप्त हो सकता है किन्तु रिपोर्ताज किसी वि ाश्ट घटना, दृश्य, उत्सव और युद्ध आदि का ही हो सकता है। किन्तु कभी–कभी छोटी घटनाओं पर भी रिपोर्ताज लिखे जाते हैं। यद्यपि ये घटनाएं छोटी अवश्य होती हैं किन्तु मूल्य और प्रभावान्विति में किसी बड़े रिपोर्ट से भी ज्यादा व्यापक और प्रभाव ाली होती हैं। डॉ. वीरपाल वर्मा ने ठीक ही लिखा है– ''आज अव य छोटी–छोटी घटनाओं पर रिपोर्ताज लिखे जा रहे हैं। किन्तु फिर भी वे घटनाएं इतनी छोटी, इतनी नगण्य नहीं होती। अपितु यह तो रिपोर्ताज– साहित्य का विशय क्षेत्र है जो बढ़ रहा है। रिपोर्ट से रिपोर्ताज का यह भेद पहले भी रहा है, आज भी है और आगे भी रहने की संभावना है।''[105]

1.3 रिपोर्ताज और गद्य की अन्य नवीन विधाएं

(i) कहानी

कहानी और रिपोर्ताज दोनों ही गद्य साहित्य की प्रमुख विधाएं हैं। इनमें गहरा संबंध है। विधागत तत्त्वों के आधार पर रिपोर्ताज और कहानी में एकतरफ कुछ विशमताएँ हैं तो दूसरी तरफ कुछ समानताएं भी हैं। इन्हीं समानताओं के आधार पर कभी–कभी रिपोर्ताज को कहानी मान लिया जाता है तो कभी–कभी कहानी में रिपोर्ताज का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। कथातत्त्व और भावनात्मक संवेदना के धरातल पर रिपोर्ताज और कहानी में समानता प्रतीत होती है। प्रत्येक रिपोर्ताज में कोई–न–कोई कहानी अव य रहती है जो इसे रिपोर्ट होने से बचाती है और साथ ही इस विधा को रोचक भी बनाती है। कथातत्त्व के आधार पर रिपोर्ताज और कहानी के अंतर को समझने में प्रायः भूल हो जाती है। इस समानता के बावजूद दोनों विधाओं में पर्याप्त अंतर है। कथातत्त्व के होते हुए भी कोई रिपोर्ताज, कहानी नहीं हो सकता। तारिणीचरण दास के शब्दों में– ''रिपोर्ताज में कथातत्त्व का साधारण हिस्सा रहते हुए भी वह कहानी नहीं है।''[106] कहानी की शिल्प–विधि में किए गए नये–नये प्रयोगों ने इसके कथातत्त्व की सीमा का अतिक्रमण किया है। कहानी ने जिन अन्य विधाओं के ि ाल्प को अपनाया है उनमें रिपोर्ताज प्रमुख है। यही कारण है कि रिपोर्ताज को छोटी कहानियों की कोटि में सम्मलित कर दिया जाता है। रिपोर्ताज को छोटी कहानियां समझने की भूल उसके कथातत्त्व के आधार पर ही किया जाता है।

समानता का दूसरा आधार है– भावनात्मक संवेदना। साहित्य में भावनात्मक संवेदना का निहित होना सामान्य बात है। भावनात्मक संवेदना कहानी और रिपोर्ताज में समान रूप से पायी जाती है। अगर रिपोर्ताज में भावनात्मक संवेदना न हो तो वह रिपोर्ताज हो ही नहीं सकता, रिपोर्ट भले हो। इसी आधार पर रिपोर्ताज को कहानी समझने की भूल हो जाती है। किन्तु भगवतीचरण वर्मा रिपोर्ताज की भावनात्मक संवेदना को कहानी से कमतर आंकते हुए इसमें निहित रोचकता को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार – ''रिपोर्ताज की भावनात्मक संवेदना उतनी स्थायी और प्रखर नहीं हो सकती जितनी क्रिया–प्रतिक्रिया गति से युक्त

कहानी में होती है। लेकिन रिपोर्ताज की कौतुहल वाली रोचकता कहानी की रोचकता से अधिक हो सकती है। आज संघर्शों में रत मानव को दूसरों की अंतर्मुखी भावना के प्रति संवेदना में रुचि दिलाने वाले कथा साहित्य का सृजन अतिशय कठिन काम हो गया है, बर्हिमुखी कौतूहल में रुचि लेना और उससे आनंद प्राप्त करने की प्रवृत्ति आज के समाज में अधिक मुखातिब दिखायी देती है।''[107]

भगवतीचरण वर्मा के इस कथन में विरोधाभास है। वे कहानी की भावनात्मक संवेदना को स्थायी और प्रखर मानते हैं जबकि रिपोर्ताज में नहीं। दूसरी ओर वे रिपोर्ताज के कौतूहल एवं रोचकता की कहानी को रोचकता से भी अधिक मानते हैं। किसी कृति में रोचकता का होना ही उसमें निहित भावनात्मक संवेदना को अभिव्यक्त करता है। वे रिपोर्ताज में रोचकता का आधिक्य मानते हैं। ऐसी स्थिति में रिपोर्ताज में भावनात्मक संवेदना की प्रमुखता रहेगी। भावनात्मक संवेदना की प्रमुखता ही कहानी और रिपोर्ताज में भ्रम उत्पन्न करती है।

कहानी के भावात्मक संवेदना के विशय में कुछ साहित्य– ाास्त्रियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। इन लोगों के अनुसार किसी घटना से उत्पन्न मार्मिक संवेदना को तेजी से व्यक्त किया जाता है। गुलाबराय ने लिखा है– ''छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति–केन्द्रित घटनाओं के आव यक उत्थान–पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रका ा डालने वाला वर्णन हो।''[108]

कृश्णदेव झारी के अनुसार– ''कहानी एक ऐसा छोटा सा स्वतः पूर्ण गद्यात्मक रूप है जिसमें एक प्रभाव और एक संवेदना से युक्त जीवन के किसी एक मार्मिक पहलू को आकस्मिक पूर्ण या उत्साहवर्धक क्षिप्रगति से चरम सीमा पर प्रकाि ात कर दिया जाता है।''[109]

भगवतीचरण वर्मा कहानी के तीन प्रमुख तत्त्वों की बात करते हैं। उनके अनुसार–''कहानी के तीन प्रमुख अवयव हैं– ''घटना, घटना के चरित्र और घटना के अंदर निहित भावनात्मक संवेदना। बिना किसी घटना के किसी कहानी की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। कला का उद्देश्य है भावनात्मक संवेदना, इसलिए भावनात्मक संवेदना उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी घटना और यह

भावनात्मक संवेदना उत्पन्न होती है कहानी के चरित्रों के प्रति। बिना चरित्र के न घटना घटित हो सकती है और न भावनात्मक संवेदना उत्पन्न हो सकती है। मेरा तो अनुभव यह है कि घटना, चरित्र और भावनात्मक संवेदना के ऐसे सांमजस्य के रूप में कहानी की सार्थकता और समर्थता है जिसमें पाठक इन तीनों को अलग–अलग न देख पाए।''[110]

कहानी के लिए कथा का तत्त्व, चरित्र, घटना का प्रभाव, निश्चित उद्देश्य और भावनात्मक संवेदना अनिवार्य है। इसमें से किसी को भी छोड़कर कहानी का सृजन नहीं किया जा सकता है। किन्तु रिपोर्ताज में ये सभी तत्त्व सम्मलित हों, अनिवार्य नहीं। रिपोर्ताज में चरित्र–चित्रण नहीं किया जाता और न ही इसमें किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत किया जाता है। कहानी में एक ही घटना का चित्रण किया जाता है जबकि रिपोर्ताज में एकाधिक घटनाओं के सम्मलित प्रभाव को चित्रित किया जाता है। इस तथ्य को स्पश्ट करते हुए रामविलास भार्मा लिखते हैं–

''रिपोर्ताज में जब तक एकाध छोटी कहानी न हो, वह काफी रोचक नहीं होता। परन्तु कहानी ज्यादातर एक ही घटना को लेकर चलती है और उसी को केन्द्र मानकर पात्रों का चरित्र अंकित किया जाता है। रिपोर्ताज में एक से अधिक घटनाएं हो सकती हैं, लेखक का लक्ष्य इनके सम्मिलित प्रभाव की ओर रहता है। वह कहानीकार की तरह किसी समस्या को लेकर नहीं चलता, न कहानी के अंत में समस्या के विचित्र समाधान से पाठकों को आ चर्य में डाल देना चाहता है। वह लेख के आरंभ से ही छोटी–छोटी बातों की ओर ध्यान आकर्शित करता है कि इन सबसे मिलकर एक बृहद चित्र बन सके। चरित्र–चित्रण के लिए कहानीकार के पास ही कम जगह होती है, रिपोर्ताज लेखक के पास तो और भी कम।''[111]

यथार्थता, समसामयिकता और मानवीय मूल्य के धरातल पर रिपोर्ताज और कहानी के बीच अंतर को समझा जा सकता है। यथार्थता, रिपोर्ताज का आग्रह है। रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाएं यथार्थ होती हैं, कल्पना पर आधारित नहीं। रिपोर्ताजकार इन घटनाओं का द्रष्टा और कभी–कभी भोक्ता भी होता है। अतः रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाएं न सिर्फ यथार्थ होती हैं, लेखक की स्वानुभूत

भी होती हैं। कहानी में वर्णित घटनाएं यथार्थ हों, आव यक नहीं। कहानीकार अपनी प्रतिभा के बल पर काल्पनिक घटनाओं पर भी कहानी सृजित कर सकता है।

रिपोर्ताज का संबंध वर्तमान से है। यह विधा समसामयिक घटनाओं पर आधारित होती है जिसमें लेखक छोटी–छोटी घटनाओं के वातावरण में अपने अंतर्वेगों द्वारा पाठक को प्रभावित करता है। कहानी विधा में समसामयिक घटनाएं ही कथावस्तु हो जरूरी नहीं। कहानीकार समसामयिकता के आग्रह से सर्वदा मुक्त है। किन्तु रिपोर्ताजकार कला और प्रतिभा के बल पर समसामयिक घटनाओं की साहित्यिकता को आवरण प्रदान कर पत्रकारिता की विधा रिपोर्ट को रिपोर्ताज बना देता है। रिपोर्ताजकार को कहानीकार की तरह साहित्य सृजन का अवका ा नहीं होता। यही कारण है कि रिपोर्ताज संघर्श ाील विधा बन गयी। समसामयिकता के आधार पर ि ावदान सिंह चौहान कहानी से रिपोर्ताज की वि ि ाश्टता को व्यक्त करते हैं– ''आज के क्रांति युग में रिपोर्ताज एक ऐसा रूप–विधान है जिसके द्वारा वर्तमान जीवन की संघर्शमयी वास्तविकता का अनुभव पाठकों द्वारा पहुंचाया जा सकता है। रिपोर्ताज में कहानी और उपन्यास के भी कई गुण रहते हैं। लेकिन उसके अंदर तैयार किए गए परिवे ा, चरि़त्र और घटना में यथार्थता और सत्यता अधिक मात्रा में रहती है। उपन्यासों और कहानियों के अनुभवी लेखक कह सकते हैं कि उनको वे इतनी गति ाीलता, वास्तविकता की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बन सकते। उनके अंदर तो वे उसकी तह में अधिक–से–अधिक भाक्तियों के विराट संयोजन, संघटन और संघर्श को ही चित्रित कर सकते हैं। किन्तु ज्वार का ऊपरी सामयिक लहरों को अंकित नहीं कर सकते। रिपोर्ताज की वि ोषता यही है कि वह उन्हें ही अंकित कर सकता है।''[112]

कहानी में किसी घटना या समस्या का वर्णन किया जाता है जबकि रिपोर्ताज में लेखक का ध्यान घटना के प्रभाव के साथ मानवीय मूल्य पर भी रहता है। कहानी में घटना के प्रमुख केन्द्र पात्र होते हैं। अद्यतन विकास के कारण रिपोर्ताज में चरित्र संलग्न किए जाने लगे हैं, लेकिन जो चरित्र इन रिपोर्ताजों में आते हैं उनमें किसी को ऐसे केन्द्र के रूप में नहीं माना जा सकता जिसके

इर्द–गिर्द घटना क्रम का ताना–बाना बुना जा सके। ये चरित्र कर्त्ता न होकर सामूहिक वातावरण के अंग भर होते हैं क्योंकि रिपोर्ताज वातावरण प्रधान होता है।

रिपोर्ताज और कहानी में समानता के बावजूद, असमानता की अविभाज्य रेखा मौजूद है। यह अविभाज्य रेखा इतनी बारीक है कि, किसी रचना को रिपोर्ताज माना जाय या कहानी, भ्रम उत्पन्न कर देती है।

(ii) यात्रा–वृत्तांत

यात्रा–वृत्तांत का विकास रिपोर्ताज विधा के साथ ही हुआ। कुछ तत्त्व इन दोनों विधाओं में समान रूप से पाए जाते हैं। इसी आधार पर कभी–कभी रिपोर्ताज को यात्रा–वृत्तांत और यात्रा–वृत्तांत को रिपोर्ताज मान लिया जाता है। किन्तु ध्यानपूर्वक अवलोकन करने पर इन दोनों में अंतर और संबंध स्पश्ट हो जाता है। 'हिन्दी साहित्य कोश में डॉ. रघुवं ा यात्रा–वृत्तांत को परिभाशित करते हैं–''सौंदर्यबोध की दृश्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा–साहित्य कहा जा सकता है।''[113]

डॉ. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं– ''यात्रा–वृत्तांत में दे ा–विदे ा के प्राकृतिक दृ यों की रमणीयता, नर–नारियों के विविध जीवन–संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौंदर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु चित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिंबविधायिनी कल्पना– ाक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा वृत्ति को तुश्ट कर देता है।''[114]

इन परिभाशाओं से स्पश्ट होता है कि सौन्दर्य बोध और उल्लास की भावना से प्रेरित होकर जो साहित्यिक मनोवृत्ति का रचनाकार दे ा–विदे ा के विविध जीवन संदर्भों की कलात्मक और स्वच्छ अभिव्यक्ति करता है तो वह रचना यात्रा–वृत्तांत कहलाती है। इस आधार पर यात्रा–वृतांत के जो प्रमुख तत्त्व उभर कर आते हैं, उनमें वैयक्तिकता, कल्पना–प्रवणता, स्थानीयता, भावात्मकता, यथार्थता कलात्मकता आदि प्रमुख हैं। रिपोर्ताज और यात्रा–वृत्तांत अपनी कथात्मक संरचना

में इतने निकट हैं कि कभी–कभी रिपोर्ताज और यात्रा–वृत्तांत को अलग करना कठिन हो जाता है। यह स्थिति इतनी कठिन हो जाती है कि एक ही रचना को विद्वानों ने रिपोर्ताज और यात्रा–वृत्तांत मान लिया है।

रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाएं यथार्थ होती हैं किन्तु इन घटनाओं की अभिव्यक्ति भीघ्र की जाती है क्योंकि रिपोर्ताज गति ील यथार्थ को ही व्यक्त करता है। समसामयिकता का तत्त्व ही गति ील यथार्थ को वर्णित करने का प्रमुख कारण होता है। यात्रा–वृत्तांत में भी यथार्थ की ही अभिव्यक्ति होती है किन्तु वहाँ कल्पना की गुंजाइ ा होती है। यात्रा–वृत्तांत में समसामयिक यथार्थ की जगह बीते हुए यथार्थ का वर्णन किया जाता है। समसामयिकता, यात्रा–वृत्तांत का आग्रह नहीं है। डॉ. माजदा असद के भाब्दों में –''यात्रावृत्त शब्द का अर्थ है, यात्रा का वृत्तांत। यात्रा–वृत्तांत में मनुश्य के द्वारा भोगे हुए यात्रा के अनुभव को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यहां कल्पना के लिए ज्यादा गुंजाइ ा नहीं है। इसमें बीते हुए यथार्थ का वर्णन होता हैं।''[115]

ये दोनों विधाएं वर्णनात्मक हैं किन्तु इसकी विषय–वस्तु में अंतर है। रिपोर्ताज का लेखक किसी घटना के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक भौगोलिक और मानवीय प्रभावों का वर्णन करता है जबकि यात्रा–वृत्तांत का लेखक किसी स्थान के सांस्कृतिक, कलात्मक और ऐतिहासिक पक्ष को वर्णित करता है। दोनों के वर्णन में चित्रात्मकता होनी चाहिए तभी वर्ण्य–वस्तु का प्रभाव पाठक पर पड़ेगा। चित्रात्मकता के साथ साहित्यिकता और कलात्मकता का समावेश होना भी अनिवार्य है। यदि ये दोनों तत्त्व इन विधाओं में न रहे तो रिपोर्ताज, रिपोर्ट बनकर रह जाएगी और यात्रा–वृत्तांत पर्यटन गाइड एवं प्रचारात्मक पुस्तक बनकर। यात्रा–वृत्तांत में साहित्यिकता और कलात्मकता के अलावा एक और अनिवार्य तत्त्व कल्पना है, जिसके माध्यम से लेखक अपनी कथा को जीवंत बना देता है। इस संबंध में डॉ. माजदा असद का कहना है–

''यात्रा–वृत्तांत में अतीत यानी बीते समय, दूर बसे स्थान को विषय बनाया जाता है। कल्पना से भी कुछ काम लेकर वृत्त को रोचक बनाने का प्रयास होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भोगे हुए यथार्थ को कल्पना की झीनी–झीनी

चदरिया में ढांककर पेश किया जाता है। यात्रावृत्त की यह विशेषता ही उसे प्रचारात्मक पुस्तक पर्यटन गाइड होने से बचाती है और साहित्यिकता का जामा पहनाती है।''[116]

यात्रा–वृत्तांत में लेखक का निजीपन बार–बार अभिव्यक्त होता है। जैसे–जैसे लेखक यात्रा के अनुभवों से गुजरता है, उसे अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्त करता चलता है। रिपोर्ताज में लेखक का निजीपन कभी हावी नहीं होता है। यात्रा–वृत्तांत में लेखक के निजीपन के विषय में तारिणीचरण दास लिखते हैं– ''असली यात्रा भी झलकती है। किसी देश या स्थान के अलावा वहां की जनता तथा संस्कृति के प्रति जो प्रतिक्रियाएं लेखक के मन में तत्काल जागृत होती हैं, वे यात्रा वर्णन अथवा भ्रमण–वृत्तांत का रूप लेकर व्यक्त होती हैं।''[117]

रिपोर्ताज लेखक घटना से प्रभावित जन सामान्य को वर्णित करता है तो यात्रा–वृत्तांतकार यात्रा के समय अर्जित किए गए निजी अनुभवों को। रिपोर्ताज लेखक घटना का द्रष्टा और भोक्ता दोनों होता है इसलिए उसके लेखन में मानवीयता के प्रति गहरी संवेदना और रागात्मक संबंधों की प्रेरणा परिलक्षित होती है, यात्रा–वृत्तांत लेखक के लेखन में इन दोनों का अभाव रहता है। यह अभाव इसलिए रहता है क्योंकि रिपोर्ताजकार की तरह यात्रा–वृत्तांत का लेखक घटना का द्रष्टा या भोक्ता न होकर, निरीक्षक मात्र होता है। संवेदनशीलता दोनों विधाओं मे रहती है। रिपोर्ताजकार मार्मिक वर्णन के माध्यम से जहां पाठक के हृदय में घटना का तादात्मय स्थापित कर देता है, वहीं यात्रा–वृत्तांत का लेखक अपने निर्भीक विवरणों से पाठक को प्रभावित करने का अद्वितीय प्रयास करता है। इसीलिए रिपोर्ताज में संवेदनशीलता होती है जबकि यात्रा–वृत्तांत में अनुभूतिगत व्यापकता एवं निरपेक्षता भी। तारिणीचरण दास के शब्दों में–

''रिपोर्ताज तथा 'यात्रा' दोनों में स्थानीय वर्णन होते हैं, लेकिन पहले में लेखक की प्रतिक्रियाएं संवेदनापूर्ण तथा सहानुभूत्यात्मक होती हैं और दूसरे में एक निरीक्षक की–सी तीव्र, विचारक की –सी निरपेक्ष और कवि की भांति आत्म विस्तृत तथा तल्लीन करने वाला। अर्थात् यात्राकार किसी देश की स्थितियों एवं रीति–रिवाजों को देखकर अपनी प्रतिक्रियाएं बिना रोक–टोक के व्यक्त कर सकता

है। परंतु रिपोर्ताज में संवेदनशीलता ही मुख्य रहती है। दोनों में स्थानिक वर्णन होते हुए भी लेखक की प्रतिक्रियाएं अलग–अलग होती हैं। रोचकता तथा हृदयग्राहिता दोनों के गुणों में है। जहां मार्मिक वर्णनों से रिपोर्ताज हृदय को स्पर्श कर पाता है, वहीं यात्रा निर्भीक विवरणों से अपना कार्य पूरा करती है। एक में संवेदनशीलता होती है और दूसरे में अनुभूतिगत व्यापकता तथा निरपेक्षता।''[118]

रिपोर्ताज किसी महत्त्वपूर्ण घटना का भावना–संपृक्त विवरण होता है जबकि यात्रा–वृत्त में ऐसी भावना के लिए स्थान नहीं है।

इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि रिपोर्ताज में संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है जबकि यात्रा–वृत्तांत में संवेदनात्मक अनुभूति के लिए स्थान नहीं होता है। इसमें लेखक निरपेक्ष ढंग से यात्रा–स्थलों का वर्णन करता है।

कला की दृष्टि से देखा जाए तो रिपोर्ताज और यात्रा–वृत्तांत दोनों निबंध विधा से मिलते–जुलते हैं। घूमने की जिज्ञासा के फलस्वरूप यात्रा–वृत्तांत का विकास हुआ है जबकि घटना विवरण जुटाने की वृत्ति के आधार पर रिपोर्ताज विधा का विकास हुआ है। यात्रा–वृत्तांत में देखे गए घटना–स्थलों व दृश्यों की रिपोर्टिंग की जाती है जबकि रिपोर्ताज में भी इन्हीं तथ्यों का चित्रण होता है। किन्तु इतनी समानता होने के बावजूद दोनों विधाओं का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। यात्रा–वृत्तांत का लेखक वर्तमान को ही नहीं देखता, अतीत की भी झलक प्रस्तुत करता है। रिपोर्ताजकार भी घटना के वर्तमान संदर्भ तो व्यक्त करता ही है, साथ ही उसके अतीत का विश्लेषण करता है और भविष्य के मूल्यों के प्रति उत्कट लालसा भी प्रकट करता है।

यात्रा–वृत्तांत लेखन महत्त्वपूर्ण स्थलों और दृश्यों को केन्द्र में रखकर किया जाता है जबकि रिपोर्ताज लेखन छोटी–से–छोटी घटनाओं पर भी मार्मिक ढंग से किया जा सकता है। रिपोर्ताज लेखक जनसाधारण के प्रति ज्यादा उत्तरदायी होता है। यही कारण है कि इसमें मानवीय मूल्य सर्वोपरि होते हैं। यात्रा–वृत्तांत लेखन में मानवीय मूल्यों का ध्यान नहीं रखा जाता है जिसके मूल में लेखक की तटस्थता और निरपेक्षता है। यात्रा–विवरण को मात्र तथ्यात्मक न रखकर उसमें यथासंभव निजी अनुभूतियों और रागात्मक संवेदनों का मिश्रण करना चाहिए। वर्णन में

क्रमबद्धता तथा व्यवस्था का होना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भाषा की चित्रमयता यात्रा–वृत्तांत को स्पृहणीय बनाने में सहायक होती है।

एक समय के बाद यात्रा–वृत्तांत में ठहराव आ जाता है। जैसे–जैसे यात्रा के साधनों का विकास होता जाएगा, लोग उन विशिष्ट स्थलों की यात्रा कर लेंगे जिनकी कठिन यात्रा करके कभी यात्रा–वृत्तांत लिखा गया था और लोग इन वृत्तांतों को बड़ी सुरुचि से पढ़ते थे। धीरे–धीरे यात्रा–वृत्तांत की रोचकता में कमी आती जाएगी और भविष्य में उनमें इतनी रोचकता नहीं बचेगी कि लोग उसे पढ़े। रिपोर्ताज के साथ ऐसी बात नहीं है। रिपोर्ताज में वर्तमान जीवन की संघर्षमयी वास्तविकता की अभिव्यक्ति की जाती है और इसमें परिवर्तनशील मूल्यों को स्थान दिया जाता है, ऐसी स्थिति में एक ही घटना पर दो लेखकों द्वारा लिखे गए रिपोर्ताज समान नहीं हो सकते।

कभी–कभी रिपोर्ताज लेखन का आधार यात्रा हो सकता है किन्तु उसे हम यात्रा–वृत्तांत नहीं कहेंगे अगर उसमें लेखक ने किसी घटना–विशेष का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। इस तरह रिपोर्ताज शैली में भी यात्रा–वृत्तांत लिखे जाते हैं। इस प्रकार यात्रा–वृत्तांत किसी यायावर द्वारा अविस्मरणीय स्थलों को केन्द्र में रखकर लिखी गई साहित्यिक विधा है जिसमें स्थल विशेष का वर्णन होता है जो मानवीय–मूल्य और स्वानुभूति से संपृक्त रहती है। यात्रा–वृत्तांत में सांस्कृतिक धरोहर तथा भौगोलिक दृश्यों को चित्रित किया जाता है जबकि रिपोर्ताज में समसामयिक घटनाओं को।

(iii) रेखाचित्र

कथेतर गद्य विधाओं में रेखाचित्र महत्त्वपूर्ण विधा है। इसका संबंध चित्रकला से है। रेखाचित्र वस्तुतः शब्द चित्र होता है। जैसे रेखाओं के द्वारा चित्रकला में एक आकृति सामने खड़ी की जाती है, वैसे शब्द चित्रों द्वारा एक व्यक्ति, वस्तु या घटना का हूबहू चित्र सामने उपस्थित किया जाता है। रेखाचित्र में किसी वस्तु, मनुष्य या स्थान के बाह्य रूप से उनकी आंतरिक सुंदरता–कुरूपता, सम्पन्नता–विषमता को पकड़ने की चेष्टा होती है। उसमें अनुभूति और अनुभव का चित्रण मुख्य रूप से किया जाता है। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार– ''रेखाचित्र में रेखाएं बोलती हैं।

जिस प्रकार कुछ थोड़ी सी रेखाओं का प्रयोग करके रेखा चित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की मूलभूत विशेषता को उभार देता है, उसी प्रकार कुछ थोड़े से शब्दों का प्रयोग करके साहित्यकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी मूलभूत विशेषता के साथ सजीव कर देता है। रेखांकन करते समय वह अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को महत्त्व देता है। विषय को ही रूपायित करता है। जब कभी उसकी तटस्थता भंग होती है तो रंगों की चटक में रेखायें डूब जाती हैं।''[119]

डॉ. माजदा असद रेखाचित्र की परिभाषा निम्न शब्दों में करती हैं –

''रेखाचित्र में कुछ चुने हुए शब्दों द्वारा विषय–वस्तु, व्यक्ति, स्थान, घटना एवं दृश्य को साकार रूप में इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक के सामने पूरी तरह चित्रित हो सके। संपर्क में आए व्यक्तित्त्व, प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी–सुनी घटनाओं के साथ इस प्रकार उभार कर प्रस्तुत किया जाता है कि उसका निश्चित प्रभाव पाठक ग्रहण कर सके।''[120]

डॉ. शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में– ''साहित्य में रेखा चित्रकार एक ऐसा कलाकार है जो अपने पारिपार्श्विक जीवन की वास्तविकता के किसी अंग को– पशु–पक्षी, वृक्ष, इमारत, खंडहर, स्त्री, पुरुष, स्थान, गांव, मुहल्ला, नगर आदि किसी जड़ अथवा चेतना वस्तु को–एक चित्रकार के समान अंकित करता है, वास्तविकता के उस अंग को कल्पनासात कर उसके मर्म को संक्षेपण और पुनर्संगठन द्वारा अधिक प्रभावपूर्ण, संगठित और समतल से उभार करके, अपनी भाव–प्रक्रिया से उसके प्रभावों को अति रंजित कर देता है।

रेखाचित्र, चरित्र प्रधान होता है। घटनाओं के ऊपर भी रेखाचित्र लिखे जाते हैं किन्तु ये घटनाएं चरित्र प्रधान ही होती हैं। घटनाएं सिर्फ पृष्ठभूमि के लिए होती हैं। रिपोर्ताज में घटनाओं का वर्णन किया जाता है, किन्तु कभी–कभी चरित्र भी संलग्न कर लिए जाते हैं। चरित्र की यह संलग्नता वातावरण का अंग मात्र होती हैं। चरित्र–चित्रण करना रिपोर्ताजकार का उद्देश्य नहीं। भगीरथ मिश्र के शब्दों में–''रिपोर्ताज (सूचनिका) किसी स्थान या घटना का यथार्थ, सजीव, मर्मस्पर्शी और संवेदना को उभारने वाला वर्णन होता है। इसमें घटना या दृश्य प्रधान रहता है,

चरित्र या व्यक्ति नहीं। परन्तु शब्द चित्र में प्रधान, चरित्र और व्यक्ति रहता है। घटना आदि पृष्ठभूमि के लिए ग्रहण की जाती है।''[121]

रेखाचित्र में लेखक किसी विशेष दृष्टिकोण से किसी व्यक्ति को प्रस्तुत करता है जबकि रिपोर्ताजकार अपनी रचना में साहित्यिकता और कलात्मकता के द्वारा किसी घटना को प्रस्तुत करता है। तारिणीचरण दास के शब्दों में– ''जहां रेखाचित्र में वस्तु या व्यक्ति की प्रधानता रहती है, वहां रिपोर्ताज में सिर्फ घटना की प्रधानता रहती है। रेखाचित्र चित्रण–प्रधान होता है और रिपोर्ताज वर्णन प्रधान।''[122]

रेखाचित्र लेखन के लिए कल्पना अनिवार्य है। रेखाचित्रकार किसी विशेष व्यक्ति, वस्तु, दृश्य, घटना अथवा भाव स्मृतियों को कल्पना का सहारा लेकर जीवंत बना देता है। रिपोर्ताज में कल्पना का आश्रय न लेकर प्रत्यक्ष रूप से देखी गयी घटनाओं अथवा स्वयं सुनी गयी बातों का साहित्यिक शैली में मार्मिक चित्रण रहता है। मक्खनलाल शर्मा के अनुसार–''रिपोर्ताज कभी भी कल्पना प्रसूत नहीं हो सकता। उसे सदैव आखों देखी कानों–सुनी बातों पर आधारित होना होता है। अतः रिपोर्ताजकार को अधिक तटस्थ तथा मानसिक रूप से अधिक जागरुक रहकर कार्य करना होता है। किन्तु रेखाचित्र में कल्पना तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए अधिक अनुकूलता होती है, अतः उसमें रागात्मकता की वैशिष्टता स्वाभाविक है।''[123]

रिपोर्ताज में लेखक घटना का द्रष्टा या भोक्ता होता है और उसके द्वारा यथार्थ का ही वर्णन किया जाता है जबकि रेखाचित्र में रचनाकार पर्यवेक्षक की भूमिका में रहता है। रिपोर्ताज समसामयिक घटनाओं पर लिखा जाता है, इसलिए यह विधा तुरंत अभिव्यक्ति की मांग करती है। ऐसी स्थिति में रिपोर्ताजकार की कल्पना का आश्रय लेने का समय ही नहीं मिलता। रेखाचित्र, स्मृतियों के सहारे लिखा जाता है जो कल्पना के बगैर संभव नहीं है। हरबंशलाल शर्मा के अनुसार –

''रेखाचित्र और रिपोर्ताज' इन दोनों में घटना, स्थान अथवा व्यक्तियों का चित्रण किया जाता है। इनमें इतना ही अंतर है कि रेखाचित्र को कल्पना के रंग में रंगा जा सकता है, किन्तु रिपोर्ताज में उतना नहीं। रिपोर्ताज का वर्ण्य–विषय कभी कल्पित नहीं होता, या तथ्य को रूप देने भर के लिए उसमें कल्पना की सहायता ली जा सकती है।''[124]

रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाओं के रूप तथा उस घटना में भाग लेने वाली शक्तियों के भीतरी इरादों, उनके कार्यक्रमों, उनकी गतिविधि, रीति–नीति और उनके संघर्ष के परिणाम पर निर्भर भविष्य की दिशाओं को अभिव्यक्त किया जाता है। रेखाचित्र में लेखक का ध्यान इतना विस्तृत नहीं होता। उसमें रिपोर्ताजकार की भांति जनपक्षधरता का अभाव होता है। डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय के शब्दों में –

''व्यक्तियों के समूह घटना को जन्म देते हैं अतः उनकी आशा–आकांक्षाएं, उनकी चेष्टाएं, संदेह और निश्चय, पराक्रम और पलायन आदि सभी कुछ रिपोर्ताज में व्यक्त होते हैं। रेखाचित्र में लेखक एक सौंदर्यबोधक तटस्थता बरतता है किन्तु रिपोर्ताज में पक्षधरता ही अधिक व्यक्त होती आई है।''[125]

रेखाचित्र में किसी विशिष्ट व्यक्तित्त्व या विशेष संवेदना उभारने वाली विशेषताओं से युक्त किसी प्रमुख चरित्र के मार्मिक स्वरूप को स्मृतियों और घटनाओं के सहारे इस प्रकार रूपायित किया जाता है कि उसका प्रभाव पाठक के हृदय पर अंकित हो सके जबकि रिपोर्ताज में घटनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि पाठक की संवेदना लेखकीय संवेदना के साथ तादात्म्य स्थापित कर ले। अतः रिपोर्ताज की संप्रेषणीयता और उसमें व्यक्त युगीन द्रुतगामिता रेखाचित्र से कहीं अधिक होती है। संवेदनशीलता की दृष्टि से रिपोर्ताज, रेखाचित्र से अधिक तीव्र है।

रिपोर्ताज में घटना लेखक की प्रतिक्रिया और घटना के प्रभाव का वर्णन होता है जबकि रेखाचित्र में घटना की प्रभावान्विति मंद होती है क्योंकि इसमें चरित्र की बाह्य स्थितियों व अन्तःवृत्तियों को ही अभिव्यक्त किया जाता है। अतः रेखाचित्र या स्केच को मनोविज्ञान का भाग कहा जा सकता है, उसी तरह रिपोर्ताज को इतिहास और समाजशास्त्र का भाग कहा जा सकता है।

इतनी असमानताओं के बावजूद रिपोर्ताज और रेखाचित्र में कुछ समानताएं भी हैं जो एक–दूसरे का भ्रम उत्पन्न कर देती हैं। चित्रात्मकता, रिपोर्ताज का अनिवार्य तत्त्व है जो निश्चित रूप से रेखाचित्र की विलक्षणता है। यह एक ऐसा तत्त्व है जिससे यह लगता है घटनाएं पाठक के सामने चित्रपट की तरह खुलती जा रही है और पाठक के हृदय पर इसका प्रभाव अंकित हो जाता है। हिन्दी

साहित्य कोश में अजित कुमार लिखते हैं– ''वस्तुगत सत्य को रेखाचित्र की शैली प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करने में ही रिपोर्ताज की सफलता है।''[126]

चित्रात्मकता के द्वारा ही रिपोर्ताजकार सामान्य सी घटना को साहित्यिक रिपोर्ताज में बदल देता है। घटना परिवेश की संपूर्ण चित्रात्मकता के कारण संवेदना की तरंगों से युक्त घटना सजीव बन जाती है। रिपोर्ताज और रेखाचित्र के पारस्परिक संबंध पर प्रकाश डालते हुए डॉ. माजदा असद ने लिखा है ''चित्रात्मकता रिपोर्ताज की पहली विशेषता है, जो इसे रेखाचित्र या शब्द चित्र के निकट ला खड़ी करती है। प्रभावपूर्ण चित्रों के रूप में छोटी–छोटी घटनाओं को प्रस्तुत कर देती हैं। चित्रपट की तरह घटनाएं आंखों के सामने घूम जाती हैं। भावों और संवेदना के तरंगों से युक्त घटना चित्रात्मकता के कारण सजीव बन जाती है।''[127]

डॉ. मक्खनलाल शर्मा तो रिपोर्ट और रेखाचित्र के सम्मिलित रूप को ही रिपोर्ताज मानते हुए लिखते हैं– ''रिपोर्ट का सीधा संबंध समाचारपत्र से होता है। जब इस रिपोर्ट में कलात्मक तत्त्व तथा साहित्यिकता का समावेश हो जाता है तभी इसे रिपोर्ताज की संज्ञा उपलब्ध हो पाती है। रिपोर्ट और रेखाचित्र को मिला दें तो रिपोर्ताज का रूप सामने आ जाता है। अतः रिपोर्ताज का रेखाचित्र से गहरा संबंध है।''[128]

रेखा चित्रकार का उद्देश्य स्मृति पटल पर अंकित किसी धुंधली आकृति को सुरक्षित रखना होता है जबकि रिपोर्ताजकार अपनी रचना में घटना की जीती–जागती तस्वीर प्रस्तुत करता है जिसका ऐतिहासिक महत्त्व होता है। रिपोर्ताज लेखक अपनी दृष्टि घटना के साथ जुड़े मूल्यों को व्यक्त करता है जबकि रेखाचित्रकार अपनी रचना में व्यक्तित्त्व की विशिष्टताओं को उकेरने में संलग्न रहता है। आधुनिक समाज ने जीवन को इतना द्रुतगामी बना दिया है कि समसामयिक वास्तविकता को पकड़ने के लिए पुराने रचना विधान असमर्थ हो गए हैं। रिपोर्ताज और रेखाचित्र ऐसी दो विधाएं हैं जो आधुनिक जीवन की द्रूतगामी वास्तविकता से उत्पन्न होने के कारण संघर्षमयी वास्तविकता को रूपायित करने में सक्षम है। मक्खनलाल शर्मा के शब्दों में– ''रेखाचित्र और रिपोर्ताज की समानता इस दृष्टि से भी है कि रेखाचित्र में हल्के से हल्के उभारों द्वारा रंगों का उतर–चढ़ाव दिखाकर

समग्रचित्र की विशेषताओं को प्रकट करना होता है, उसी प्रकार रिपोर्ताज में सारगर्भित और अनुकूल शब्दावली द्वारा घटना या स्थिति का ठीक–ठीक एवं मार्मिक चित्र देना होता है।''[129]

(iv) संस्मरण

संस्मरण गद्य साहित्य की आत्मनिष्ठ विधा है जिसमें लेखक हृदय की निजी अनुभूतियों को व्यक्त करता है। यह गद्य साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें अतीत की स्मृतियों को वर्तमान में निरूपित करने का प्रयास किया जाता है। संस्मरण भोगे हुए जीवन के अनुभव होते हैं। संस्मरण को परिभाषित करना मेरे अध्ययन का विषय नहीं है किन्तु रिपोर्ताज से तुलना के क्रम में उसकी परिभाषा से परिचित होना भी अनिवार्य है। डॉ. राम चन्द्र तिवारी के शब्दों में– ''संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्त्ता को स्मृत रह जाते हैं; उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वहीं रह जाता है जो महत्ता, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णतः तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने स्व का पुनःसर्जन करता है।''[130]

संस्मरण को स्मृति से जोड़ते हुए डॉ. माजदा असद लिखती हैं– 'संस्मरण' शब्द का संबधं स्मृति से है। सम्यक स्मृति की वह अमिट छाप जिसे शब्दों द्वारा साहित्यिक ढंग से अभिव्यक्त किए जाए, संस्मरण कहलाती है। किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना, दृश्य और परिवेश को जब आत्मीयतापूर्ण रूप में याद किया जाये और उसका विवेचन कलात्मकता के साथ हो तो वह संस्मरण बन जाता है।''[131]

शशिभूषण सिंहल के अनुसार–''संस्मरण में लेखक स्मरण करने योग्य किसी व्यक्ति या वस्तु का गतिशील चित्र प्रस्तुत करता है। वह चित्रित किए जाने वाले व्यक्ति के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन कर उनके प्रमाण से उनकी विशेषताओं को रेखांकित करता है। इस विधा में चरित्र–चित्रण को प्रधानता मिलती है। यहां चरित्र का आशय है व्यक्ति के स्वभाव को व्यक्त करने वाला उसका

आचरण। लेखक व्यक्ति की चरित्रिक विशेषताओं को उसके आचरण के माध्यम से उद्‌घाटित करता है।''[132]

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर इस विधा के जो तत्त्व उभरकर आते है, उन्हीं के आधार पर इसका रिपोर्ताज से अंतःसंबधं स्थापित करने का प्रयास किया जाएगा। संस्मरण के निम्न तत्त्व हैं –

चरित्र–चित्रण,

अनुभूत स्मृतियों का अंकन,

लेखकीय दृष्टिकोण की प्रधानता,

तटस्थता/आत्मपरकता,

भावात्मकता,

विचारात्मकता,

निकटवर्तिता,

कल्पना का सामान्य संस्पर्श,

प्रामाणिकता।

जहाँ तक संस्मरण का रिपोर्ताज से अंतःसंबंध की बात है इस विधा के तत्त्व रिपोर्ताज में ही नहीं अन्य विधाओं में भी दृष्टिगत होते हैं। लंबे समय तक यात्रा–वृत्तांत, रेखाचित्र, आत्मकथा रिपोर्ताज और जीवनी आदि विधाओं को संस्मरण का ही एक रूप माना जाता रहा है। किन्तु अब सभी विधाओं का विकास स्वतंत्र रूप से हो गया है। कुछ ऐसे तत्त्व है जो प्रत्येक विधा को अन्य से अलग कर देते हैं।

रिपोर्ताज और संस्मरण दोनों विधाएं आपस में बहुत मिलती–जुलती हैं। साहित्य में संस्मरणात्मक रिपोर्ताज और रिपोर्ताज शैली–युक्त संस्मरण लिखे जाते रहे हैं जिन्हें पढ़कर विधागत भ्रम उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। किन्तु अब इन दोनों विधाओं में निहित तत्त्वों के आधार पर इसके बीच अंतर और संबंध की जांच–पड़ताल की जा सकती है।

रिपोर्ताज न तो आत्मपरक होता है और न ही चारित्रिक विशेषताओं से युक्त। यदि कभी चरित्र–चित्रण संलग्न किया जाता है तो वह भी वातावरण का भाग होता है। रिपोर्ताजकार घटनाओं को वस्तुपरक ढंग से वर्णित करता है, जिसमें उसका व्यक्तित्त्व समाहित नहीं होता जबकि संस्मरण में लेखक के स्व का पुनर्सृजन होता है। अली मुहम्मद के शब्दों में–''रिपोर्ताज में तथ्यों की प्रधानता रहती है अतः वह संस्मरण वाली आत्मपरकता से रहित वस्तुपरक अधिक होता है। पात्र या चरित्र से रहित रिपोर्ताज हो सकता है, लेकिन संस्मरण में यह असंभव है।''[133]

तारिणीचरण दास भी संस्मरण में वैयक्तिकता तथा चारित्रिक विशेषताओं को उभारने की बात करते हैं। रिपोर्ताज में न तो लेखकीय व्यक्तित्त्व शामिल होता है और न ही चरित्र–चित्रण को महत्त्व दिया जाता है। उन्हीं के शब्दों मे ''तथ्यात्मक या इतिवृत्तात्मक पद्धति को छोड़कर किसी व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने वाली रोचक घटनाओं या परिस्थितियों का वैयक्तिक संपर्क के आधार पर जिस रचना में लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता है, वह संस्मरण होता है।''[134]

रिपोर्ताज में वर्णित होने वाली घटनाएं किसी भी स्थान, दृश्य, वस्तु या व्यक्ति से जुड़ी हो सकती हैं किन्तु संस्मरण–लेखक उन्हीं चरित्रों को चित्रित करता है जिन्हें वह जानता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों रूपायित होते हैं। संस्मरण में वर्णित होने वाले चरित्र से लेखक का परिचय अनिवार्य होता है अन्यथा उसके लेखन की प्रामाणिकता संदिग्ध होगी। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार–''रिपोर्ताज के केन्द्र में घटनाएं होती हैं, चाहे वह किसी भी व्यक्ति (प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध), किसी भी स्थान, किसी भी दृश्य से जुड़ी हुई हों, जबकि संस्मरण के केन्द्र में चरित्र रहता है चाहे वह विराट व्यक्तित्त्व हो और चाहे सामान्य किन्तु उसमें विशिष्टता अवश्य होती है। यह स्मृति बड़ी पावन, संवेदनशील पूज्य भाव से की हुई होती है। रिपोर्ताज में घटना की चित्रात्मकता, सूक्ष्म निरीक्षण के साथ लेखक की संवेदनात्मक अनुभूति से जुड़ी होती है। अच्छी–बुरी किसी भी घटना पर रिपोर्ताज लिखा जा सकता है जबकि संस्मरण का लेखक अपने से जुड़ी किसी विशिष्ट एवं अविस्मरणीय स्मृति को ही अपने संस्मरण का विषय बनाएगा।''[135]

समसामयिक घटनाओं को केन्द्र में रखकर रिपोर्ताज की रचना की जाती है। रिपोर्ताजकार किसी घटना का अवलोकन करते ही अपनी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता है। रिपोर्ताज की सफलता इस बात में निहित है कि समसामयिक घटनाओं को कितने साहित्यिक, कलात्मक एवं संप्रेषणीय ढंग से व्यक्त किया जाये जबकि संस्मरण में समसामयिकता का आग्रह नहीं रहता। संस्मारण का लेखक अतीत की स्मृतियों को साहित्यिक रंग देता है। डॉ. वीरपाल वर्मा के शब्दों में–''संस्मरण अतीत की स्मृति को आधार मानकर लिखे जाते हैं।'' वह अतीत बहुत सदूर का हो सकता है जबकि रिपोर्ताज–लेखन का महत्त्व समसामयिक है। कोई घटना घटी कि उससे संबंधित रिपोर्ताज पत्र–पत्रिकाओं में आने लगे।''[136]

कहा जा सकता है कि संस्मरण अतीत की स्मृति होती है जबकि रिपोर्ताज चित्रात्मक शैली में वर्णित समसामयिक घटना का संपूर्ण चित्र। संस्मरण व्यक्तिगत विधा है तो रिपोर्ताज समष्टिगत। यही कारण है कि दोनों के उद्देश्यों में काफी अंतर है। मानवीय मूल्य और प्रतिबद्धता दोनों साहित्य रूपों में असमान पायी जाती है। संस्मरण में लेखक की प्रतिबद्धता किसी व्यक्ति विशेष के प्रति होती है जिनको वह जानता है जबकि रिपोर्ताज में लेखक उन मानवीय मूल्यों को तटस्थ भाव से रूपायित करता है जो मानवीय प्रतिबद्धता को पशुता की सीमा से ऊपर उठा देता है। डॉ. ओमप्रकाश सिंहल के अनुसार – ''यह प्रतिबद्धता दोनों में होती है, लेकिन संस्मरण लेखक की प्रतिबद्धता जहां किसी व्यक्ति विशेष के प्रति होती है, वहां रिपोर्ताज लेखक की प्रतिबद्धता किन्हीं जीवन मूल्यों के साथ।''[137]

संस्मरण– लेखक पुरानी यादों को कोमल कल्पना का संस्पर्श देकर सजीव बना देता है इसलिए इस विधा में काल्पनिकता और भावात्मकता का समावेश हो जाता है किन्तु रिपोर्ताजकार भावुकता में नहीं बहता। वह अपनी रचना में यथार्थ घटनाओं को ही चित्रित करता है। किन्तु इतना अवश्य है कि सिर्फ रिपोर्ताज लेखक ही नहीं, संस्मरणकार भी संबंधित व्यक्तित्त्व से जुड़ी यथार्थ घटनाओं को ही व्यक्त, करता है। इस अभिव्यक्ति के लिए वह कल्पना का सहारा लेता है। जीवन–मूल्यों और मानवीय प्रतिबद्धताओं की कथा में इन दोनों विधाओं में वह घटना स्थान पा सकती है जो प्रामाणिक हो।

हम कह सकते हैं कि संस्मरण में लेखक अतीत की स्मृतियों को चित्रित करता है जबकि रिपोर्ताज में स्थान पाने वाली घटनाएं वर्तमानकालिक होती हैं। संस्मरण में आत्मीयता और निजीपन सर्वत्र छाया रहता है जबकि रिपोर्ताज में लेखक का सूक्ष्म निरीक्षण सर्वत्र विद्यमान रहता है। साहित्यिक और मानवीय मूल्यों के साथ ही इन दोनों विधाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है।

संदर्भ सूची

[1] हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य : डॉ. सिस्टर क्लेमेंट मेरी, पृ. 101
[2] मधु संचय : विजयेन्द्र स्नातक, पृ. XIII- XIV
[3] हिन्दी रेखाचित्रः डॉ. हरवंशलाल शर्मा, पृ. 16
[4] गद्य के विविध रूप : माजदा असद, पृ. 14
[5] हिन्दी साहित्य का इतिहास : संपादक–डॉ. नगेन्द्र, पृ. 308
[6] हिन्दी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 308
[7] हिन्दी साहित्य कोश : संपादक–धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 560
[8] हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास : मक्खनलाल शर्मा, पृ.104
[9] हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ : डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, पृ. 37
[10] साहित्य के सिद्धांत तथा रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ.158
[11] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 2
[12] वही, पृ. 2
[13] क्षण बोले कण मुस्काये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 7
[14] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 55
[15] हिन्दी रेखाचित्र : हरवंशलाल शर्मा, पृ. 16
[16] हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य : डॉ. सिस्टर क्लेमेंटर मेरी, पृ.101
[17] क्षण बोले कण मुस्काये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 9
[18] हिन्दी रिपोर्ताज : वीरपाल वर्मा, पृ. 2
[19] 'क्षण बोले कण मुसकाएः कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 9
[20] साहित्य सरोवर–कमला सिन्हा, पृ. XIX
[21] प्रकीर्णिका : बालकृष्ण राव, पृ. 23
[22] हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास) पृ.104
[23] समसामयिक हिन्दी सं. : बच्चन, नगेन्द्र, भारत भूषण पृ. 287
[24] हिन्दी रिपोर्ताज : वीरपाल वर्मा, पृ. 2
[25] हिन्दी रेखाचित्र; हरवंशलाल शर्मा
[26] हिन्दी रिपोर्ताज परंपरा और मूल्यांकन : अली मूहम्मद, पृ. 4
[27] हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य : डॉ. सिस्टर क्लेमेंट मेरी, पृ. 79
[28] वही, पृ. 101–102
[29] साहित्य के सिद्धांत तथा रूप, भगवतीचरण वर्मा, पृ.161
[30] हिन्दी रेखाचित्र : डॉ. हरवंशलाल शर्मा, पृ.16
[31] साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन : पृ. 217
[32] मधु संचय : सं. प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. XIV
[33] हिन्दी साहित्य का इतिहासः सं. – नगेन्द्र, पृ. 729
[34] हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा व अन्य पृ. 560
[35] हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचंद्र तिवारी, पृ. 308
[36] काव्यशास्त्र : भगीरथ मिश्र, पृ. 74
[37] भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र का संक्षिप्त विवेचन : शांति स्वरूप गुप्त व सत्यदेव चौधरी, पृ. 562

[38] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 13
[39] हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ : डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया, पृ. 37
[40] वही, पृ. 37
[41] हिन्दी परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 8
[42] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 53
[43] गद्य की नई विधाओं का विकास : माजदा असद, पृ. 41
[44] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 5
[45] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन, अली मुहम्मद, पृ. 9
[46] हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ : डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, पृ. 37
[47] काव्यशास्त्र, भगीरथ मिश्र, पृ. 14
[48] हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचंद्र तिवारी, पृ. 309
[49] हिन्दी रेखाचित्रः सिद्धांत और विकास, मक्खनलाल शर्मा, पृ. 104
[50] साहित्य तथा उसका विविध विधाओं का अध्ययन, तारिणी चरणदास, पृ. 218
[51] रांगेय राघव ग्रंथावली भाग–8. सं. सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 187
[52] साहित्यानुशीलन, शिवदान सिंह चौहान, पृ. 55
[53] गद्य के विविध रूप, डॉ. मजदा असद, पृ.14
[54] हिन्दी साहित्य कोश– सं. धीरेन्द्र वर्मा, अन्य, पृ. 560
[55] साहित्य की नवीन विधाएँ, डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया, पृ. 29
[56] समसामयिक हिन्दी साहित्य : रमेश कुंतल मेघ, पृ. 287
[57] साहित्यानु ीलन, शिवदान सिंह चौहान, पृ. 53
[58] हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा व अन्य, पृ. 560
[59] हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ, डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया, पृ. 37
[60] हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य, पृ.101
[61] वही, पृ.101–102
[62] गद्य के विविध रूप : माजदा असद, पृ.15
[63] हिन्दी रिपोर्ताज 8 परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 28
[64] हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ रु डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, पृ. 37
[65] गद्य के रूप : सं. शशिभूषण सिंहल, पृ. 12
[66] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 55
[67] गद्य की नई दिशायें : ओम प्रकाश सिंहल, पृ. 74–75
[68] गद्य की नई विधाओं का विकास : मजदा असद, पृ. 41
[69] साहित्य के नये रूप : श्याम सुंदर घोष, पृ. 53
[70] साहित्य के सिद्धांत तथा रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ. 158
[71] गद्य के रूप : सं. शशिभूषण सिंहल, पृ. 12
[72] साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन : तारिणीचरण दास, पृ. 217
[73] वही, पृ. 217
[74] हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 560
[75] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 57
[76] प्रगति और परंपरा : रामविलास शर्मा, पृ. 183
[77] गद्य के विविध रूप, डॉ. माजदा असद, पृ. 15

[78] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 55
[79] गद्य की नई दिशायें, ओम प्रकाश सिहंल, पृ. 74
[80] साहित्य के सिद्धांत और रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ. 161
[81] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 52
[82] प्रगति और परंपरा : रामविलास शर्मा, पृ. 178
[83] हिन्दी साहित्य कोश, सं.–धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 560
[84] गद्य की नई दिशायें : ओम प्रकाश सिहंल, पृ. 74
[85] हिन्दी रेखाचित्र : हरवंशलाल शर्मा, पृ.16
[86] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन, पृ. 32
[87] हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास : मक्खनलाल शर्मा, पृ. 104
[88] गद्य के विविध रूप : डॉ. माजदा असद, पृ. 15
[89] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 14
[90] त्रिवेणी : सं. डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 76
[91] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 12
[92] साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन : तारिणी चरण दास, पृ. 218
[93] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 57
[94] हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास : मक्खनलाल शर्मा, पृ. 104
[95] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन, पृ. 10
[96] भारतीय तथा पाश्चात्यकाव्य शास्त्र का संक्षिप्त विवेचन : शांति स्वरूप गुप्त, पृ. 461–462
[97] काव्य के रूप : गुलाब राय, पृ. 241
[98] गद्य के विविध रूप, डॉ. माजदा असद, पृ. 15
[99] साहित्य के सिद्धांत तथा रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ. 161
[100] हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 729
[101] गद्य की नई दिशायें : डॉ. ओम प्रकाश सिहंल, पृ. 69
[102] कथा विवेचना और गद्य शिल्प : रामविलास शर्मा, पृ. 147
[103] हिन्दी साहित्य कोश : सं. – धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 560
[104] वही, पृ. 569
[105] हिन्दी रिपोर्ताज : पृ. 19
[106] साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन : तारिणी चरण दास, पृ. 217
[107] साहित्य के सिद्धांत तथा रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ. 161
[108] काव्य के रूप : गुलाब राय, पृ. 20
[109] भारतीय काव्य ाास्त्र के सिद्धांत : कृष्णदेव झारी, पृ. 378
[110] साहित्य के सिद्धांत तथा रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ. 172–173
[111] प्रगति और परंपरा : रामविलास शर्मा, पृ. 229
[112] साहित्यानु ीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 57
[113] हिन्दी साहित्य को ा : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 512
[114] हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचन्द्र तिवारी, पृ. 217
[115] गद्य के विविध रूप : डॉ. माजदा असद, पृ. 7
[116] गद्य की नई विधाओं का विकास : माजदा असद, पृ. 19
[117] साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन : तारिणी चरण दास, पृ. 218

[118] वही, पृ. 218
[119] हिन्दी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी, पृ. 297
[120] गद्य के विविध रूप, पृ. 12
[121] काव्यशास्त्र : भगीरथ मिश्र, पृ. 45
[122] साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन : तारिणीचरण दास, पृ. 217
[123] हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास : मक्खनलाल शर्मा, पृ. 104–105
[124] हिन्दी रेखाचित्र, हरबंशलाल शर्मा, पृ. 16
[125] वही, पृ. 16
[126] हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 560
[127] गद्य के विविध रूप : डॉ. माजदा असद, पृ. 15–16
[128] हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास : मक्खनलाल शर्मा, पृ. 104
[129] वही, पृ. 105
[130] हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचंद्र तिवारी, पृ. 297
[131] गद्य की विविध विधाओं का विकास : माजदा असद, पृ. 20
[132] गद्य के रूप : डॉ. माजदा असद, पृ. 12
[133] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 85
[134] साहित्य तथा उसकी विविध विधाएँ, तारिणी चरण दास, पृ. 221
[135] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 29
[136] वही, पृ. 29
[137] गद्य की नई दिशाएं : ओम प्रकाश सिंहल, पृ. 4

अध्याय – दो

हिन्दी रिपोर्ताज की परंपरा और विकास

2.1 हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव

2.2 स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति

2.3 स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति

रिपोर्ताज आधुनिक युग की नवीन विधा है। गद्य की अन्य नवीन विधाओं, जैसे रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, डायरी, आत्मकथा आदि के साथ ही रिपोर्ताज विधा का विकास हुआ। रिपोर्ताज का संबंध 'रिपोर्ट' से है। अतः रिपोर्ताज का विकास पत्रकारिता के विकास के साथ ही प्रारंभ हुआ। प्रेस के आविष्कार के परिणामस्वरूप विचारों का परस्पर आदान–प्रदान वैश्विक स्तर पर प्रारंभ हुआ। सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध एवं 1917 की रूसी क्रांति जैसी घटनाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को न सिर्फ प्रभावित किया अपितु संपूर्ण विश्व की दूरी को सीमित किया। सजग साहित्यकार इन दोनों घटनाओं के परिणामों को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने लगे। घटनाओं के इसी महत्त्वपूर्ण युग में साहित्य की नव्यतम विधाओं को अभिव्यक्ति मिली। डॉ. वीरपाल वर्मा के शब्दों में– ''बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही विश्व में दो महान घटनाएँ हुईं। सन् 1914 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध और सन् 1917 ई. में रूसी क्रांति। इन दोनों घटनाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को विशेष रूप से प्रभावित किया। साहित्य भी इससे अछूता न रहा। इन दोनों घटनाओं ने जहाँ विश्व को तत्काल भयंकर विनाशलीला दिखायी वहीं इनसे विश्व के देश एक–दूसरे के निकट आए और विश्व के किसी भी कोने में घटित घटना ने संपूर्ण विश्व को किसी न किसी रूप में प्रभावित करना प्रारंभ कर दिया।''[1]

साहित्य की अन्य विधाओं जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास या कविता की तरह रिपोर्ताज के लिए न तो कोई साहित्यिक आंदोलन चलाया गया और न ही कोई संस्था इसके विकास हेतु गतिशील हुई। रिपोर्ताज की शैलीगत विवेचन और विश्लेषण भी साहित्यकारों का अभीष्ट न रहा। बदलते युग की परिस्थितियों के सापेक्ष रिपोर्ताज विधा का विकास होता गया और समय के साथ यह नव्य विधा क्रांतिकारी विधा के रूप में विकसित हुई।

2.1 हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव

किसी भी साहित्यिक विधा का जन्म अकस्मात एक दिन नहीं हो जाता। उस विधा के प्रस्थान बिन्दु चले आ रहे परंपरागत साहित्य में बीजरूप में सुरक्षित रहते हैं। जब साहित्यकार के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम सीमित प्रतीत होने लगता है, भावनाएँ छटपटाने लगती हैं बाहर आने के लिए तो साहित्यकार कुछ शिल्पगत प्रयोग कर नये अंदाज में अपनी बात कह डालता है। 'बीजरूपी' माध्यम को अब पल्ल्वित–पुष्पित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। साहित्यकार को अभिव्यक्ति का एक नया माध्यम तथा साहित्य को एक नई विधा प्राप्त हो जाती है। डॉ. वीरपाल के शब्दों में– ''साहित्य की प्रचलित विधा में ही कोई साहित्यकार कभी शिल्पगत कुछ ऐसे तत्त्व समाहित कर लेता है कि वह नूतन रचना अन्य प्रचलित रचनाओं से कुछ पृथक सी, विशिष्ट सी लगती है। जब ये शिल्पगत और शैलीगत परिवर्तन बहुत सीमा तक बढ़ जाते हैं तो प्रचलित विधाओं में से ही वह कुछ काल पूर्व जन्मी साहित्यिक–विधा चुन ली जाती है और साहित्यकारों, शास्त्रियों द्वारा एक पृथक विधा मान ली जाती है।''[2]

कहने का आशय यह है कि जब परंपरागत विधाएं कलाकार की भावनाओं को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त नहीं कर पाती तो नवीन विधाओं की खोज की जाती है। नवीन विधाओं की आवश्यकता युगीन परिस्थितियों की देन होती है। प्रचलित विधा में अपनी बात कहकर भी रचनाकार जब कुछ और कहने की छटपटाहट सी अनुभव करता है तथा परंपरा से हटकर एक विशिष्ट शैली में वर्णन करता है तो वहीं नवीन विधाओं का जन्म होता चला जाता है। ये सभी बातें रिपोर्ताज विधा पर लागू होती हैं। रिपोर्ताज विधा का जन्म ऐसे ही हुआ है। डॉ. अली मुहम्मद ठीक ही कहते हैं–

''रिपोर्ताज साहित्य की नवीन विधा है। कुछ निश्चित कारणों, विशिष्ट व्यक्तियों तथा विशिष्ट परिस्थितियों के फलस्वरूप कोई प्रवृत्ति या विधा साहित्य में परिलक्षित होती है। विकसित होने पर वही परंपरा का रूप धारण कर लेती है। समृद्ध होकर वह विधा अपने विधिवत अध्ययन की माँग करती है।''[3]

हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव भी इन्हीं तथ्यों का अनुगामी है। हिन्दी रिपोर्ताज के संबंध में अनेक प्रश्न उभरते हैं जिनका उत्तर इस विधा के उद्‌भव में छिपा हुआ

है। मसलन, यह विधा हिन्दी में कब अस्तित्त्व में आई, इसकी प्रथम रचना कौन सी है और उसका स्वरूप कैसा है? अनेक भ्रमात्मक तथ्य लोगों को भ्रमित करते हैं क्योंकि ''रिपोर्ताज की कोई शैली कभी पुरानी समझकर पुनः सृष्टि के लिए विवेचित–विश्लेषित नहीं की गई। इसे प्रायः स्फुट ढंग से ही लिखा गया, इसलिए काल के समानांतर इसकी परंपरा खोजना कठिन कार्य है।''[4]

हिन्दी रिपोर्ताज के संबंध में दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमेशा से रहे हैं– पहला, हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव यहां के साहित्य में स्वस्फूर्त हुआ है या विदेशी साहित्य की देन है, दूसरा, हिन्दी का पहला रिपोर्ताज कौन सा है इन प्रश्नों के उत्तर खोजना कठिन कार्य है। यह कठिनता हिन्दी साहित्यकारों के विभिन्न मत–मतान्तरों की वजह से है।

हिन्दी रिपोर्ताज के उद्‌भव के संबंध में दो मत प्रचलित हैं और इन मतों के पोषक साहित्यकारों एवं विद्वानों के दो वर्ग भी हैं। पहला मत यह कि हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव विदेशी प्रभाव से संभव हुआ है। इस मत को मानने वाले विद्वानों में रामगोपाल सिंह चौहान, श्यामसुंदर घोष, कैलाशचंद्र भाटिया, अजित कुमार आदि प्रमुख हैं। हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव विदेशी प्रभाव से संभव मानते हुए अजित कुमार लिखते हैं– ''द्वितीय महायुद्ध में यह गद्य रूप पाश्चात्य साहित्य और विशेषतः रूसी साहित्य में बहुत लोकप्रिय और विकसित हुआ। एलियाएहरनबुर्ग को रिपोर्ताज लेखक के रूप में बड़ी ख्याति मिली। हिन्दी में रिपोर्ताज साहित्य मूलतः विदेशी साहित्य से प्रकाश में आया।''[5]

देखा जाए तो रिपोर्ताज का पाश्चात्य साहित्य में बीज वपन द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ही हो चुका था। प्रथम विश्वयुद्ध की एक प्रत्यक्षदर्शी महिला लेखिका की रचना में इस विश्वयुद्ध का जीता–जागता आँखों देखा वर्णन मिलता है। यह रचना है ''आल क्वाइट ऑन द वैस्टर्न फ्रंट''। रिपोर्ताज साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर जॉन रीड भी रिपोर्ताज का प्रारंभ 1905 की क्रांति को आधार बनाकर लिखी गयी विलियम इंग्लिश वालिंग की पुस्तक 'रूस का संदेश' से मानते हैं जिसका प्रकाशन 1908 ई. में हुआ था। रूस का संदेश' पुस्तक में रचनाकार ने रूसी क्रांति का यथार्थ चित्रण किया है। जॉन रीड इस संदर्भ में कहते हैं कि– ''रूसी मजदूर क्रांतिकारी है, वह हिंसावृत्ति नहीं रखता। वह कट्टर मताग्रही नहीं है और न ही वह

बुद्धिहीन है। वह बैरिकेडों की लड़ाई के लिए तैयार है, परंतु उसने इस लड़ाई का अध्ययन किया है और संसार के मजदूरों में अकेले उसी ने इस लड़ाई के बारे में अपनी जानकारी असली तजरबे से हासिल की है। वह अपने उत्पीड़क पूँजीपति वर्ग के साथ तब तक लड़ने के लिए इच्छुक और तत्पर है, जब तक कि इस लड़ाई का फैसला न हो ले। लेकिन वह दूसरे वर्गों के अस्तित्त्व की अवहेलना नहीं करता। वह उनसे केवल यह आग्रह करता है कि उग्र संघर्ष में, जो नजदीक आता जा रहा है, वे इस ओर आयें या दूसरी ओर जायें...''[6]

अक्टूबर 1917 में पेत्रोग्राद (रूस) में घटी घटनाओं का 'आँखों देखा' और 'भोगा हुआ यथार्थ' वर्णन जॉन रीड ने अपनी पुस्तक 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी' में किया है। यह पुस्तक पाश्चात्य रिपोर्ताज साहित्य का उत्कृष्ट नमूना है। ''जॉन रीड अगर ऐसी किताब लिख सके तो, इसका कारण यह है कि वह तटस्थ अथवा उदासीन द्रष्टा न थे, वह स्वयं एक जोशीले क्रांतिकारी थे, कम्युनिस्ट थे, जिन्होंने घटनाओं के अर्थ को, महान संघर्ष के अर्थ को समझा। इस समझ ने ही उन्हें वह तीक्ष्ण दृष्टि दी जिसके बिना ऐसी पुस्तक कभी भी लिखी नहीं जा सकती थी।''[7]

पेत्रोग्राद में घटी घटनाएँ कौन सी थीं एवं ये घटनाएँ जनमानस पर किस प्रकार का प्रभाव डालीं, इन सब बातों की गहरी जाँच–पड़ताल जॉन रीड ने भोक्ता की हैसियत से की एवं उन्हें लिपिबद्ध किया। 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी' पुस्तक की प्रस्तावना में जॉन रीड स्वीकार करते हैं– बोल्शेविज्म के बारे में कोई कुछ भी सोचे, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि रूसी क्रांति मानव इतिहास की एक महान घटना है और बोल्शेविकों का उदय एक विश्वव्यापी महत्त्व की घटना है। जिस प्रकार इतिहासकार पेरिस कम्यून की दास्तान की छोटी से छोटी तफ्सील के लिए दस्तावेजों की छानबीन करते हैं, उसी प्रकार वे यह भी जानना चाहेंगे कि नवंबर 1917 में पेत्रोग्राद में क्या घटनाएँ घटी थीं, कौन सी भावना जनता को अनुप्राणित कर रही थी और उनके नेता क्या कहते और करते थे, और वे देखने–सुनने में कैसे थे। मैंने इसी दृष्टि से इस पुस्तक की रचना की है।''[8]

स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्य में रिपोर्ताज विधा का प्रारंभ प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व ही हो गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इलिया एहरनबुर्ग ने रिपोर्ताज

विधा को परिमार्जित किया। एहरनबुर्ग ने 'पेरिस का पतन', 'लेखक और जिन्दगी' एवं 'स्टालिनग्राद की ट्रेंचों में' जैसी पुस्तकों की रचना कर न सिर्फ रिपोर्ताज विधा को चमकाया अपितु इस विधा के जनक के रूप में अभूतपूर्व ख्याति भी अर्जित की। पाश्चात्य साहित्य में रिपोर्ताज परंपरा विलियम इंगलिश वालिंग से प्रारंभ होकर 'ऑल क्वाइट ऑन दा वैस्टर्न फ्रंट' की लेखिका और जॉनरीड से होती हुई इलिया एहरनबुर्ग तक पहुँची। अली मुहम्मद के शब्दों में– ''द्वितीय विश्वयुद्ध के समय एहरनबुर्ग ने इस विद्या को खूब चमकाया और जन्मदाता का श्रेय भी पाया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रूस में रिपोर्ताज विधा का इतना विकास हुआ कि अन्य देशों के लेखकों ने भी अपनी परंपरापोषित विधा को 'रिपोर्ताज' नाम ही दे डाला।''[9]

पाश्चात्य रिपोर्ताज के उद्‌भव की जो पृष्ठभूमि रही, कमोबेश हिन्दी रिपोर्ताज के उद्‌भव की भी वही पृष्ठभूमि रही। दोनों महायुद्धों का प्रभाव वैश्विक स्तर पर पड़ा। यदि पाश्चात्य साहित्यकारों ने महायुद्धों के प्रभाव को साहित्य का हिस्सा बनाया तो भारतीय मानस भी इससे अछूता न रहा। इस दौरान विश्व के श्रेष्ठ रिपोर्ताजों का न सिर्फ अनुवाद हुआ अपितु अनेक मौलिक रिपोर्ताजों की सर्जना भी हुई। रूसी क्रांति एवं अन्य अन्य क्रांतियों का प्रभाव भारतीय मानस पर पड़ा और भारतीय लोग साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद के विरोध में खड़े हो गए। इसी राजनीतिक माहौल में हिन्दी रिपोर्ताज का भी उद्‌भव और विकास हुआ। रूस का रिपोर्ताज साहित्य सच्चे अर्थों में जनता के हितों की रक्षा करने वाला था। रूसी लोगों के जीवन की विसंगतियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति वाले इस रिपोर्ताज साहित्य ने भारतीय लेखकों के प्रगतिशील वर्ग को आकृष्ट किया।

19वीं शताब्दी के अंतिम और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ तो वैश्विक घटनाओं एवं हलचलों और कुछ हमारे राष्ट्रीय–सामाजिक जीवन की विसंगतियों के कारण भारतीय मानस में एक जबरदस्त बदलाव परिलक्षित होने लगा और साहित्य में इस बदलाव को व्यक्त किया जाने लगा। जीवन बदला तो जीवन को देखने और समझने की दृष्टि भी बदली और इसी के साथ अभिव्यक्ति के तरीके में भी बदलाव आया। रिपोर्ताज विधा बदलाव को बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ने में समर्थ होती है। इस विधा का विकास भी इसी बदलाव के सापेक्ष होता गया। यही बात हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य पर अक्षरशः लागू होती है। अली मुहम्मद ठीक ही लिखते हैं– ''यथार्थवाद

की लहर फ्रांस से चलकर सारे विश्व में फैली और साहित्य में 19वीं शताब्दी में आई। यथार्थवाद ने आदर्शवाद की भावना के विपरीत शोषित, दमित, असहाय जीवन की कटुता को स्थान दिया। फलतः जो जैसा है उसे उसी रूप में व्यक्त करने की प्रवृत्ति बलवती हुई। हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग इस यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ और साहित्यकारों की दृष्टि समाज के उपेक्षित, दलित और शोषित वर्ग की परिस्थितियों पर पड़ी। लगभग इसी समय मानव–स्वतंत्रता की आवाज भी अमेरिका से उठी और धीरे–धीरे सभी जगह पहुँची। इसी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संभवतः दोनों–विश्वयुद्ध साम्राज्यवाद के विरुद्ध उन शक्तियों से लड़े जो इस चेतना की पक्षधर थीं। रूसी क्रांति भी इसी चेतना की परिणाम थी जिसमें बोल्शेविकों, तातारों और काकेशियनों ने साम्राज्यवादी शक्तियों का डटकर मुकाबला किया और उन्हें परास्त किया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के चंगुल में फँसे भारत में भी संभवतः यही स्वतंत्रता बोध उभरा और राष्ट्रीय–आंदोलन में तेजी आई। इसी पृष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य ने भी अपने तेवर बदले और वह राष्ट्रीय आंदोलन, सामाजिक–आंदोलन, जन–आंदोलन का पक्षधर बन गया। हिन्दी रिपोर्ताज का विकास भी संभवतः इन्हीं आंतरिक व बाह्य परिस्थितियों के कारण हुआ।''[10]

हिन्दी लेखकों एवं विद्वानों का एक दूसरा वर्ग जो यह मानता है कि हिन्दी रिपोर्ताज का जन्म परंपरागत भारतीय साहित्य से हुआ है न कि विदेशी साहित्य और विदेशी प्रभाव से। इन साहित्यकारों में ओम प्रकाश सिंहल, मुरारी लाल गोयल 'शापित', कामेश्वरशरण सहाय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, लक्ष्मीचंद्र जैन, रामस्वरूप चतुर्वेदी एवं जीवन प्रकाश जोशी प्रमुख हैं। भारतीय मध्य वर्ग जागरूक था और वह विश्व में घटने वाली प्रत्येक घटना पर अपनी मौलिक राय रखने लगा था। यह स्वाभाविक था कि वह विश्व साहित्य के परिवर्तन से अवगत था किन्तु हिन्दी रिपोर्ताज विदेशी प्रभाव से उद्‌भूत हुआ, यह कहना उचित नहीं। हिन्दी रिपोर्ताज यहीं के जमीन एवं साहित्य से उपजी है। इस संदर्भ में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की उक्ति उचित जान पड़ती है– ''कुछ लोग कहते हैं कि पत्रकार–कला में रिपोर्ताज का आविष्कार रूस में हुआ और वहीं से यह भारत में आया। निश्चय ही यह उस देश में अपने स्वतंत्र रूप में पनपा होगा, हिन्द को उसका श्रेय लेने की आवश्यकता नहीं, पर हिन्दी में यह स्वतंत्र रूप में पनपा है और उस पर किसी का

किसी तरह का भी ऋण नहीं। हाँ, बाद में इस विद्या के लिए रिपोर्ताज नाम रूसी के माध्यम से हिन्दी ने लिया, यह एक प्रत्यक्ष सचाई है।''[11]

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की इस उक्ति में दो महत्त्वपूर्ण बाते हैं– पहली, 'हिन्दी रिपोर्ताज पर किसी का किसी तरह का ऋण नहीं' एवं दूसरी रिपोर्ताज 'पत्रकार–कला' है। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी रिपोर्ताज विदेशी प्रभाव से नहीं अपितु स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है। रिपोर्ताज का संबंध पत्रकारिता से गहरे रूप से जुड़ा है। हम जानते हैं कि हिन्दी गद्य का विकास आधुनिक युग की देन है। इस युग में लगभग सभी लेखक पत्रकार थे और सभी पत्रकार, साहित्यकार। ये एक साथ पत्रकार और साहित्यकार दोनों की भूमिकाओं का निर्वाह कर रहे थे। पाश्चात्य साहित्य में युद्ध की खंदकों में सैनिक, पत्रकार के व्यक्तित्त्व वाले साहित्यकारों की कलम से इस विधा का जन्म हुआ तो भारत में सैनिकों जैसे साहस वाले स्वतंत्रता समर्थक प्रगतिशील लेखकों की पत्रकारिता वाली धारधार कलम से। यह विधा यहीं की विशेष परिस्थितियों की देन है।

जब पत्रकार किसी घटना की मात्र रिपोर्टिंग न करके उसमें संवेदनशीलता एवं मानवीय मूल्य को समाहित कर देता है तो वह रचना रिपोर्टिंग न होकर रिपोर्ताज बन जाती है। आधुनिक साहित्यकारों के मानवतावादी दृष्टिकोण, शांतिवादी विचारधारा एवं युद्ध–विरोधी भावनाओं के समन्वय से ही रिपोर्ताज विधा का सृजन होता है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं– ''प्रथम बार एक स्वर से मनुष्य को परंपरा और धर्म से अलग करके देखा। उसने सभी रूढ़ियों से अलग खींचकर मनुष्य को नए संदर्भ में खड़ा किया। मनुष्य पहले मनुष्य है उसके बाद वह किसी धर्म, संप्रदाय या जाति का सदस्य। आज का साहित्यकार किसी बाह्य आरोपित नैतिकता को स्वीकार नहीं करता। वह नैतिकता का सच्चा रूप जीवन–यथार्थ के साथ संयुक्त करके देखता है।''[12]

अतः यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दी रिपोर्ताज युगीन पत्रकारिता की देन है। यह कहीं बाहर से आयातित नहीं है। हिन्दी रिपोर्ताज की जड़ें पत्रकारिता में कितनी गहरी फैली है इसकी पड़ताल आवश्यक है, तभी हमें इसके स्वरूप, उद्‌भव और विकास को तथ्यात्मक रूप से विवेचित–विश्लेषित कर पाएंगे। इन प्रश्नों के उत्तर

के लिए हमें हिन्दी रिपोर्ताज की उस परंपरा को खंगालना होगा जो प्रेस के आविष्कार एवं समाचार पत्रों के प्रकाशन से जुड़ी है।

भारतेन्दु युग में पत्रकारिता का आगाज हो चुका था। लेखों और टिप्पणियों में साहित्य अपना स्वरूप धारण कर रहा था। वर्णन प्रधान लेखों में रिपोर्ताज बीज रूप में विद्यमान था। युग–बोध एवं युगीन–संघर्ष चेतना भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता में सर्वत्र मिलती है। भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन एवं नवजागरण की पृष्ठभूमि है। इस युग की पत्रकारिता और साहित्य साथ–साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे। सिर्फ रिपोर्ताज ही नहीं, अन्य गद्य विधाओं के बीज भारतेन्दु युगीन साहित्य में सुरक्षित हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं– ''इस दृष्टि से यह विलक्षण है कि रिपोर्ताज के एक आरंभिक रूप में लिखा हुआ वृत्त हमें हिन्दी में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मिलता है। चंडी प्रसाद सिंह लिखित 'युवराज की यात्रा' (खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर : 1897) प्रिंस ऑफ वेल्स की भारत यात्रा का विस्तृत और ब्यौरेवार वर्णन है। इतिवृत्त की प्रधानता इसमें जरूर है, पर सूक्ष्म ब्यौरे आधुनिक रिपोर्ताज जैसे ही दिए गए हैं। हाँ, शैली में प्रभावाभिव्यंजन की ओर ध्यान कम है, पर महत्त्वपूर्ण बात तो उस काल में इस ढंग के वृत्त की उपस्थिति ही है।''[13]

कामेश्वर शरण सहाय ने जनवरी 1877 के हरिश्चंद्र मैगजीन के उस अंक का हवाला दिया जिसमें 'दिल्ली दरबार दर्पण' शीर्षक से श्रीमती राजराजेश्वरी के पदाभिषेक एवं श्रीयुत वाइसराय के सम्मान में 1 जनवरी 1877 को दिल्ली में आयोजित महत दरबार का विशेष वर्णन किया गया है। श्री सहाय को इस वर्णन में रिपोर्ताज का पुट दिखाई देता है। वे लिखते हैं– ''भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता रिपोर्ताज में समाचार की परिणति का सुंदर उदाहरण है। उस समय के सभी समाचार पत्रों में छपे समाचार प्रायः पत्रकार के व्यक्तित्त्व से रंजित रिपोर्ताज या संस्मरण ही हैं। वहाँ घटनाओं का वर्णन लगभग आँखों देखा हाल के रूप में मिलता है जो रिपोर्ताज की विशेषता है।''[14]

उपरोक्त मतों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक युग में गद्य के विकास के साथ–साथ अन्य गद्य विधाओं का भी विकास हुआ जिनमें रिपोर्ताज भी एक है। इस युग में ढेर सारी 'आँखों देखी' रचनाएँ रची गईं और रिपोर्ताज का स्वरूप बनता

चला गया। भारतेन्दु युग में ही गद्य साहित्य की सृष्टि प्रारंभ हुई जो एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस समय की रचनाओं में जैसे– भारतेन्दु कृत 'दिल्ली दरबार दर्पण', 'लेवी प्राणलेवी', चण्डी प्रसाद सिंह द्वारा लिखित 'युवराज की यात्रा', गदाधर सिंह कृत 'हमारी एडवर्ड–तिलक विलायत यात्रा', 'चीन में तेरह मास' रचनाओं में रिपोर्ताज के अंश तलाशे जा सकते हैं।

भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युग में चण्डी प्रसाद सिंह और गदाधर सिंह ने भारतेन्दु युग की परंपरा को आगे बढ़ाया। पं. माधव प्रसाद मिश्र हिन्दी रिपोर्ताज के प्रारंभिक स्वरूप की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस परंपरा को और भी आगे बढ़ाया। इनके लेख 'बनारस का बुढ़वा मंगल' में रिपोर्ताज विधा के प्रारंभिक रूप देखे जा सकते हैं।

आज पत्रकारिता, व्यावसायिकता का पर्याय होती जा रही है जबकि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ऐसा नहीं था। उस समय पत्रकार कवि, लेखक, समाज सुधारक एवं देशभक्त आदि गुणों का समन्वित व्यक्तित्त्व था जो समाचारों से ज्यादा टिप्पणियों एवं द्रवित कर देने वाले संपादकीय लेखों पर ध्यान देता था। ये लेख रिपोर्ताज विधा की विशेषताओं से परिपूर्ण थे।

रिपोर्ताज के उद्‌भव संबंधी विवेचना के बाद इस तथ्य का पता लगाना अनिवार्य है कि हिन्दी की कौन सी रचना पहला रिपोर्ताज है और प्रथम रिपोर्ताजकार कौन हैं? कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं की भाँति रिपोर्ताज विधा की पहली रचना के संबंध में भी अनेक भ्रांतियाँ हैं। गद्य की अन्य नवीन विधाओं की भाँति रिपोर्ताज विधा का उद्‌भव भी हिन्दी के परंपरागत साहित्य से हुआ है। परंपरागत साहित्य रूप जब एक विधागत परिवर्तन लक्षित होने लगता है तो नई विधा का प्रारंभ माना जाने लगता है। परिवर्तनशील साहित्यिक लक्षण अचानक नहीं स्पष्ट हो पाते, उनका रूप धीरे–धीरे स्थिर हो पाता है। स्वयं रचनाकार भी अपनी लेखनी में आने वाले इस परिवर्तन से अनभिज्ञ होता है। ऐसे में प्रारंभिक रचना के विषय में असमंजस की स्थित होना कोई विशेष बात नहीं होती। हिन्दी रिपोर्ताज के संबंध में भी ऐसा ही हुआ है। अली मुहम्मद के शब्दों में– ''किसी साहित्य विधा की पहली रचना के संबंध में पर्याप्त भ्रांतियाँ होना कोई नई बात नहीं है, क्योंकि किसी कृति को किसी विधा विशेष की पहली रचना मान लेना

अत्यंत कठिन कार्य है। कारण स्पष्ट है कि कोई लेखक परम्परानुमोदित साहित्य रूपों से भिन्न एक सर्वथा नए ढंग की सृष्टि करता है तो उसे स्वयं यह पता नहीं होता कि उसने अपनी रचना को जो रूप दिया है वह परंपरागत रूप से भिन्न है। आगे चलकर उसी ढंग की बहुत सी रचनाओं के लिखे जाने के बाद साहित्यिक समीक्षक उन्हें कोई विशेष नाम देते हैं। नाम देते समय अनेक बार उन समीक्षकों की दृष्टि में वे प्रारंभिक रचनाएँ नहीं आ पातीं जो उस विधा–विशेष के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं।''[15]

सन् 1897 ई. में खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित चण्डी प्रसाद सिंह कृत 'युवराज की यात्रा' को हिन्दी साहित्य कोश (तृतीय खंड) में प्रथम रिपोर्ताज माना गया है।''[16] जबकि डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार ''1922 ई. के पूर्व प्रकाशित श्री बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' का 'बनारस का बुढ़वा मंगल' नामक रिपोर्ताज हिन्दी का प्रथम रिपोर्ताज माना जा सकता है।''[17]

उक्त दोनों ही रचनाएँ प्रथम हिन्दी रिपोर्ताज होने का श्रेय नहीं प्राप्त कर सकतीं क्योंकि इन रचनाओं में रिपोर्ताज विधा का प्रारंभिक स्वरूप तो अवश्य प्राप्त होता है किन्तु रिपोर्ताज के साँचे में फिट नहीं बैठतीं। अतः इन रचनाओं को रिपोर्ताज के उद्‌भव और विकास की एक पारंपरिक कड़ी के रूप में देखने की आवश्यकता है।

मुरारी लाल गोयल 'शापित' ने पं. माधव प्रसाद मिश्र को प्रथम रिपोर्ताज लेखक मानते हुए लिखते हैं– ''इस नवीन विधा का जन्म द्विवेदी युग में ही हो गया था। द्विवेदी युगीन पं. माधव प्रसाद मिश्र रिपोर्ताज के जनक के रूप में जाने जाते हैं।''[18]

अपनी इसी कृति में अन्यत्र श्री गोयल, जी लिखते हैं– ''उनके द्वारा लिखे गये लघु रूपों को यद्यपि रिपोर्ताज नहीं माना जा सकता, लेकिन उनके विषय प्रतिपादन को देखते हुए पिंजरापोल', 'क्वीन्स कॉलेज बनारस', 'दान की दुर्दशा', 'विशुद्धानंद विद्यालय' आदि गद्य–लेख साहित्य की आधुनिकतम विधा ''रिपोर्ताज'' के पूर्व रूप की झाँकी प्रस्तुत करने में अवश्य सक्षम हैं।''[19]

श्री 'शापित' के उपरोक्त दोनों कथनों में पर्याप्त विरोधाभास झलकता है। 'जन्म' और 'पूर्व रूप की झाँकी' दोनों में अंतर होता है। साहित्य के क्षेत्र में यह

अंतर और भी बड़ा हो जाता है क्योंकि रचनाएँ कोई वस्तु नहीं होतीं जिनका जन्म एक दिन में या एक व्यक्ति के द्वारा हो। यह एक पूरी रचना–प्रक्रिया होती है जो लंबे अंतराल के बाद अपने पारंपरिक स्वरूप से भिन्न परिलक्षित होने लगती है। यदि 'पूर्व रूप की झाँकी' ही देखनी थी तो श्री शापित को भारतेन्दु के 'दिल्ली दरबार दर्पण', चण्डी प्रसाद सिंह कृत 'युवराज की यात्रा' और गदाधर सिंह कृत 'हमारी एडवर्ड तिलक–विलायत यात्रा' लेखों पर भी दृष्टि डालनी थी जिनमें रिपोर्ताज के प्रारंभिक रूप पाये जाते हैं। अतः हम मुरारीलाल गोयल 'शापित' के किसी भी मत को स्वीकार नहीं सकते।

कुछ आलोचक, शिवदान सिंह चौहान कृत 'लक्ष्मीपुरा' को हिन्दी का प्रथम रिपोर्ताज मानते हैं। ऐसे आलोचकों में डॉ. ओम प्रकाश सिंहल और कैलाशचन्द्र भाटिया प्रमुख हैं। डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में डॉ. सिंहल लिखते हैं– ''हिन्दी में रिपोर्ताज लेखन की परंपरा शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' (रूपाभ, दिसंबर 1938) से आरंभ हुई।''[20]

डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया भी शिवदान सिंह चौहान को ही रिपोर्ताज विधा की ओर 'सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करने का श्रेय देते हैं। 'हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ' पुस्तक में वे लिखते हैं– ''इस विधा की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करने का श्रेय शिवदान सिंह चौहान को ही है, क्योंकि आपके द्वारा प्रस्तुत 'लक्ष्मीपुरा' शीर्षक रचना जो 'रूपाभ' (दिसंबर 1938) में प्रकाशित हुई 'रिपोर्ताज' है।''[21]

डॉ. वीरपाल वर्मा की पुस्तक 'हिन्दी रिपोर्ताज' की भूमिका में डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया को 'लक्ष्मीपुरा' में रिपोर्ताज के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं कि– ''इस विधा के लक्षण आज से अर्ध शताब्दी पूर्व सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा लिखित गुरुकुल कांगड़ी के रजत जयंती महोत्सव के विवरण में दिखाई देने लगे थे पर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में पं. माधव प्रसाद मिश्र के साहित्य में इसका बीज देखा जा सकता है। 'सुदर्शन' और 'राघवेन्द्र' के माध्यम से आपने उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की संधिबेला में अनेक गद्य विधाओं को जन्म दिया, जिनमें रिपोर्ताज के गुण 'पिंजरापोल', 'क्वींस कालेज', 'दान की दुर्दशा' आदि लघु निबंधों में प्रतिभासित होते हैं और एक दशक बाद में 'रूपाभ' में प्रकाशित 'लक्ष्मीपुरा' (शिवदान सिंह चौहान) में सुस्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगे।''[22]

डॉ. ओम प्रकाश सिंहल और डॉ. भाटिया के मतों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस 'अस्वीकार' के पीछे स्वयं डॉ. शिवदान सिंह चौहान का 'साहित्यानुशीलन' पुस्तक में संकलित एक लेख है जो उनके द्वारा मार्च 1941 में लिखा गया था। यह लेख 'हंस' में मार्च 1941 में प्रकाशित हुआ था। स्वयं डॉ. शिवदान सिंह चौहान अपने इस लेख में घोषणा करते हैं ''अभी तक भारत में रिपोर्ताज का जन्म नहीं हुआ और जो इक्के–दुक्के रिपोर्ताज लिखे गए हैं, वे उन्हीं के द्वारा जो अपने विचारों और कार्यों से साम्राज्यवाद–सामंतवाद–पूंजीवाद के विरोधी रहे हैं, तथा जिन्हें वर्तमान समाज के संघर्षों का थोड़ा बहुत प्रत्यक्ष अनुभव है। भारत की क्रांतिकारी परिस्थिति में ज्यों–ज्यों जोर आता जाएगा, त्यों–त्यों रिपोर्ताज भी विकास करता जाएगा।''[23]

डॉ. शिवदान सिंह चौहान के उपरोक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'लक्ष्मीपुरा' न तो हिन्दी का प्रथम रिपोर्ताज है और न ही वे प्रथम रिपोर्ताजकार। प्रथम रिपोर्ताज एवं रिपोर्ताजकार के विषय में चली आ रही भ्रामक धारणा स्पष्ट हो जाती है। यदि 1941 में डॉ. चौहान यह मानते हैं कि 'अभी तक भारत में रिपोर्ताज का जन्म नहीं हुआ' तो 1938 की रचना 'लक्ष्मीपुरा' को पहला रिपोर्ताज कैसे माना जा सकता है?

डॉ. ओम प्रकाश सिंहल कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर को हिन्दी रिपोर्ताज का जन्मदाता मानते हैं। वे लिखते हैं कि– डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया ने 'रूपाभ' के दिसंबर 1938 के अंक में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' को हिन्दी का पहला रिपोर्ताज माना है। लेकिन आश्चर्य का विषय है कि उन्होंने हिन्दी रिपोर्ताज के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का कहीं उल्लेख तक नहीं किया। इस भूल का दुष्परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के पहले रिपोर्ताज लेखक होने का श्रेय उस व्यक्ति को नहीं मिल पाया जो शिवदान सिंह चौहान से बहुत पहले इस विधा के भंडार को आपूर्ण करने में लगा था।''[24]

डॉ. ओम प्रकाश सिंहल के मत का समर्थन, अम्बा प्रसाद सुमन, विश्वनाथ मिश्र, जीवन प्रकाश जोशी, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीचंद्र जैन आदि विद्वानों ने किया है। इन विद्वानों के मतों का समर्थन कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के उस उद्धरण से भी हो जाता है जो 'क्षण बोले कण मुसकाये' की भूमिका में उन्होंने लिखा है– ''1926 में

गुरुकुल कांगड़ी की रजत–जयंती मनायी गयी और उसमें महात्मा गाँधी, मालवीयजी, और टी. एल. वास्वानी के आने की घोषणा हुई। मैं एक कृपालु बंधु से बारह रुपये उधार लेकर उस उत्सव में गया और बहुत ही तल्लीनता से मैंने उस उत्सव को देखा। मेरी आँखों के लिए इतना बड़ा वह पहला ही उत्सव था। उत्साह अथाह, तो व्यवस्था अनुपम–पुलिस का कहीं नाम–निशान नहीं, हर क्षण नया दृश्य, नया अनुभव। मैं आनंद विभोर हो उठा।

घर लौटकर मैंने इस महान उत्सव की रिपोर्टिंग भी कई पत्रों में पढ़ी और फिर पहले की तरह निराश हुआ– सभी में जड़ विवरण, जिसमें रस की एक बूँद नहीं। यह उत्सव मैं स्वयं देख चुका था, इसलिए मन में आया कि अमुक–अमुक दृश्य इस विवरण में जोड़ दिए जाते तो पाठक को कितना आनंद आता। इस प्रकार पहले कल्पना में और फिर कागज पर मैंने इस महोत्सव का रिपोर्ताज लिखा। वास्तविक रूप में यही मेरा पहला रिपोर्ताज था। सन्–महीना–तारीख के आँकड़ों में सोचने वाले इतिहास–लेखकों का काम है कि वे देखें– यही हिन्दी का पहला रिपोर्ताज तो नहीं था।''[25]

श्री प्रभाकर का यह कथन आत्म प्रशंसात्मक मात्र नहीं है अपितु रिपोर्ताज संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारियों से भी युक्त है। पूर्व मतों एवं श्री प्रभाकर के कथन का विश्लेषण करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का नाम आलोचकों से छूट गया है तथा ओझल हो गया है जबकि इनको हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य का 'इलिया एहरनबुर्ग' माना जाना चाहिए। हिन्दी रिपोर्ताज लेखकों में रांगेय राघव से पूर्व कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर पर ही दृष्टि ठहरती है। डॉ. अली मुहम्मद के शब्दों में– ''श्री प्रभाकर रिपोर्ताज विधा के उस रूप में जनक नहीं हैं जैसा कि इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है, अपितु इस विधा के स्वरूप को विधागत सांचे में ढालने वाले, उसे सँवारने वाले, तराशने वाले वे पहले हिन्दी लेखक हैं। इस प्रकार कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिन्दी रिपोर्ताज परंपरा में उस मील के पत्थर के समान हैं जहाँ से यह विधा अन्य समकालीन गद्य–विधाओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगती है।''[26]

सन् 1926 में 'निबंधात्मक गद्य काव्य' नाम से रिपोर्ताज विधा की पहली रचना करने वाले कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की कृति का नाम है– वेदों की खोज।

श्री प्रभाकर ने 'वेदों की खोज' की रचना 26.12.1926 को की एवं 'ब्राह्मण सर्वस्व' के जनवरी अंक 1927 में प्रकाशित हुई। तब तक रिपोर्ताज विधा को 'रिपोर्ताज' नाम नहीं प्राप्त हुआ था अतः श्री प्रभाकर इस रचना को 'निबंधात्मक गद्य काव्य' कहते हैं। वे लिखते हैं– ''साहित्यिक भाषा में यों कि अपनी इस कृति के संबंध में मेरी जिज्ञासा विधात्मक थी कि यह लेख नही है, कहानी भी नहीं, गद्य काव्य भी नहीं, तो फिर है क्या? रिपोर्ताज शब्द तब तक उपजा न था, तो मेरी उस समय की बुद्धि ने इसे 'निबन्धात्मक गद्य काव्य' कहा और यह कथन मुझे इतना मौलिक लगा कि मैंने इसे वेदों की खोज' इस शीर्षक के नीचे उपशीर्षक की तरह लिखना आवश्यक समझा।''[27]

''वेदों की खोज' के प्रकाशन के तीन–चार माह बाद गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार के रजत–जयंती समारोह को केन्द्र में रखकर पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने 'एक महान महोत्सव में' रिपोर्ताज लिखा जो कहीं प्रकाशित नहीं हुआ और 'अमर बहादुर सिंह 'अमरेश' की सावधानी से सुरक्षित रह गया।''[28] यह रजत–जयंती समारोह 1926 में न होकर 1927 में हुआ था ऐसा विश्वनाथ मिश्र, वीरपाल वर्मा आदि विद्वानों का मानना है। यह गलती मुद्रण की हो सकती है या श्री प्रभाकर के स्मृति–विभ्रम का परिणाम क्योंकि आर्य समाज के इतिहास ग्रंथों के आधार पर देखा जाए तो यह समारोह 1927 ई. में हुआ था, न कि 1926 ई. में।

स्पष्ट हो जाता है कि 'वेदों की खोज' न सिर्फ कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का पहला रिपोर्ताज था अपितु हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य का भी प्रथम रिपोर्ताज था।

इस संदर्भ में डॉ. अली मुहम्मद के विचार सही जान पड़ते हैं। वे लिखते हैं कि– ''कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर से यह भूल अनजाने में ही हुई है, क्योंकि गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार की रजत–जयन्ती पर लिखा गया रिपोर्ताज 'एक महान महोत्सव' में था जो 'वेदों की खोज' से तीन–चार माह बाद लिखा गया और अब तक कहीं प्रकाशित नहीं हुआ। अतः स्थिति बिलकुल स्पष्ट हुई कि श्री प्रभाकर का पहला रिपोर्ताज 'वेदों की खोज' है जो 26.12.1926 को लिखा गया और जनवरी 1927 को 'ब्राह्मण–सर्वस्व' के वेद–विशेषांक में प्रकाशित हुआ, उनका दूसरा रिपोर्ताज 'एक महान महोत्सव' में है जो गुरुकुल काँगड़ी के हरिद्वार के रजत–जयन्ती समारोह सन् 1927 ई. पर लिखा गया और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ।''[29]

अतः रिपोर्ताज साहित्य में उत्तरोत्तर प्रगति की ओर जाने वाले कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की रचना 'वेदों की खोज' को प्रथम हिन्दी रिपोर्ताज माना जाना चाहिए। यह रचना रिपोर्ताज के स्वरूप एवं साँचे में एकदम फिट बैठती है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर हिन्दी रिपोर्ताज के 'इलिया एहरनबुर्ग' हैं। अम्बा प्रसाद सुमन ने भी श्री प्रभाकर को रिपोर्ताज साहित्य का सूर्य माना है। वे लिखते हैं– ''साहित्यकार अपने साहित्य को ही स्मरणीय नहीं बनाता, अपने देश, नगर और गाँव को भी स्मरणीय बना देता है। राष्ट्रकवि दिनकर के कारण बिहार का सिमरिया गाँव आदर्श गाँव बन रहा है। देवबन्द और सहारनपुर प्रभाकर जी के कारण स्मरण रहेंगे कि देवबन्द का पं. कन्हैयालाल ही सहारनपुर में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' और रिपोर्ताज का 'दिवाकर' बना था।''[30]

2.2 स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति

किसी भी साहित्यिक विधा का विकास निरंतर चली आ रही परंपरा में निहित होता है। यही परंपरा जब सतह से ऊपर उठ आती है तो अपनी उपस्थिति का आभास कराती ही है, मुख्य धारा में शामिल हो साहित्य की दशा और दिशा को स्पष्ट करती चलती है। क्रांतिकारी विधा होने की वजह से रिपोर्ताज पर यह बात एकदम फिट बैठती है। प्रामाणित है कि रिपोर्ताज विधा का प्रारंभ स्वतंत्रता पूर्व हो चुका है। अपने जन्मकाल से ही यह विधा अपनी समर्थ उपस्थिति दर्ज करा चुकी है। समय विशेष और विकास क्रम के आधार पर जब भी रिपोर्ताज की बात होगी हमें स्वतंत्रता से पहले की स्थिति को देखना समझना होगा। इस क्रम में मैं आजादी से पहले रिपोर्ताज अपने किन–किन रूपों में व्याख्यायित हुआ है एवं विभिन्न लेखकों ने किस तरह से अपने मानसिक बुनावट और कल्पना का समावेश किया, यह देखना रोचक और महत्त्वपूर्ण होगा।

आजादी पूर्व के रिपोर्ताज लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', प्रकाशचंद्र गुप्त, यशपाल, रांगेय राघव आदि प्रमुख हैं। इनके रिपोर्ताजों का अवलोकन कर हम रिपोर्ताज के विकास परंपरा को समझ पाएँगे।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

प्रभाकर जी हिन्दी रिपोर्ताज के आदि लेखक हैं जिनकी रचना 'वेदों की खोज' को प्रथम रिपोर्ताज का गौरव प्राप्त है। रिपोर्ताज लेखन की जो परंपरा चंडी प्रसाद कृत 'युवराज की यात्रा', भारतेन्दु कृत 'दिल्ली दरबार दर्पण', आदि रचनाओं में अपने प्रारंभिक रूप में दिखती है, वहीं प्रभाकर जी के यहाँ अपने पूर्ण स्वरूप में विद्यमान है। स्वतंत्रता पूर्व लिखे गए रिपोर्ताजों में एक 'तसवीर के दो पहलू' (1932), 'दिल्ली यात्रा की स्मृतियाँ' (1934), 'ऊपर की बर्थ पर' (1945), 'महान सांस्कृतिक महोत्सव में' (1945), 'मेरे मकान के आस–पास' (1945), 'लखनऊ काँग्रेस के उन दिनों में' (1936) आदि प्रमुख हैं जिन्हें 'क्षण बोले कण मुसकाये' रिपोर्ताज संग्रह में स्थान मिला है। 'एक तसवीर के दो पहलू' रिपोर्ताज में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने बंदरों के माध्यम से खुशहाल जिन्दगी के लिए आजादी की आवश्यकता को अनिवार्य बताया है। लेखक ने अपनी दिल्ली यात्रा से जुड़े अनुभवों को 'दिल्ली यात्रा की स्मृतियाँ' रिपोर्ताज में रेखांकित किया है। इस

यात्रा में गाँधी जी एवं कस्तूरबा गाँधी से जुड़ी स्मृतियाँ संकलित हैं। आजादी के दौर की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में से एक 'लखनऊ काँग्रेस के उन दिनों' है जिसमें काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन की घटना को केन्द्र में रखा गया है। यह रिपोर्ताज तत्कालीन पत्र 'प्रताप' में तीन खंडों में प्रकाशित हो चुका था। भारतीय लोक संस्कृति को ग्रास बनाती महानगरीय संस्कृति के दुष्परिणामों पर 'मेरे मकान के आस–पास' एवं महान भारतीय संस्कृति के उत्थान–पतन के प्रतीक दो युवकों के वाद–विवाद को 'ऊपर की बर्थ पर' एवं भारत के महान सांस्कृतिक परिदृश्य पर 'महान सांस्कृतिक महोत्सव में' आदि रिपोर्ताजों की रचना लेखक ने की है। संयुक्त प्रांत आगरा एवं अवध की राजनीतिक खींचा–तानी पर प्रभाकर ने 'युक्त प्रांत की असेम्बली में' रिपोर्ताज की रचना की। इन रिपोर्ताजों में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन संदर्भों को अत्यंत मार्मिक ढंग से उभारा गया है। इन रिपोर्ताजों में युगबोध एवं युग चिंतन का समन्वय दर्शनीय है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर ने हिन्दी रिपोर्ताज की परंपरा को परिमार्जित एवं परिष्कृत किया जिसके सहारे यह परंपरा तेजी से आगे बढ़ी।

प्रकाश चंद्र गुप्त

प्रकाश चंद्र गुप्त, स्वतंत्रता पूर्व रिपोर्ताज परंपरा के महत्त्वपूर्ण लेखक हैं। सन् 1940 में रेखाचित्र नाम से इनकी पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें 'देहली दरवाजा', 'कश्मीरी दरवाजा', 'खंडहर', 'राजा की मंडी' और 'तोते का ताल' शीर्षक रचनाएँ रिपोर्ताज के श्रेष्ठ नमूने हैं। सन् 1947 में प्रकाशित 'नये–स्केच' में श्री गुप्त की 'अल्मोड़े का बाजार', 'रानीखेत की रात', 'नया नगर', 'नल' और 'बंगाल का अकाल' शीर्षक रचनाएँ रिपोर्ताज हैं। 'अल्मोड़े का बाजार' एवं 'बंगाल का अकाल' स्वतंत्रता पूर्व लिखे गए रिपोर्ताजों में बहुत प्रसिद्ध हैं। इन रचनाओं में देश की बदहाली, अकाल की भयावहता एवं अंग्रेजी सरकार की साम्राज्यवादी नीतियों का यथावत चित्रण मिलता है। बंगाल का अकाल प्राकृतिक आपदा कम दुर्व्यवस्था की देन अधिक था, इन रचनाओं से स्पष्ट होता है।

यशपाल

स्वतंत्रता आंदोलन में जिन लोगों ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई उनमें लेखक वर्ग भी शामिल था। अपनी लेखनी के माध्यम से इन लोगों ने देश की

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं को उभारा एवं जनमानस को जागृत कर आजादी के प्रति संलग्न किया। इन लेखकों में यशपाल का नाम उल्लेखनीय है। यशपाल ने युगीन चेतना और तत्कालीन परिस्थितियों का जीवंत चित्रण अपनी रचनाओं में किया। यशपाल अपनी पुस्तक 'चक्कर–क्लब' में जनता के दुख–दर्द एवं पूँजीवादी–साम्राज्यवादी शोषण को उभारते हैं। इनके रिपोर्ताजों के संबंध में अली मुहम्मद का कहना है– ''इन रिपोर्ताजों में कथ्य की प्रामाणिकता के लिए ऐतिहासिक तथ्यों की सहायता ली गई है। दार्शनिक पुट देकर आडंबरों के खोखलेपन को स्पष्ट किया गया है। सत्य की खोज और सच्चाई के चित्रण के लिए लेखक को जीवन की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी विसंगतियों में होकर गुजरना पड़ा है।''[31]

यशपाल की पुस्तक 'चक्कर–क्लब' संग्रह के 'साहित्य–कला और प्रेम', 'दरिद्रनारायण की पूजा मत कर', 'मनुष्यत्व का आधार या विनाश की सभ्यता', 'स्त्रियों की स्वतंत्रता और समान अधिकार', 'रामराज्य की पुड़िया', 'मनुष्यत्व की हुंकार', 'भगवान के कारिन्दे' आदि रचनाएँ रिपोर्ताज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। 'सिंहावलोकन' की कुछ रचनाओं में रिपोर्ताज का पुट मिलता है जो इनकी कुछ आप–बीती घटनाओं पर केन्द्रित है।

रांगेय राघव

स्वतंत्रता पूर्व रिपोर्ताज लेखकों में रांगेय राघव एक सशक्त रचनाकार हैं एवं उनकी कृति 'तूफानों के बीच' हिन्दी में इस नई साहित्य विधा का संभवतः पहली सशक्त रचना है। यह कृति बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है जो क्रमिक रूप से 'हंस' में प्रकाशित हुई और बाद में संग्रह के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। इस कृति में 'बांध भंगदाओं', 'एक रात', 'मरेंगे साथ–जियेंगे साथ', 'अदम्य जीवन', 'तूफान के विजेता', 'अंधकार', 'एक प्रेम पत्र' और 'बूचड़खाना' आदि प्रमुख रिपोर्ताज हैं। रांगेय राघव ने अकाल से पीड़ित मानवता की चीत्कार, गरीबी, बेबसी के साथ साम्राज्यवादी शक्तियों के अमानवीय कृत्यों को अपने रिपोर्ताजों में मार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया है। रांगेय राघव के हृदय पर बंगाल के अकाल की घटनाएँ बंकिमचंद्र चटर्जी के 'आनंदमठ' पर प्रश्न बनकर छाई हैं। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है। इस संदर्भ में घनश्याम अस्थाना का कहना है – ''तूफानों

के बीच, की अनुभूतियों में से गुजरकर कुछ ऐसा लगता है जैसे उन्नीस–बीस वर्षीय तरुण रांगेय राघव के रूप में उन्नीस–बीस वर्षीय तरुण लेखक और स्वप्न दृष्टा 'अर्नेस्ट हेमिंग्वे' अकाल–पीड़ित बंगाल में वैसे ही घूम रहा है जैसे बारुद के ढेर पर बैठे हुए फ्रांस और इटली में कभी वह घूमा करता था। रांगेय राघव की किशोर आँखों में 'शोनार बांगला' की वही तस्वीर उभर रही थी, जिसने बंकिमचन्द्र के 'आनंदमठ' और रवीन्द्र नाथ ठाकुर एवं नजरुल इस्लाम के गीतों से अपना श्रृंगार रचाया था और इसीलिए अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा प्रारंभ करते हुए रांगेय राघव ने भी किशोर हैमिंग्वे की सी– 'रोमांटिक एगनी' का एहसास किया होगा जिसका स्थान शीघ्र ही सच्चे यथार्थ का डरावना चेहरा लेने वाला था। असलियत के विस्फोट ने स्वप्न भंग नहीं किया, बल्कि सारी चेतना को लहूलुहान करके उस पर अपने बारुदी हस्ताक्षर अंकित कर दिए।''[32]

मुम्बई के नाविक सैनिक विद्रोह को लेकर रांगेय राघव ने 'खौलता खून' एवं सामान्य मजदूर वर्ग पर साम्राज्यवादी–पूँजीवादी प्रहार और तज्जन्य कारुणिक दशा के ऊपर यह ग्वालियर है' शीर्षक रिपोर्ताज की रचना की।

रांगेय राघव के रिपोर्ताजों से हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य की परंपरा समृद्ध हुई। इनके रिपोर्ताजों में बेचैनी, आग एवं व्यवस्था की सड़ी–गली परंपराओं के प्रति विद्रोह है। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार– डॉ. रांगेय राघव के रिपोर्ताज में गहरी सांस्कृतिक जागरुकता, सामाजिक चेतना, असीम कातरता, रुला देने वाली मार्मिकता है तो दूसरी ओर मुनाफाखोरों, साहूकारों एवं सरकारी अफसरों के प्रति तीव्र आक्रोश, ललकार–भरी गर्जना और भृकुटि चढ़ा रोष दिखाई देता है। लेखक के विवरण में जहाँ हृदय से उमड़ी सेवा की भावना से उत्पन्न उत्साह है वहीं अपने सीमित साधनों द्वारा कुछ भी न कर पाने की विवशता भी है, जो कहीं–कहीं क्षोभ की सीमा तक पहुँच गयी है। रांगेय राघव की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जब वे अमीरों के प्रति जहर उगलते हैं तो पाठक की मुट्ठियाँ भी अनायास तन जाती हैं और जब पद–दलितों, भूख से बिलबिलाते कंकाल–सदृश मानवों का वर्णन करते हैं तो पाठक का मन भी द्रवित हो उठता है। साधारणीकृत करने की वैसी अद्‌भुत क्षमता हिन्दी के अन्य लेखकों में दुर्लभ है।''[33]

पत्र–पत्रिकाएं

हिन्दी रिपोर्ताज का विकास पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं ने प्रारंभिक रिपोर्ताज के स्वरूप को सँवारा। अधिकांश रिपोर्ताज इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। स्वतंत्रता–पूर्व रिपोर्ताज की स्थिति को समझने के लिए पत्र–पत्रिकाओं में यत्र–तत्र बिखरे रिपोर्ताजों को देखना होगा। जिन पत्र–पत्रिकाओं में ये रचनाएँ छपीं उनमें 'विशाल भारत' एवं 'हंस' प्रमुख हैं।

विशाल भारत

अप्रैल 1930 में 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'सत्याग्रह संग्राम' एवं मई 1930 में प्रकाशित मदनमोहन चतुर्वेदी कृत 'डांडी में सत्याग्रह शिविर', रामानंद चटोपाध्याय कृत 'ढाके का उपद्रव' शीर्षक रचनाएँ प्रारंभिक रिपोर्ताज के नमूने हैं। हरिशंकर दीक्षित कृत 'मॉरीशस का गोलीकांड' एक रिपोर्ताज है जिसमें मारीशस के गन्ना किसानों पर चलाई गई गोली की मार्मिक कथा है। आगे चलकर 'विशाल भारत' में स्थाई रूप से एक स्तम्भ ही चल पड़ा जिसे 'अदम्य जीवन' नाम से जानते हैं। इस स्थाई स्तम्भ में नियमित रिपोर्ताजों का प्रकाशन होता था।

हंस

जिन पत्र–पत्रिकाओं ने रिपोर्ताज विधा को उन्नत किया उनमें 'हंस' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इस पत्रिका में 'समाचार और विचार' तथा 'अपना देश' स्तम्भ में नियमित रिपोर्ताज छपते थे। 1937 में जैनेन्द्र के संपादन काल में 'सुहृदय संघ, मुजफ्फरनगर', 'कांग्रेस और मंत्रीपद', 'हिन्दी की एक साहित्य परिषद' आदि रचनाएँ रिपोर्ताज के अंश से युक्त हैं। जून 1944 से 'अपना देश' शीर्षक से एक अस्थाई स्तंभ चलाया गया जिसमें प्रति माह एक रिपोर्ताज छपता था। हंस के तत्कालीन संपादक शिवदान सिंह चौहान ने इस श्रृंखला का पहला रिपोर्ताज 'मौत के खिलाफ जिन्दगी की लड़ाई' लिखा। ललित मोहन अवस्थी कृत 'जिन्दगी' और धर्मवीर भारती कृत 'मुर्दों का गाँव' शीर्षक रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं जो 1945 के मार्च अंक में प्रकाशित हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रिपोर्ताज विधा को पल्लवित–पुष्पित करने का कार्य रिपोर्ताज लेखकों के साथ–साथ पत्र–पत्रिकाओं का भी रहा। स्वतंत्रता पूर्व की तत्कालीन परिस्थितियाँ भी रिपोर्ताज के पल्लवन के लिए उत्तरदायी हैं।

2.3 स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति

स्वतंत्रता के पश्चात् अन्यान्य नव्यतर गद्य विधाओं की भाँति रिपोर्ताज विधा में भी अच्छी रचनाएँ सामने आईं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में अच्छे रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। युद्ध, सूखा, भूकंप, अकाल, महामारी जैसी प्राकृतिक आपदाओं पर लेखकों–पत्रकारों ने अत्यंत ही मार्मिक रिपोर्ताज लिखे। पत्रकारिता अत्यंत सचेत हुई साथ ही रिपोर्ताज विधा भी समृद्ध हुई। कैमरा तथा बढ़ते हुए इलेक्ट्रानिक मीडिया ने रिपोर्ताज विधा को जन–जन से जोड़ा। धीरे–धीरे यह विधा पुस्तकों से बाहर निकलकर दृश्य और ध्वनियों के माध्यम से श्रोताओं तथा दर्शकों तक पहुँच रही है।

हिन्दी–रिपोर्ताज परंपरा में कुछ रिपोर्ताजकार स्वतंत्रता पूर्व भी लिखते रहे हैं और स्वतंत्रता–पश्चात भी। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', प्रकाशचंद्र गुप्त इनमें से प्रमुख हैं। अतः स्वतंत्रता–पश्चात हिन्दी रिपोर्ताज की स्थिति को बतलाते समय इन रिपोर्ताजकारेां को इस परंपरा में भी दिखलाना अनिवार्य है।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का रिपोर्ताज संग्रह 'क्षण बोले कण मुसकाये' भारतीय ज्ञानपीठ से 1963 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें सन् 1932 से लेकर 1962 तक के रिपोर्ताज संग्रहीत हैं। स्वतंत्रता पश्चात के रिपोर्ताजों में राष्ट्र–चिंतन का स्वर एक अंतर्धारा की तरह विद्यमान है जबकि स्वतंत्रता पूर्व के रिपोर्ताजों में स्वाधीनता की प्राप्ति की चिंता स्पष्ट ही परिलक्षित होती है। प्रभाकर जी के रिपोर्ताजों में राष्ट्र की समस्याओं को अत्यंत मार्मिक ढंग से वर्णित किया गया। ये समस्यायें एक नवोदित राष्ट्र की समस्यायें हैं। इस रिपोर्ताज संग्रह के महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं– 'वे सुनते ही नहीं', 'अब हम स्वतंत्र हैं', 'लोहे के स्टैच्यू बोल उठे', 'राबर्ट नर्सिंग होम में', 'मस्जिद की मीनारें बोलीं', 'मरने के बाद मुलाकात', 'पहाड़ी रिक्शा', 'कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में', 'दो दिन : दो गोष्ठियाँ', 'अपने भंगी भाइयों के साथ', 'कुंभमहान', 'धर्म और ईश्वर ने क्या दिया', 'मध्य भारत की श्रद्धा के फूल,' 'आपबीती या जगबीती', 'लाल किले की ऊँची दीवार से', 'लाल मंदिर की छाया में', 'मसूरी की माल रोड पर एक शाम'। रिपोर्ताज के शीर्षक से पता चलता है कि ये रिपोर्ताज विविध आयाम से संपन्न हैं। इनके रिपोर्ताजों के संबंध में अली

मुहम्मद का कहना है– ''प्रभाकर जी के रिपोर्ताज विविध आयाम लिए हुए हैं। उनमें सामाजिक चेतना है तो सांस्कृतिक जागरुकता भी है। इतिहास के प्रति लगाव है तो भविष्य के प्रति आशा। अतः इनके स्वातंत्र्योत्तर रिपोर्ताजों में सांप्रदायिक सद्भाव, भाइचारें एवं देश की एकता–अखंडता के लिए जबरदस्त अपील मिलती है। इतिहास के गढ़े–मुर्दे समाज में जहर घोलने का काम 'प्रभाकर' की लेखनी ने नहीं किया। विवादास्पद विषयों पर उन्होंने नहीं लिखा। समाज के लिए उपादेय विषयों पर ही उनकी लेखनी पराक्रम दिखाती है। वे कथनी और करनी दोनों में एक जैसे हैं। दोनों में ही अपने आदर्शों के अनुसार चलते हें। सामाजिक प्रतिबद्धता और राष्ट्रीय चिंतन में गाँधी जी के बहुत करीब हैं।''[34]

प्रकाशचंद्र गुप्त

स्वतंत्रता–पश्चात् रिपोर्ताज लेखकों में प्रकाशचंद्र गुप्त एक महत्त्वपूर्ण नाम हैं। गुप्त जी के रिपोर्ताज घटना प्रधान हैं। गरीबी, अकाल, साम्राज्यवादी सरकार की दमनात्मक प्रवृत्ति इनके रिपोर्ताजों के प्रमुख विषय रहे हैं किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् साम्राज्यवादी सरकार की दमनात्मक प्रवृत्ति का स्थान सरकार की उपेक्षाजन्य प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं।

सन् 1962 में प्रकाशित रचना 'रेखाचित्र' में प्रकाश चंद्र गुप्त ने हिन्दी गद्य के नवीन विधाओं से संबंधित रचनाओं को संकलित किया है। गद्य की नवीन विधाओं के संदर्भ में यह सफल प्रयोग रहा है। 'रेखाचित्र' संग्रह के दूसरे शीर्षक 'स्कैच' के सभी उपशीर्षकों– 'चौराहा', 'महाकुंभ', 'तुर्काना', 'राजापुर', 'बनारसी साड़ी', 'बनारसी–बुनकर', 'स्वराज्य भवन', 'विश्राम', 'बघाड़ा', 'बाँध', 'गाँव, 'जेठ की दुपहरी' 'नंगे पैर', 'कड़ा', 'बरगद', 'कुंआरी धरती', 'दशाश्वमेध', 'पुराना नगर', आदि में रिपोर्ताज के शिल्प का सफल विधान किया गया है। इन रिपोर्ताजों में से अधिकांश का पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन हो चुका है। 'स्वराज्य भवन', 'चौराहा', 'महाकुंभ', 'राजापुर', 'बनारस के बुनकर' शीर्षक रिपोर्ताज संस्मरणात्मक रिपोर्ताजों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं जिनमें श्री गुप्त ने स्मृति के माध्यम से समसामयिक घटनाओं को संवेद्य बना दिया है। इन रिपोर्ताजों में वर्णित घटनाएँ मानवीय संवेदना को झकझोर कर रख देती हैं। 'विश्राम', 'बघाड़ा', 'बांध', 'खंडहर', रचनाओं

को रेखाचित्र शैली में रचित रिपोर्ताज कह सकते हैं जिसमें लेखक ने घटना एवं संवेदना को उभारने का प्रयास किया है।

अब तक गद्य की नवीन विधाओं के शिल्प स्पष्ट हो चुके थे। शैलीगत स्पष्टता भी पूर्णतः विश्लेषित हो चुकी थी। शिल्प एवं शैलीगत विवेचन और विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लेखक की उपरोक्त रचनाएँ रिपोर्ताज साहित्य के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं और श्री गुप्त रिपोर्ताज के सशक्त हस्ताक्षर।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कृति 'रेखायें और चित्र' में नवीन गद्य विधाओं का अच्छा प्रयोग मिलता है। इस कृति में 'निबंध–रिपोर्ताज' शीर्षक से संकलित– 'कलम घसीट', 'रंगमंच के व्यावहारिक अनुभव', 'है कुछ ऐसी बात जो चुप हूँ' जैसी रचनाएँ रिपोर्ताज विधा के अच्छे दृष्टांत हैं।

अमृतराय :

अमृतराय रिपोर्ताज लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। अमृतराय की कृति 'लाल धरती' महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह है जो लेखक के प्रगतिशील विचारों की द्योतक हैं। इनमें 'अभियोग', 'नई दुनियाँ के मेमार', 'दुर्भिक्ष मंत्री कथाकार मुंशी के नाम', 'आजादी के रेल उर्फ वार्निश के पीपे' आदि महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं। इन रिपोर्ताजों में स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न सामाजिक असंगतियों का चित्रण है। समकालीन जीवन, अन्याय, अत्याचार और शोषण पर टिकी व्यवस्था पर पुरअसर चोट की गई है।

भगवतशरण उपाध्याय

इतिहास को रिपोर्ताज का विषय बनाने वाले भगवतशरण उपाध्याय रिपोर्ताज–लेखन परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। श्री उपाध्याय की अध्ययन दृष्टि अत्यंत ही गहरी एवं व्यापक है। इनके रिपोर्ताजों में इनका ऐतिहासिक चिंतन समाया हुआ है। व्यापक अनुभव एवं गहन ऐतिहासिक अध्ययन एवं चिंतन की परिणति है उनका रिपोर्ताज संग्रह 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर'। जीवन संघर्ष एवं सामाजिक चेतना से ओत–प्रोत इनके इस रिपोर्ताज संग्रह के महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं– 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', 'वैश्य', 'शूद्र', 'दास', 'अत्यंज', 'लेखक एवं नारी'।

इन रचनाओं के माध्यम से लेखक ने मानवीय संवेदना की गहराई को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में झांक कर देखा है।

श्री उपाध्याय का दूसरा महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह है 'ठूंठा आम'। इस संग्रह के महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताजों में 'ठूंठा आम', 'सम्भवामि युगे–युगे', 'टूटे सूत', 'मैं मजदूर हूँ', 'दिल्ली की आपबीती', 'अभिसार का आकर्षण', 'कोलाहल में एकाकी', 'कबीर अमेरिका में' शामिल हैं। श्री उपाध्याय की रिपोर्ताज लेखन शैली अद्‌भुत है।

शांतिप्रिय द्विवेदी

सन् 1953 में प्रकाशित शांतिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'प्रतिष्ठान' में रिपोर्ताज भी हैं। इस पुस्तक के आमुख में स्वयं लेखक ने लिखा है – ''इसमें पसर्नल एस्से भी हैं, संस्मरण भी हैं और आजकल के अखबारी रिपोर्ताज का नमूना भी (मिथिला की अमराइयों में)।''[35] इस रिपोर्ताज में मिथिला की संस्कृति का वर्णन मिलता है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सरस्वती प्रेस, बनारस से 1953 में प्रकाशित कृति 'अरे यायावर रहेगा याद' में अज्ञेय ने रिपोर्ताज विधा का अच्छा प्रयोग किया है। 'मौत' की घाटी में', 'एलुरा', 'माझुली' शीर्षक रचनाएँ संस्मरणात्मक रिपोर्ताज हैं। लेखक ने अपनी यात्रा के विवरणों को समाचार की शैली में व्यक्त किया है।

रामकुमार

रामकुमार की कृति 'यूरोप के स्कैच' में रिपोर्ताज विधा के सफल प्रयोग हुए हैं। इस कृति में कुल 22 रचनाएँ हैं जिनमें रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण एवं जीवनी का अंश मिश्रित है। 'पांपेई के खंडहर', 'रोमां रोलां के घर में', 'यूरोप का हिमालय आल्पस', 'फूचिक के देश में', 'नीला डेन्यूब और वियना' शीर्षक रिपोर्ताज के अच्छे नमूने हैं। रामकुमार की इस कृति में संकलित रिपोर्ताजों की विशेषताओं को बताते हुए प्रो. हरिमोहन का कहना है– इस रिपोर्ताज पुस्तक की विशेषता यह भी है कि लेखक ने जिन नगरों, पर्वतों, नदियों, गाँवों का वर्णन किया है, अपने द्वारा बनाए रेखांकन भी दिए हैं, इन विवरणों को पढ़ते, समय ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक बाजारों, नदियों, पुलों को स्वयं देख रहा है।''[36]

धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। सन् 1971 के बांग्लादेश के मुक्ति अभियान का सजीव चित्रण यद्यपि कई साहित्यकारों ने किया है किन्तु भारती जी का नाम सर्वोपरि है। भारती जी स्वयं बांग्लादेश के मुक्ति अभियान में मोर्चे पर डटे रहे और धारावाहिक रूप से सचित्र रिपोर्ताज 'धर्मयुग' में लिखते रहे जो बाद में 'मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। 'युद्ध यात्रा' भी बांग्लादेश की मुक्तवाहिनी सेना के साहसिक प्रयासों से सजा हुआ रिपोर्ताज संकलन है। बंग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित इन रिपोर्ताजों में मुक्तिवाहिनी के अदम्य साहस, भारतीय इंजीनियरों के कौशल आदि का चित्रण अत्यंत ही सजीव बन पड़ा है। इन रचनाओं को पढ़कर हम इन्हें यात्रा विवरण न मानकर रिपोर्ताज ही मानेंगे। इन दोनों रिपोर्ताज संकलनों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध न सिर्फ भयावहता को जन्म देता है अपितु अपने साथ–साथ अनेकशः ऐसी अमानवीय स्थितियों को खड़ा कर देता है जो किसी सभ्य–समाज के माथे पर कलंक की भाँति छा जाते हैं। इन्हीं स्थितियों को धर्मवीर भारती ने चित्रित कर सजीव कर दिया है और उनके रिपोर्ताज साहित्य के ऐतिहासिक दस्तावेज बन गए। धर्मवीर भारती के रिपोर्ताजों की विशेषता बताते हुए अली मुहम्मद ठीक ही लिखते हैं– ''दिसंबर 1971 की तीसरी तारीख से सोलह तारीख तक चले चौदह दिन के इस युद्ध में भारती जी मुक्ति–योद्धाओं के साथ युद्ध की डरावनी छाया से खेलते हुए बंगलादेश की राजधानी ढाका की ओर बढ़े। जवान अपने कार्य में व्यस्त थे तो पत्रकार भारती मानवता और पशुता के बीच उभरे संघर्ष को रेखांकित कर रहे थे। मानव–मूल्यों के विविध आयाम लिए उनकी लेखनी जीवन संघर्ष की भीषणता और सैनिक जीवन की निर्दयता–निर्भयता को लिपिबद्ध कर रही थी।''[37]

भारती के रिपोर्ताज युद्ध के ऊपर लिखे हिन्दी के श्रेष्ठ रिपोर्ताज हैं। इन रिपोर्ताजों में युद्ध से संबंधित लोगों के उन मानवीय पक्षों का मार्मिक चित्रण किया गया है जिन पर दैनिक पत्रों के रिपोर्टरों तथा संवाददाताओं की आमतौर पर नजर नहीं जाती। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार– ''इस रिपोर्ताज में दानवता के विरुद्ध मानवता के अदम्य संघर्ष और अंततोगत्वा उसकी विजय की गाथा है। समस्त घटनाओं का क्रमबद्ध रूप में उल्लेख किया है। ओज और प्रवाह से पूरित डॉ.

धर्मवीर भारती की विषयानुरूप भाषा और शैली ने रिपोर्ताज में एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। जब वे मुक्तवाहिनी के सैनिकों का उत्साह व्यक्त करते हैं तो पाठक भी स्वयं को रणभूमि में ही खड़ा हुआ अनुभव करता है। जहाँ वह दानवता की शिकार होती जनता का वर्णन करते हैं तो स्वयं पाठक उस अत्याचार की पीड़ा का अपने ऊपर अनुभव–सा करता है।''[38]

'युद्ध यात्रा' एवं 'मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे' रिपोर्ताज संकलन के अतिरिक्त धर्मवीर भारती के अन्य रिपोर्ताज 'कहनी अनकहनी' एवं 'ठेले पर हिमालय' में संकलित हैं। 1978 के चीन यात्रा से लौटकर अपने अनुभवों को चीन जैसा देखा' शीर्षक से प्रकाशित कराया जिसमें संस्मरणात्मक रिपोर्ताज सम्मिलित हैं।

अमृतलाल नागर

सन् 1959 में पहले उत्तर प्रदेश सूचना एवं जनसंपर्क विभाग से प्रकाशित 'गदर के फूल' श्रेष्ठ रिपोर्ताज साहित्य की श्रेणी में शामिल है। नागर जी की यह कृति बाद में राजपाल एण्ड सन्स से प्रकाशित हुई। सन् 1857 की क्रांति से संबंधित प्रामाणिक जानकारी नागरजी ने संयुक्त प्रांत आगरा व अवध के गाँव–गाँव घूमकर एकत्रित की, फिर उसे 'गदर के फूल' में संकलित किया। इस पुस्तक में संग्रहीत विवरण उन लोगों के साक्षात्कारों पर आधारित है जो उस क्रांति के प्रत्यक्षदर्शी हैं या अपने बाप–दादा से सुनी क्रांति के श्रोता हैं। अतः इसकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है।

लक्ष्मीचंद्र जैन

सन् 1960 में प्रकाशित लक्ष्मीचंद्र जैन की कृति 'कागज की किश्तियाँ' में रिपोर्ताज के सफल प्रयोग मिलते हैं। सन् 1961 में प्रकाशित 'नये रंग : नये ढंग' कृति में भी श्री जैन ने रिपोर्ताज विधा का सफल प्रयोग किया है। श्री जैन महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताजकार हैं जिनके संबंध में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का कहना है– मेरी दृष्टि में इस विधा को कला की परिपूर्ण पालिश देने का श्रेय श्री लक्ष्मीचंद्र जैन को प्राप्त है। उनके लिखे रिपोर्ताज– 'जब पाम्पेआई को प्रलय ने बरा', 'गंगा–वोल्गा के संगम पर', 'असीम आकाश के बियाबान में' और 'एक डाकू : दो खत : तीन दृष्टियाँ' आदि हिन्दी साहित्य के ऐसे रत्न हैं जो किसी भी

भाषा–सरस्वती के कण्ठहार में प्रदीप्त हो सकते हैं, उनकी दृष्टि की सूक्ष्मता, गहरे अध्ययन की पृष्ठभूमि, भाव नियोजन और संदेश दान की क्षमता अनन्य है।''[39]

रघुवीर सहाय

भारतीय ज्ञानपीठ से सन् 1960 में प्रकाशित 'सीढ़ियों पर धूप में' कृति में कविताओं और कहानियों के साथ कुछ रिपोर्ताज भी संकलित हैं। तीनों ही निश्चित या कहना चाहिए तथाकथित शास्त्रीय मानदंडों से अलग हटकर हैं। इनके रिपोर्ताजों में जीवन की अति सामान्य समझे जाने वाली बातों पर विशिष्ट चिंतन किया गया है और इस चिंतन के परिणामस्वरूप मानव–प्रवृत्तियों के कुछ आधारभूत तथ्य स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आए हैं। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार– ''इन रिपोर्ताजों में विचार तत्त्व की प्रधानता है। कहना चाहिए कि बाह्य जगत के दृश्यों और घटनाओं का गौण और मन के अंदर उमड़ते–घुमड़ते विचारों का वर्णन व्यापक रूप में किया गया है।''[40]

रघुवीर सहाय कृत 'वे और नहीं होंगे जो मारे जाएँगे' में भी रिपोर्ताज का साफ–सुथरा रूप मिलता है जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक समस्याओं और प्राकृतिक–यांत्रिक दुर्घटनाओं का वर्णन मिलता है। पत्रकार और लेखक रघुवीर सहाय हिन्दी रिपोर्ताज परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं।

प्रभाकर माचवे :

सन् 1964 में प्रकाशित 'गोरी नजरों में हम' कृति श्री माचवे के अमेरिका प्रवास एवं अध्ययन समाप्ति के पश्चात स्वदेश लौटने के अनुभवों से समृद्ध है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि 'गोरी नजर' से मतलब– अमरीकन, अंग्रेज, पश्चिम यूरोप के श्वेतांग–गौरांग जनसाधारण की नजर और 'हम' से मतलब एशियाई, अफ्रीकी काले आदमी नहीं, परन्तु भारतीय या हिन्दुस्तानी से। श्री माचवे सन् 1959 में अध्ययन हेतु अमेरिका गए एवं अध्ययन पूर्ण करके सन् 1961 में सोलह देशों में घूमते हुए भारत लौटे। श्री माचवे ने आने–जाने के साथ ही अन्य यथार्थ अनुभवों को यात्रा–विवरणात्मक रिपोर्ताज की शैली में 'गोरी नजरों में हम' कृति में लिपिबद्ध किया। श्री माचवे की यह रचना विश्व समुदाय के जीवन अनुभवों एवं संवेदना को जगाने में सफल है। इसमें संकलित रचनाओं के माध्यम से श्री माचवे ने यूरोपियन

एवं अमेरिकन लोगों की भारतीयों के प्रति सोच एवं धारणा को व्यंग्यात्मक और मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है।

निर्मल वर्मा

निर्मल वर्मा हिन्दी रिपोर्ताज परंपरा के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी कृति 'चीड़ों पर चांदनी', 'जलती झाड़ी' तथा 'हर बारिश में' में रिपोर्ताज के सफल प्रयोग दर्शनीय हैं। 'हर बारिश में' कृति के आवरण पृष्ठ पर लिखा है– ''ये निबंध कभी–कभी एक ऐसे 'एक्जाइल' लेखक के रिपोर्ताज जान पड़ते हैं जिसने युद्ध के मोर्चे पर घायल संस्कृतियों के घावों को जैसा देखा, वैसा ही आँकने की कोशिश की और भारतीय आत्म संतोष से हटकर, खुद अपने देश की व्यवस्था को इन घावों में रिसता देखा।''[41]

भदंत आनंद कौसल्यायन

बौद्ध भिक्षु भदंत आनंद कौसल्यायन की कृति 'देश की मिट्टी बुलाती है' सन् 1966 में प्रकाशित हुई। इस कृति में रिपोर्ताज, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, रेखाचित्र और निबंध के रूप झलकते हैं। परन्तु लेखक की मूल दृष्टि यहाँ रिपोर्ताजपरक ही है। अपनी ही तरह के गतिशील, सूक्ष्म संवेदना को, जीवन और मृत्यु के बीच से अलग–अलग ग्रहण कर व्यक्त करना कौसल्यायन की लेखनी की मूल विशेषता है।

शंकर दयाल सिंह

शंकर दयाल सिंह रिपोर्ताज विधा के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। इनके रिपोर्ताजों में इतिहास, उपन्यास, कहानी, यात्रा–वृत्तांत आदि के मिले–जुले रूपों का सफल प्रयोग मिलता है। 1965 में हुए भारत–पाकिस्तान युद्ध की पृष्ठभूमि पर श्री सिंह की महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज कृति 'युद्ध के चौराहे तक' सन् 1969 में प्रकाशित हुई। यह कृति युद्ध की पृष्ठभूमि पर रचित महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताजों की श्रेणी में शामिल है जिसमें लेखक ने युद्धकालीन मनःस्थितियों का अत्यंत ही मार्मिक एवं जीवंत वर्णन किया है। 'लोहे का पंजाब', 'इतिहास ने भूगोल के सीने में खंजड़ घुसेड़ दिया है', 'इतिहास के और पास', 'तीर तो उसने कई चलाए पर निशाना खाली गया' आदि इस संग्रह के महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं।

सन् 1965 के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच 1971 में पुनः युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध को श्री सिंह 1965 के युद्ध रूप बीज का अंकुर मानते हैं। 1971 के

युद्ध के अनुभवों को केन्द्र में रखकर रचे गए रिपोर्ताजों का संग्रह 'युद्ध के आसपास' सन् 1972 में प्रकाशित हुई। 10 वर्षों के अंदर ही दो भारत–पाक युद्ध और उनमें भारत का विजयी अभियान, स्वतंत्र बंगलादेश की मान्यता, पाकिस्तानी फौजों की पराजय, याहियाशाही का अंत आदि ऐसे मामले रहे हैं जो भारत के इतिहास के स्वर्णाक्षर हैं। इन्हीं युद्धों और इतिहास को श्री सिंह ने अपने रिपोर्ताज में जीवंत कर दिया है।

कुबेरनाथ राय

औद्योगिक संस्कृति के विकास के साथ–साथ बौद्धिकता का विस्तार भी होता जा रहा है। इस बौद्धिकता ने ग्राम–संस्कृति को दिन–प्रतिदिन रसहीन करना प्रारंभ कर दिया। आज का मानव अभिसप्त है ग्राम–निर्वासित और रसहीन जीवन जीने के लिए। कुबेरनाथ राय ऐसे रिपोर्ताजकार हैं जिन्होंने यंत्रबोध से उत्पन्न निर्वासन के भाव को जीवनबोध के ऊपर हावी होने नहीं दिया है। इनके रिपोर्ताजों में ग्रामीण–जीवन की उल्लास साधना अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की गई है।

सन् 1972 में प्रकाशित 'गंधमादन' पुस्तक एक ललित निबंध संग्रह है जिसके उपशीर्षक 'रिपोर्ताज' के अंतर्गत तीन रचनाएँ संकलित हैं। 'दृष्टिजल' सन् 1966–67 में उत्तर प्रदेश, बिहार में पड़े भीषण सूखा और परिणामस्वरूप अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गई महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज है। 'दृष्टि अभिषेक' ब्रह्मपुत्र की बाढ़जन्य परिस्थतियों पर लिखा गया रिपोर्ताज है और 'कजरीवन में जीवहंस' में छात्र–छात्राओं के साथ की गई पिकनिक यात्रा पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज कृति। इन तीनों रिपोर्ताजों में श्री राय ने अनेक घटनाओं एवं समस्याओं के साथ–साथ प्रकृति सौंदर्य के अन्तर्द्वन्द्व की मार्मिक तस्वीर उभारने का प्रयास किया है।

निबंध संग्रह 'प्रिया नीलकंठी' में भी श्री राय ने रिपोर्ताज शैली के सफल प्रयोग किए हैं। 'सनातन नीम', 'चंडीयान' और 'बहुरूपी' शीर्षक लेखों में रिपोर्ताज के तत्त्व रेखांकित किए जा सकते हैं। श्री राय ने रिपोर्ताजों में नई भावभूमि को गढ़ा है और शैलीगत नवीन प्रयोग किए हैं।

विष्णुकांत शास्त्री

विष्णुकांत शास्त्री हिन्दी साहित्य के प्रखर आलोचक होने के साथ–साथ रचनात्मक साहित्यकार भी हैं। 'बंगलादेश के संदर्भ में' उनकी रचनात्मक कौशल का अप्रतिम दस्तावेज है। युद्ध की विभीषिका और उससे उपजी करुणा, निराशा, गरीबी, आदि को केन्द्र में रखकर भारत–पाक के 1971 के युद्ध पर लिखी रिपोर्ताज कृति 'बंगलादेश के संदर्भ में' युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखे रिपोर्ताज संग्रहों में महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारी है। शास्त्री जी, धर्मवीर भारती के साथ युद्ध यात्रा पर गए। जिन दृश्यों, घटनाओं को शास्त्री जी ने अपनी आँखों से देखा है, हृदय से अनुभूत किया है उनका संपूर्ण मर्मस्पर्शी विवरण इस संग्रह के रिपोर्ताजों में मिलता है। मुक्तवाहिनी सैनिकों के जुझारू प्रवृत्ति, परतंत्रता की बेड़ियों को काट गिराने की उत्कट लालसा, उनके अटूट हिम्मत, अद्वितीय बलिदान एवं अन्य वीरोचित संघर्षों को अत्यंत सजीव ढंग से चित्रित किया गया है। बंगलादेश की जनता और विशेषकर मुक्तिवाहिनी के जवानों के साथ शास्त्री जी का तादात्म्य और उनकी गहन सहानुभूति से निसृत ये रिपोर्ताज हिन्दी साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि हैं। इन रिपोर्ताजों में लेखक ने अमेरिकी अस्त्रों–शस्त्रों से सुसज्जित पाकिस्तान की खूंखार सेना का सामना करने वाली मुक्तिवाहिनी सैनिकों के अदम्य उत्साह के साथ–साथ घायल सैनिकों की सेवा–सुश्रुषा करने वाली अबोध और अनपढ़ बालिकाओं का भी विवरण दिया है। इन रिपोर्ताजों में घटनाओं के मूल में छिपी मानसिक क्रांति के भावों को मुखरित किया गया है जो इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता है।

सन् 1977 में प्रकाशित 'स्मरण को पाथेय बनने दो' कृति में संग्रहित रचना 'अंधकार में ज्योति की तलाश : बांगलादेश में भारती जी के साथ', 'विपथगा क्रांति का विफोट स्थल : नक्सलबाड़ी' और 'सागर में सँवरा पुरी का श्रृंगार' में रिपोर्ताज विधा का सफल प्रयोग मिलता है।

शास्त्री जी के रिपोर्ताजों की भाषा विषय–वैविध्य से परिपूर्ण है। युद्ध करती मुक्तिवाहिनी के जवानों की वीरता का वर्णन करते हुए लेखक की भाषा ओज पूर्ण हो जाती है तो पाकिस्तानी दरिन्दों के अत्याचारों को सहन करती जनता का विवरण देते समय उनकी भाषा स्वतः ही करुणा से परिपूर्ण हो जाती है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय बंगलादेश सहायक समिति की कार्य समिति का सदस्य होने के नाते शास्त्री जी को बंगलादेश जाने का सुयोग कई बार मिला। शास्त्री जी की रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई हैं। 'धर्मयुग' में 'मुक्ति योद्धाओं के शिविर में' प्रकाशित रिपोर्ताज एक अमूल्य धरोहर है।

श्रीकांत वर्मा

यूरोप प्रवास के अनुभवों पर आधारित रिपोर्ताज परंपरा में श्रीकांत वर्मा कृत 'अपोलो का रथ' एक महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें लेखक ने ऐतिहासिक, सामाजिक साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों को गहन संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है। विषय वैविध्य इनके रिपोर्ताजों की विशिष्टता है। इस संग्रह में संकलित रिपोर्ताज विश्व इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं से संबंधित होने के नाते महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज बन गए हैं। 'हिटलर की वधशाला' रिपोर्ताज में 'प्लात्जैंसी' स्थान पर हुई हत्याओं का मार्मिक दस्तावेज है। इसी जगह पर 9 सितंबर 1942 को जूलियस फूचिक का वध कर दिया गया था। बर्लिन शहर के जन जीवन पर आधारित 'फैंस के इधर–उधर', 'यूरोप के प्रसिद्ध नगर एम्सटर्डम की सामाजिक स्थिति पर सेक्स की दुकान, आदमी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर 'डेथ ऑफ ए सेल्समैन' आदि इस रिपोर्ताज संग्रह के प्रमुख रिपोर्ताज हैं।

श्रीकांत वर्मा के इन रिपोर्ताजों में भारतीय एवं यूरोपीय संस्कृति की तुलना देखने को मिलती है। श्री वर्मा के रिपोर्ताज पत्र–पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होते रहे हैं। सारिका में छपा 'आश्वासन सब देते हैं, करता कोई कुछ भी नहीं' एक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज है जिसमें भारत के भाग्य विधाताओं पर व्यंग्य किया गया है। श्रीकांत वर्मा रिपोर्ताज परंपरा के महत्त्वपूर्ण लेखक हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु

अनेक विधाओं को एक ही रचना में मिश्रित कर नवीन विधात्मक प्रयोग करने वाले रचनाकार फणीश्वरनाथ रेणु रिपोर्ताज लेखकों में विशेष स्थान के अधिकारी हैं। रेणु ने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' एवं 'परती परिकथा' और कहानियों में स्थान–स्थान पर रिपोर्ताज शैली का प्रयोग किया है। रेणु के महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह हैं– 'ऋणजल–धनजल', 'नेपाली क्रांति कथा', 'श्रुत–अश्रुत पूर्व' 'बन तुलसी की गंध'।

सन् 1977 में प्रकाशित 'ऋणजल–धनजल' रेणु का महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह है जिसमें पटना में 1975 में आई बाढ़ और बिहार में 1966 में पड़े सूखे को आधार बनाया गया है। प्राकृतिक आपदा को केन्द्र में रखकर लिखे गए रिपोर्ताजों में यह कृति अद्वितीय है। बाढ़ से संबंधित पाँच रिपोर्ताज संकलित हैं– 'कुत्ते की आवाज', 'जो बोले सो निहाल', 'पंछी की लाश', 'कलाकारों की रिलीफ पार्टी' व 'मानुष बने रहो' तथा सूखे से संबंधित रचनाएँ हैं– 'भूमिदर्शन की भूमिका (1)', 'भूमिदर्शन की भूमिका (2)', 'भूमिदर्शन की भूमिका (3)', 'भूमिदर्शन की भूमिका (4)', 'भूमिदर्शन की भूमिका (5)' और 'भूमिदर्शन की भूमिका (6)'। बिहार के सूखे पर लिखे गए ये रिपोर्ताज सर्वप्रथम 'जनता' में छपे थे जिन्हें रेणु ने बाद में 'ऋणजल–धनजल' में स्थान दिया। रेणु के जीवनकाल में यह रचना प्रकाशित नहीं हो पाई थी किन्तु संग्रह का नाम उनका ही सुझाया हुआ था। पूर्णिया और भागलपुर इलाकों के अकालजन्य स्थितियों और एकत्रित ब्यौरों को प्रस्तुत करने वाली यह रचना रेणु को रिपोर्ताज साहित्य में न सिर्फ प्रतिष्ठित करती है, अपितु शोध का विषय भी बनाती है। सूखे से संबंधित ये रिपोर्ताज सरकारी मशीनरी का पर्दाफाश करती है। बाढ़ से संबंधित रिपोर्ताजों में संपूर्ण जीवन दृष्टि सर्वत्र दिखाई देती है। आत्मीय संस्पर्श सर्वत्र विद्यमान है। रेणु ने बाढ़ में फंसे लोगों की बेचैनियों को उभारने के साथ–साथ भोक्ता के अनुभवों को भी अभिव्यक्त किया है। बाढ़ से संबंधित अनेक मनःस्थितियों को रेणु ने सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी है। बाढ़ के समय जो जल जीवन के लिए बोझ बन जाता है, वही कभी सूखे की स्थिति में धन के समान सहारा होता है। ये रिपोर्ताज घटना या दृश्यों के विधान ही नहीं हैं, जीवन मूल्यों और रचनात्मक निष्ठा के कारण साहितय की अमूल्य याती हैं।

'नेपाली क्रांति कथा' में संग्रहीत सातों रिपोर्ताज साप्ताहिक 'दिनमान' में समय–समय पर प्रकाशित हुए हैं। ये रिपोर्ताज नेपाली कांग्रेस के सशस्त्र आंदोलन से संबंधित हैं। रेणु इस क्रांति में स्वयं भी सम्मिलित हुए थे। रेणु इस क्रांति के अग्रदूत थे। नेपाल के राणाशाही के अत्याचार, शोषण और दमन के विरोध में नेपाली जनता के यथातथ्य सशस्त्र संग्राम का आँखों देखा विवरण रेणु ने अविश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत किया है। इन रिपोर्ताजों में लेखक के अनुभव की प्रामाणिकता है।

'श्रुत अश्रुत पूर्व' रेणु का महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह है जिसकी लगभग सभी रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इसलिए ये श्रुत हैं। पूर्व अश्रुत को श्रुत करने के लिए यहाँ इन्हें पुनः प्रकाशित किया गया। इस संग्रह ही अधिकांश रचनाओं में रेणु का संबंध पात्रों एवं घटनाओं के साथ इतना गहरा है कि कई बार विधागत भ्रम उत्पन्न हो जाता है। अंतर करना मुश्किल हो जाता है। रेणु की संवेदना अपने परिवेश और पात्रों में इतनी गहरी पैठ रखती है कि एक–दूसरे की अनुपस्थिति में कोई निश्चित व्यक्तित्व आकार नहीं ले सकता। यही कारण है कि रेणु के जीवन से जुड़े अनेक पक्ष जो अनदेखे–अनजाने हैं, उनके रिपोर्ताजों, संस्मरणों एवं निबंधों के माध्यम से खुलते हैं। इस कृत के ठीक नीचे 'व्यक्तिगत निबंध, संस्मरण एवं रिपोर्ताज' उल्लिखित हैं।

'बन–तुलसी की गंध' संकलन में 'मन के पर्दे पर' और 'स्टिल लाइफ' पठनीय रिपोर्ताज हैं। अस्पताल की जिंदगी पर रचा गया रिपोर्ताज 'स्टिल लाइफ' अपनी कथात्मक रोचकता और अनुभव की यथार्थता के आधार पर एक महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें अस्पताल की चीख–पुकार एवं चौदह माह के मार्मिक एवं यथार्थ अनुभव को पिरोया गया है।

विधागत प्रयोग रेणु की रचना कुशलता है। अनेक विधाओं को मिश्रित कर नई विधा की बुनियाद रखना रेणु का स्वभाव रहा है। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' ऐसे ही प्रयोगों के परिणाम हैं। इस संदर्भ में अली मुहम्मद का कथन उचित ही जान पड़ता है।–

''रिपोर्ताज के क्षेत्र में किए गए रेणु के प्रयोग सिद्ध करते हैं कि उनका समूचा साहित्य, ऐसा साहित्य है जिसे किसी एक प्रकार के खाने में नहीं डाला जा सकता है। वे चाहे कोई भी साहित्य शैली अपनाते हों, कोई भी विधा लिखते हों, पर उसके प्रचलित कटघरे में बंधकर नहीं। वे उसे संवेदना और शिल्प के नए स्तरों पर ऐसी निजता प्रदान करते हैं कि उसके मूल्यांकन के लिए कुछ नए आधारों की तलाश करनी पड़ती है। यही कारण है कि उनके रिपोर्ताज भी किसी प्रचलित पद्धति में नहीं बंधे हैं।''[42]

रेणु मानवीय भावनाओं के अप्रतिम चित्रकार हैं। उनका रचनाकार मन उन सामाजिक राजनीतिक और प्राकृतिक त्रासदियों को अनदेखा नहीं करता जो किसी

भी भावना लोक को प्रभावित करती हैं। एक योद्धा रचनाकार के नाते रेणु ने स्वयं ऐसी त्रासदियों का सामना किया था। यही कारण है कि उनके अनेक कथा–रिपोर्ताज जिन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को भी समृद्ध किया, विभिन्न त्रासद स्थितियों का अत्यंत रचनात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

विवेकी राय

विवेकी राय गँवई मन के रिपोर्ताज लेखक हैं जिनकी रचनाओं में गाँव और उसकी संस्कृति बड़ी गहराई के साथ अभिव्यक्त हुई है। इनके रिपोर्ताजों में लालित्य का पुट मिलता है। रिपोर्ताज साहित्य को श्री राय ने अपने रचना कौशल से नया आयाम दिया है। 1977 में प्रकाशित 'जुलूस रुका है' कृति में 22 रचनाएँ संकलित हैं जिसमें लगभग सभी रिपोर्ताज हैं और जो नही हैं वे रिपोर्ताज शैली में रचित हैं। 'आसमान में जलबंदी', 'एक ग्रामायण सात कांड', 'सावधान गाँवों में शहर आ पहुँचा', 'संतों धोखा कासो कहिए', 'प्रलय का पानी', 'बाढ़! बाढ़!! बाढ़!!!'– बाढ़ की समस्या' आदि प्रमुख रिपोर्ताज हैं। इन रिपोर्ताजों में देश में व्याप्त घूसखोरी, अधिकारी–कर्मचारियों द्वारा लूटी जा रही अबोध जनता का सशक्त एवं सजीव चित्रण तो है ही, साथ ही साथ बदलती समसामयिकता की पहचान को भी असरदार शिल्प में बाँधा गया है। इस संग्रह की अधिकांश रचनाएँ 'धर्मयुग', 'कादम्बिनी', 'ज्ञानोदय' और 'आज' में प्रकाशित हो चुकी है।

आज पत्र में सन् 1958 से एक स्थाई साप्ताहिक स्तंभ 'मनबोध की डायरी' प्रारंभ किया गया था जिसमें श्री राय रिपोर्ताज तथा अन्य नवीन विधाएँ लिखते थे। अचानक पत्र बंद हो जाने के कारण जो रचनाएँ इस स्तंभ से प्रकाशित होती थी उन्हीं को 'मनबोध की डायरी' संकलन में संकलित कर दिया गया। इन रचनाओं में अध्यापक जीवन के अनुभवों को प्रमुखता मिली है।

लक्ष्मीनारायण लाल

लक्ष्मीनारायण लाल रिपोर्ताज परंपरा के अच्छे लेखक हैं जिनके लेखन में स्थान–स्थान पर नाटकीयता परिलक्षित होती है। इनकी कृति 'आधी रात से सुबह तक' सन् 1977 में प्रकाशित हुई थी। इस कृति में तानाशाही से लोकतांत्रिक चेतना की ओर अग्रसर मूल्यों को समाहित किया गया है। यह रिपोर्ताज संग्रह आपातकाल की पृष्ठभूमि पर रची गई है जिसमें आपातकाल के मार्मिक चित्रण के साथ–साथ

सहमी, झुकी जनता की मूक पीड़ा को व्यक्त किया गया है। जनता तथा विपक्ष के संघर्ष को व्यक्त करने वाली यह कृति रिपोर्ताज साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचना है। श्री लाल की यह रचना जनता की अव्यक्त पीड़ा को मुखरित करने वाली, आपातकाल पर लिखी इस परंपरा की पहली महत्त्वपूर्ण कड़ी है। 'आधी रात से सुबह तक' की भूमिका में श्री लाल लिखते हैं' कि– ''यह मैंने देखा है। यह मैंने नहीं लिखा, किन्हीं अज्ञात हाथों ने मुझसे लिखवाया। यह मैंने भोगा है। यह मैंने कल्पना से नहीं केवल सच्चाइयों से लिखा है। केवल सच्चाइयों से सच्चाई को लिखना कितना विकट कार्य है, पहली बार अनुभूत हुआ।''[43]

मणि मधुकर

रिपोर्ताज विधा में लालित्य का समावेश करने वाले मणि मधुकर प्रयोगधर्मी रिपोर्ताजकार हैं। मणिमधुकर मूलतः कुबेरनाथ राय एवं विवेकी राय की परंपरा के रिपोर्ताज लेखक हैं जिनकी रचनाओं में रेगिस्तान के जनजीवन की व्यथा–कथा अभिव्यक्त हुई है। राजस्थान में सूखे की समस्या सर्वविदित है, धीरे–धीरे यह रेगिस्तान में बदलता जा रहा है। इसी समस्या पर आधारित मणि मधुकर के दो रिपोर्ताज संग्रह 'पिछला पहाड़' और 'सूखे सरोवर का भूगोल' क्रमशः 1979 एवं 1981 में प्रकाशित हुए। मरुभूमि के जीवन संघर्ष और उसकी छायाओं को लेखक ने जिस मानवीय संवेदना का स्पर्श देकर संजोया है, वह पाठकों को न सिर्फ उद्विग्न और आंदोलित करता है बल्कि एक सघन सोच को जन्म देता है।

'सूखे सरोवर का भूगोल' रिपोर्ताज संग्रह में संकलित 'सूखे सरोवर का भूगोल', 'न देस न बाड़ी', 'भूख का अंधेरा', 'शेष सन्नाटा', 'पानी सिर्फ, आँखों में है', 'होठों में पीवणा का जहर', 'वर्तमान में अतीत का जागरण', 'बैराठ, बाणगंगा और अज्ञातवास', 'आदिम ताल में डूबे हुए रात दिन', 'हल्दी घाटी की गुफाओं में' आदि सभी रचनाएँ रेगिस्तान और उसके जीवन की अंतरंग आवाजों से जुडे हुए महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं। इन रिपोर्ताजों में राजस्थान की अंतरंग संस्कृति को 'गाड़िए लोहारों' के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है।

इन रिपोर्ताज संग्रहों के अतिरिक्त मणि मधुकर के रिपोर्ताज पत्र–पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए हैं। सारिका में प्रकाशित 'एक जहन्नुम में जख्मों का प्रश्न', 'पानी और राजधानी : दिल्ली और दरिया का अंधेरा', 'तितलियों के घर और जलते

हुए पहाड़' इनके महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं। मणि मधुकर नसों के सारे रक्त को निचोड़कर कुछ शब्दों के हवाले कर देने वाले रिपोर्ताज लेखक हैं।

शिवसागर मिश्र

सन् 1965 के भारत–पाक के युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया शिवसागर मिश्र का महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह है– 'वे लड़ेंगे हजार साल'। इस रिपोर्ताज संग्रह में भारत के उन रणबाँकुरों की विजयगाथा है जिन्होंने पाकिस्तान की सेना से लोहा लेकर उसके नेताओं के हजार साल तक लड़ते रहने के इरादे को मात्र 22 दिनों में ही चकनाचूर कर दिया था।

ललित शुक्ल

ललित शुक्ल के दो महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज संग्रह हैं– 'सोजालोबो' एवं 'पार्वती के कंगन' जो क्रमशः 1981 एवं 1991 में प्रकाशित हुए। 'सोजालोबो' रिपोर्ताज संग्रह में लेखक ने अपनी यात्रा के मार्ग, दर्शनीय स्थलों, समाज के जीवन और प्रकृति–सौंदर्य के हृदयस्पर्शी बिन्दुओं को मिलाया है। 'पार्वती के कंगन' संकलन में ललित शुक्ल ने जीवन की उन विरल–सघन छवियों और रम्य स्थितियों से पाठकों का परिचय करवाया है जहां अन्य विधाएँ नहीं पहुँच पाती हैं। ललित शुक्ल ने यात्रा–भ्रमण और प्रवास पर लिखे रिपोर्ताजों की परंपरा में अंतर्देशीय भ्रमण के अनुभवों पर रिपोर्ताज लिखे और यायावरी रिपोर्ताज की परंपरा में प्रभाकर माचवे, श्रीकांत वर्मा, अमृतलाल नागर, निर्मल वर्मा आदि के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। इनके रिपोर्ताजों में केवल यात्रा–वृत्तांत तथा दृश्य दर्शन भर नहीं है, बल्कि विचारों की ऊर्जास्विता, देशकाल एवं प्रकृति परिवेश सुविस्तृत परिप्रेक्ष्य में उज्ज्वल चेतना की भाँति चटक दिखाई देती है। ये रिपोर्ताज उन गवाक्षों की भाँति हैं जिनसे हम जीवन्त देश–दुनिया की बहुरंगी तस्वीर देख सकते हें। इनके रिपोर्ताज कविता की तरह मर्म को भी छूते हैं और ज्ञान के नए दरवाजे भी खोलते हैं। इनके रिपोर्ताज कहानी की रोचकता, रेखाचित्रों की चित्रात्मकता और निबंधों के लालित्य से परिपूर्ण हैं। ललित शुक्ल की रचनाओं में अतीत और वर्तमान को एक साथ रखकर, अतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान का और वर्तमान की पृष्ठभूमि में अतीत का चित्रांकन एवं मूल्यांकन मिलता है। 'पार्वती के कंगन' में शीर्षक 'निवेदन' में ललित शुक्ल लिखते हैं– ''इन रचनाओं की दुनिया को बहुत समीप से मैंने देखा है दृश्यों को पहचाना,

परखा और जिया है। प्रामाणिकता के लिए इससे अधिक सबूत मैं क्या दूँ? यह संसार मेरा अपना ही नहीं, आपका भी है।''[44]

भीमसेन त्यागी

भीमसेन त्यागी, रिपोर्ताज परंपरा के सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनकी महत्त्वपूर्ण कृति 'आदमी से आदमी तक' सन् 1982 में प्रकाशित हुई। इनके रिपोर्ताजों की विशिष्टता यह है कि यह किसी महत्त्वपूर्ण घटना पर आधारित न होकर रोजमर्रा के जीवन में आस–पाास बिखरी सामान्य घटनाओं की कलात्मक प्रस्तुति हैं। इन रिपोर्ताजों में लेखक ने दिल्ली महानगरी में जीवन–यापन करने आये मध्यम वर्ग और निम्नवर्ग के लोगों के जीवन के उन पहलुओं को छुआ है जो परदे के अंदर है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी भटकने वाले गाड़िए लुहारों, पुरानी परंपरा का सलीब ढोती एवं नए फैशन के पीछे भागने वाली चांदनी चौक व कटरा की जिन्दगी, मौत के साए में तड़पती–सिसकती अस्पतालों की जिंदगी, राजधानी में आने और यहाँ से बीमार होकर विदा होकर पहिए से बँधी जिन्दगी, अपना घर दूर छोड़कर राजधानी में दूसरों के घर बनाने वाली जिन्दगी और न जाने ऐसी तमाम बेसहारा जिन्दगियों के खाद से लहलहाती चकाचौंध भरी जिन्दगियों को अपने रिपोर्ताज संग्रह 'आदमी से आदमी तक' का विषय बनाया। वास्तव में लेखक की ये यात्राएँ देशकाल और शहर की यात्रा नहीं है। यह तो आदमी से आदमी तक की यात्रा है। लेखक ने उन तमाम लोगों के जीवन के खुरदरे यथार्थ को बिना लागलपेट के प्रस्तुत किया है जिनकी जिन्दगी जानवरों से भी बदतर थी। श्री त्यागी ने इस पुस्तक में अपनी सूक्ष्म निरीक्षण का शक्ति परिचय देते हुए जीवन की रोजाना घटित होने वाली अति सामान्य घटनाओं को जिस रूप में देखा और प्रस्तुत किया है, उन्हें महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज लेखक बना देती है। अली मुहम्मद ने ठीक ही कहा है– ''महानगरीय सभ्यता की पर्तें खोलने वाली इस परंपरा की यह संभवतः पहली रचना है जो विविध आयाम लिए हुए है। इन रचनाओं ने रिपोर्ताज विधा के जीवन–मूल्य वाले तत्व को अधिक छुआ है।''[45]

स्वतंत्रता–पश्चात् जिन रिपोर्ताज लेखकों ने अपनी लेखनी से रिपोर्ताज विधा को समृद्ध किया उनमें से महत्त्वपूर्ण लेखकों के साहित्य का विश्लेषण किया गया। संभव है, अन्यान्य लेखकों ने भी अपनी लेखनी चलाई होगी, उत्कृष्ट साहित्य–सृजन

भी किया होगा पर उनका साहित्य विवेचन–विश्लेषण के क्रम में अप्राप्य था और मेरे शोध–सीमा से बाहर भी। अतः छूट गए रिपोर्ताजकारों के साहित्य की प्राप्ति एवं विवेचन–विश्लेषण के मोह में न पड़कर प्राप्त साहित्य एवं शोध के दायरे में शामिल कृतियों के विश्लेषण को ही अपने शोध का ध्येय बनाया है।

रिपोर्ताज पहले–पहल पत्र–पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए। बाद में रिपोर्ताजकारों ने उन्हें अपने संग्रहों में संकलित किया। रिपोर्ताज विधा के विकास में पत्र–पत्रिकाओं का योगदान सर्वसम्मत से प्रमाणित हो चुका है। ढेरों ऐसे रिपोर्ताज पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए एवं अपने कथ्य एवं उद्देश्य से मार्के के रिपोर्ताजों में शामिल हैं। स्वतंत्रता पश्चात जिन पत्र–पत्रिकाओं ने रिपोर्ताज विधा को समृद्ध किया, उनका विवरण किया जाना अनिवार्य है।

हंस

रिपोर्ताज विधा को पल्लवित और पुष्पित करने में 'हंस' ने अग्रणी भूमिका निभाई है। 1948 में फतेगढ़ के सेन्ट्रल जेल में भूख–हड़ताल कर रहे कैदियों पर निर्ममतापूर्वक बरसाए गए लाठियों की घटना पर 'नजरबंदियों की जान के साथ खिलवाड़' नामक रिपोर्ताज एक मार्के का रिपोर्ताज है। रामजींदर कृत 'पनचक्की', कृष्णचंद्र की संस्मरणात्मक रचना 'वह मुस्कुराहट जो कभी मर नहीं सकती' हंस में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं। हंस पत्रिका में 'अनुदित–रिपोर्ताज परंपरा समृद्ध है जिसमें सन् 1948 से 1952 तक की प्रसिद्ध पाश्चात्य रिपोर्ताज का प्रकाशन हुआ। साहित्यिक रूप से महत्त्वपूर्ण अन्यान्य रिपोर्ताज भी 'हंस' की धरोहर हैं।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' हिन्दी साहित्यिक पत्रिकाओं में महत्त्वपूर्ण है जिसका प्रकाशन हिन्दुस्तान टाइम्स लि. दिल्ली से हुआ। ज्ञान–विज्ञान विषयक समसामयिक उपयोगी सामग्री प्रकाशित करने में इस पत्रिका ने अग्रणी भूमिका निभाई। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' का प्रकाशन सन् 1950 में प्रारंभ हुआ और इसके प्रथम संपादक मुकुट बिहारी वर्मा थे। 3 वर्ष पश्चात् इसके संपादन का कार्यभार बाँके बिहारी भटनागर को सौंपा गया जो अगले 15 वर्ष तक चलता रहा। इन्होंने इस पत्रिका को काफी लोकप्रिय बनाया। अनेक कवियों और साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उच्च कोटि के विशेषांक भी निकाले गए। रामानंद दोषी, मनोहरश्याम

जोशी, शीला झुनझुनवाला तथा राजेन्द्र अवस्थी इसके संपादक रहे। दुर्भाग्यवश अब यह पत्रिका बंद हो चुकी है।

जगदीश्वर प्रसाद चतुर्वेदी–कृत 'चीनियों द्वारा निर्मित काठमाण्डू–ल्हासा सड़कें', सतीश जायसवाल कृत 'बिलासपुर कस्बे की कहानी कितनी जानी–कितनी पहचानी', वेश्या जीवन को अपनाने वालों के कारणों को उजागर करता राजेन्द्र राव कृत 'हाट बाजार' सन् 1968 और 1973 के बीच प्रकाशित इस साप्ताहिक पत्र के महत्त्वपूर्ण निबंध हैं।

राजनीतिक निबंध भी साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुए। ईरान की दुर्दशा पर नासिरा शर्मा कृत 'आज का ईरान : तेल की घाटी में रक्त की धारा' महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज है। राजनीतिक 'अव्यवस्था में रचित रिपोर्ताज 'नदी का गुम होता पाट एवं किनारे का एक गाँव' एक मार्के का रिपोर्ताज है। स्वतंत्र भारत की जिन्दगी परतंत्र भारत जैसी ही है। समाज में परिवर्तन की गति लगभग शून्य है। इन्हीं विषयों पर रचित हिमांशु जोशी के दो रिपोर्ताज 'पैबन्दों की राजनीति' एवं 'महाराष्ट्र के दंगे : प्रश्न भरी चुनौतियाँ और भी हैं' महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं।

राजनीति और धर्म का आपसी समन्वय, राजनीति, धर्म एवं जीवन को पतित कर देता है। सांप्रदायिक दंगों का दंश देश को भी अस्थिर कर देता है। श्रुति शुक्ला कृत 'भागलपुर : सांप्रदायिक दंगे या अपराधी गुटों की टक्कर', संजय झा कृत 'मधेपुरा कांड', जगमोहन माथुर कृत 'इराक–आँखों देखा' शीर्षक रिपोर्ताज साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित अच्छी रचनाएँ हैं।

धर्मयुग

स्वतंत्रता के बाद विकसित रिपोर्ताज परंपरा में धर्मयुग का स्थान महत्व का है। इसमें प्रकाशित होने वाले रिपोर्ताज सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं मानवजनित समस्याओं पर आधारित हैं। जिनमें ओमप्रकाश शर्मा कृत 'गरजते सागर के समक्ष निहत्थे', अशोक ओझा कृत 'मुझे रोशनी चाहिए माँ' द्रोण वीर कोहली कृत दिल्ली की हवालात जहाँ कभी हिनहिनाते थे घोड़े अब खनखनाती हैं शाही मेहमानों की हड्डियाँ', भोपाल गैस त्रासदी पर आधारित शशांक कृत 'उस हवा के दंश' एवं शरद जोशी कृत 'भोपाल गैस : नरमेध का दर्दनाक हाल' आदि महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं। अयोध्या की बाबरी मस्जिद तोड़ने की पृष्ठभूमि में घटी

दर्दनाक घटनाओं पर अ. कु. श्रीवास्तव ने 'अयोध्या में उस रोज बहुत कुछ टूटा' शीर्षक रिपोर्ताज लिखकर इस परंपरा को समृद्ध किया।

सारिका

पाक्षिक पत्रिका में भी महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। नासिरा शर्मा कृत 'पानी से भरे बादल और सुलगते हुए पाइप', प्रेम कुमार कृत सुलगता अलीगढ़ : उठो, देव जाग गए हैं', ईश्वरचंद्र कृत 'काला आसमान– पर की राजनीति और मेरा शहर अजमेर', अवध नारायण मुद्‌गल कृत दास्तान दीक्षित पंडित– रामदयाल चमार की', मुद्राराक्षस कृत 'लखनऊ एक अजनबी शहर' आदि महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज सारिका में प्रकाशित हुए।

दिनमान

जवाहर लाल कृत 'राजधानी के एक बस्ती का चेहरा, सिमटते हुए लोग', नीलू दामले कृत 'हत्या का दिन : खुशी का दिन' एवं के विक्रमराव कृत 'कवियों की पिटाई' आदि दिनमान में प्रकाशित होने वाले महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि पत्र–पत्रिकाओं में रिपोर्ताज विधा सुरक्षित है। पत्रकारिता युगीन जीवन मूल्यों एवं जीवन धर्म का वाहक होती है। अतः जीवन की समस्याओं को इसके माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। हंस, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, सारिका, दिनमान आदि पत्रिकाओं ने इस विधा के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ सूची :

[1] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 42
[2] वही, पृ. 34
[3] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 1
[4] वही, पृ. 95
[5] हिन्दी साहित्य कोश– प्रथम खंड, पृ. 650
[6] दस दिन जब दुनिया हिल उठी : जॉन रीड, पृ. 17
[7] वही, रूसी संस्करण की भूमिका, पृ. 12
[8] वही, पृ. 21
[9] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 97
[10] वही, पृ. 98–99
[11] क्षणबोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', भूमिका, पृ. 7
[12] छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. 19
[13] हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 167
[14] हिन्दी का संस्मरण साहित्य : कामेश्वर शरण सहाय, पृ. 45
[15] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 103
[16] हिन्दी साहित्य कोश (भाग–3), पृ. 348
[17] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 42
[18] द्विवेदी युग : गद्य साहित्य– पं. माधव प्रसाद मिश्र का योगदान : मुरारी लाल गोयल 'शापित', पृ. 77
[19] वही, पृ. 96
[20] हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 39
[21] हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ : डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, पृ. 39
[22] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. VIII
[23] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 57
[24] गद्य की नई दिशाएँ : डॉ. ओम प्रकाश सिंहल, पृ. 75
[25] क्षणबोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 8
[26] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 107
[27] क्षणबोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 9
[28] वही, पृ. 8
[29] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 108
[30] कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर–व्यक्ति और साहित्य : सं. सुरेश चंद्र त्यागी, पृ. 183
[31] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 111
[32] रांगेय राघव का रचना संसार–गोविन्द रजनीश, पृ. 153
[33] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 45
[34] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन–अली मुहम्मद, पृ. 123
[35] प्रतिष्ठान : आमुख–शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ. 1
[36] हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल (नव्यतर गद्य विधाएँ)– प्रो. हरिमोहन, पृ. 167
[37] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 132
[38] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 61
[39] क्षणबोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 13
[40] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 57
[41] हर बारिश में : निर्मल वर्मा, पृ. आवरण
[42] हिन्दी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 149
[43] आधी रात से सुबह तक : लक्ष्मीनारायण लाल– शीर्षक 'स्वीकार', पृ. 7

[44] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, पृ. 7
[45] हिन्दी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 156

अध्याय – तीन

हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य का कथ्य विश्लेषण

3.1 प्राकृतिक आपदाएँ

3.2 मानवजनित समस्याएँ

3.3 यांत्रिक दुर्घटनाएँ

3.4 साहित्यिक समस्याएँ

3.5 ऐतिहासिक तथ्य

साहित्य का विषय असीमित होता है। लोक जीवन, समाज, राजनीति, संस्कृति एवं अन्य तमाम विषयों से गुंफित साहित्य अपनी पूर्णता प्राप्त करता है फिर भी अभिव्यक्ति नए आयामों की मुखापेक्षी होती है। हिन्दी रिपोर्ताज भी उन नवीन विधाओं में से एक है जो साहित्य के दायरे को समृद्ध ही नहीं करता, नए–नए विषयों के प्रयोग को गति प्रदान करता है और नई दिशा निर्धारित करता है।

रिपोर्ताज विधा का सीधा संबंध उन विषयों से जुड़ता है जिन्हें साहित्य और जीवन में भेद करके नहीं देखा जा सकता। तात्पर्य यह है कि जितने भी विषय जीवन से जुड़े हैं, समाज एवं संस्कृति के हैं, उन सबसे रिपोर्ताज न सिर्फ टकराता है, उन्हें आत्मसात कर साहित्य के मायने को अलग ढंग से परिभाषित भी करता है। चूंकि रिपोर्ताज यथार्थता, समसामयिकता, समाचार संप्रेषणीयता एवं मानवीय मूल्यों जैसे तत्त्वों से युक्त होता है, इसलिए इसका उत्तरदायित्व भी अन्य विधाओं की अपेक्षा गंभीर है। रिपोर्ताज युग–चेतना, युग–संघर्ष एवं असाधारण स्थितियों को साहित्यिक अभिव्यक्ति देता है। हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य उक्त विशेषताओं से गहरे संपृक्त है।

यद्यपि हिन्दी रिपोर्ताज का जन्म अभिव्यक्ति के प्रस्फुटन का परिणाम है अतएव विषय–वैविध्य इस विधा की अप्रतिम विशिष्टता है। जैसे–जैसे ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, समाज, राजनीति, संस्कृति का विकास होता गया, वैसे–वैसे हिन्दी रिपोर्ताज इस विविधता से उतरोत्तर समृद्ध होता गया। सभ्यता के जितने भी आयाम विकसित हुए हैं वे हिन्दी रिपोर्ताज के विषय से अछूते नहीं हैं। रिपोर्ताजकारों ने अपनी पैनी दृष्टि एवं सूक्ष्म–विश्लेषणात्मकता अनुभूति से हिन्दी रिपोर्ताज को जनता का प्रतिनिधि साहित्यिक विधा बना दिया है।

रिपोर्ताज विधा रिपोर्ट से संबंधित होती है और रिपोर्ट पत्रकारिता का शब्द है। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय पत्रकारिता का उद्देश्य राष्ट्र निर्माण एवं ऐसे अनेक आंदोलनों को गति देना था जो देश को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराते। हिन्दी रिपोर्ताज ने भी भारतीय पत्रकारिता की भांति राष्ट्र निर्माण और स्वतंत्रता आंदोलनों को अपना विषय बनाया है। इन राजनीतिक आंदोलनों के अतिरिक्त अन्य विषयों से हिन्दी रिपोर्ताज विमुख न था। समसामयिक समस्याओं एवं तत्कालीन विषयों की

अभिव्यक्ति रिपोर्ताज विधा में होने लगी थी पर राष्ट्र–निर्माण एवं स्वतंत्रता आंदोलन हिन्दी रिपोर्ताज के केन्द्रीय विषय थे। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज एवं राजनीति की दशा और दिशा दोनों में महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए। जिन मूल्यों की स्थापना के लिए भारतीय जनमानस आंदोलनरत था बाद में वे ही विकृतियां समाज में गहरे जमने लगीं। रिपोर्ताजकार भी इस अनचाहे परिवर्तन से अपरिचित न था। अली मुहम्मद लिखते हैं ''अनुभूतियां जीवन से और जीवन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। संवेदना और आत्मसत्य से साहित्य का घनिष्ठ संबंध होता है। जब ये लेखक के अंतःजगत को जगा देते हैं तब रिपोर्ताज का विषय बनते हैं। इसी तथ्य जगत के बीच जीता हुआ रिपोर्ताज लेखक सहानुभूत्यात्मक संबंध बनाता चलता है, जिससे नए विषयों की सृष्टि होती है। यही कारण है कि हिन्दी रिपोर्ताज के अनुभूतिगत विषयों में स्वतंत्रता के बाद बदलाव आया है। स्वतंत्रता पूर्व राजनीति, देश, धर्म, आर्थिक शोषण, नैतिक जागरण जैसे विषय महत्त्वपूर्ण होते थे। इनकी जड़ें समाजवाद से खाद–पानी लेती थीं और भारतीय नव जागरण, स्वतंत्रता आंदोलन और प्रगतिवादी आंदोलन की अपनी ही भूमि में आरोपित थीं। यह बात अलग है कि वे विदेशी साम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद के विरोध में विस्तार पा रही थीं। स्वतंत्रता के बाद देशप्रेम की लहर मंद पड़ गयी। देश–धर्म लुप्त हो स्वधर्म बन गया। देशी पूंजीवाद और मजबूत हुआ। पाश्चात्य चकाचौंध बढ़ी और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ। सांप्रदायिकता, गरीबी, बेरोजगारी, क्षेत्रवाद, आतंकवाद, भाई–भतीजावाद ने भी स्वतंत्रता के बाद इस देश का दामन मजबूती से थाम लिया।''[1]

रिपोर्ताज लेखक जिन अनुभूतियों को प्रत्यक्ष हृदयंगम करता है, जीवन की जिन समस्याओं का परिचय प्राप्त करता है उन्हें ही अनुभूतिजन्य सत्य बनाकर अपने साहित्य में निरुपित करता है। अतः उसके साहित्य का क्षेत्र संपूर्ण जीवन जगत एवं प्रकृति तक फैला हुआ है। अतः लेखकीय अनुभूतिजन्य अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य का वर्गीकरण किया जा सकता है।

3.1 प्राकृतिक आपदाएँ

आपदा ऐसा संकट है जो समाज की क्षमता से परे हो जाता है। ऐसे संकट को समाज संभाल नहीं पाता या उसका सामना नहीं कर पाता। 'आपदा' के तुल्यार्थ अंग्रेजी में Disaster शब्द है। Hazard, Catastrophe तथा Risk इसके अन्य समानार्थी शब्द हैं। हिन्दी में भी 'आपदा' के अन्य समानार्थी शब्द 'विपदा', 'विपत्तियाँ', 'प्रकोप', 'खतरा', 'प्रलय' प्रयुक्त होते हैं किन्तु इन शब्दों का प्रयोग जान–माल की संभाव्य क्षतियों, खतरों के मूल्यांकन तथा प्रबंधन और खतरे की न्यूनतम स्वीकार्यता के अनुसार ही सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिए। हम अंग्रेजी Disaster के लिए 'आपदा' शब्द ही प्रयोग करेंगे। आपदा एक असामान्य घटना है जो सीमित अवधि के लिए आती है। अथवा वह प्राकृतिक घटना है जो देश की अर्थव्यवस्था को बुरी तरह छिन्न–भिन्न कर देती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ''कोई घटना जिससे क्षति, पारिस्थितिक विशृंखलन, मनुष्यों की मृत्यु, स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सेवाओं में इतने बड़े पैमाने पर ह्रास हो, जिससे प्रभावित समुदाय को कोई बाह्य असामान्य हस्तक्षेप करना पड़ जाए तो वह प्राकृतिक आपदा है।''[2]

विश्व जलवायु संगठन के अनुसार– ''प्राकृतिक घटनाओं का प्रलयकारी परिणाम या ऐसी घटनाओं का सम्मिलन, जिससे चोट, जीवन–हानियां या मानव कार्यकलापों का बड़े पैमाने पर उच्छेदन हो, प्राकृतिक आपदा है।''[3]

मिसाइलिस आर. एंथोनी के अनुसर, ''यदि किसी घटना में एक हजार से दस लाख तक लोग हताहत हों या उनका जीवन खतरे में हो तो वह घटना प्राकृतिक आपदा कहलाती है।''[4]

प्राकृतिक आपदाओं के अंतर्गत ज्वालामुखी उद्‌गार, भूकंप, विनाशकारी लहरें अर्थात् सुनामी, बाढ़, सूखा आदि आते हैं जिनसे सामान्य जीवन असामान्य हो जाता है। भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के विशेष कार्याधिकारी डॉ. शिवगोपाल मिश्र लिखते हैं – ''आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व जायस (उत्तर प्रदेश) निवासी अवधी के सिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने

भूकंप का जो वर्णन किया है, वह अत्यंत हृदयग्राही है। इसमें धरती के साथ आकाश के घूमने और पर्वतों के गिरने का सजीव चित्रण हुआ है।

भा औतार मोर नौ नदी। तीस बरिख ऊपर कबि बदी।

आवत उधत चार बड़ ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना।।?

धरती दीन्ह चक्र विधि भाईं। फिरै अकास रहट की नाईं।।

गिरि पहार मेदिनि तस हाला। जस चाला चलनी भल चाला।।

मिरित लोक जेहि रचा हिंडोला। सरग पताल पवन घट डोला।।

धरती छात फाटि भहरानी। पुनि भई मया जौ सिसी हठानी।।

जो अस खंभहि पाइकै सहस जीब गहिराइ।।

सो अस कीन्ह मुहम्मद तो अस बपुरे काइ।।''[5]

डॉ. मिश्र आगे लिखते हैं – ''जायसी का जन्म 900 हिजरी यानी सन् 1494 में हुआ। 6 जुलाई, 1505 में एक भूकंप आया था। बदायूनी ने इस भूकंप का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि समूचे हिन्दुस्तान में यह भूकंप आया। इससे पहाड़ियां हिलने लगीं, ऊंचे–ऊंचे मकान धूल में मिल गए, बहुत से स्थानों पर धरती फट गई। लोग समझते थे कि कयामत का दिन आ गया। अवश्य ही यह जायसी के बचपन का भूकंप था।''[6]

प्राकृतिक घटनाओं को विषय बनाकर लिखे गए रिपोर्ताज 'प्राकृतिक आपदाएं वर्ग में आते हैं। प्रकृति की भीषण विनाश लीलाएँ मनुष्य एवं मनुष्येतर जीवन को अस्त–व्यस्त कर नारकीय बना देती हैं। लेखक इन दैवीय–आपदाओं के प्रत्येक पहलू का परिचय अपने रिपोर्ताज के माध्यम से कराता है। रांगेय राघव, प्रकाश चंद्र गुप्त, फणीश्वर नाथ 'रेणु', मणि मधुकर विवेकी राय, रघुवीर सहाय, कुबेरनाथ राय, आदि प्रमुख रिपोर्ताज लेखक हैं जिन्होंने दैवीय–आपदाओं को विषय बनाकर रिपोर्ताजों की रचना की।

सन् 1942 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। बंगाल के इस अकाल की भीषणता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ''हर हफ्ते बंगाल में

एक लाख आदमी मरते हैं। आदमी और कुत्ते कूड़े के ढेर पर खाने की तलाश में एक साथ टूटते हैं। कुत्ता जीतता है, आदमी हारता है, क्योंकि उसके बदन में नाम की भी जान नहीं है। जीते आदमियों को स्यार गाँवों से घसीट ले जाते हैं और जीते जी खा डालते हैं।''[7] रिपोर्ताज लेखक रांगेय राघव बंगाल के इस दैवीय आपदा के प्रत्यक्षदर्शी थे। मेडिकल जत्थे के साथ अकाल पीड़ितों की सेवा–सुश्रुषा हेतु वे वहां गए थे। बंगाल के अकाल को मानवता के इतिहास का बड़ा कलंक बताते हुए रांगेय राघव लिखते हैं– ''बंगाल का अकाल मानवता के इतिहास का बहुत बड़ा कलंक है। शायद क्लियोपेट्रा भी धन के वैभव और साम्राज्य की लिप्सा में अपने गुलामों को इतना भीषण दुख नहीं दे सकी जितना आज एक साम्राज्य और अपने ही देश के पूंजीवाद ने बंगाल के करोड़ों आदमी, औरतों और बच्चों को भूखा मारकर दिया है। आगरे के सैकड़ों मनुष्यों ने दान नहीं अपना कर्त्तव्य समझकर एक मेडिकल जत्था बंगाल भेजा था। जनता के इन प्रतिनिधियों को बंगाल की जनता ने ही नहीं वरन मंत्रिमंडल के सदस्यों तक ने धन्यवाद दिया। किन्तु मैं जनता से स्फूर्ति पाकर यह सब लिख चुका हूँ। मैंने यह सब आंखों–देखा लिखा है।''[8]

कुष्टिया, नारायणगंज और चटगाँव आदि क्षेत्रों में रांगेय राघव ने मेडिकल जत्थे के साथ घूम–घूमकर जो देखा उसे अपनी रचनात्मक कौशल से जीवंत कर दिया। 'तूफानों के बीच' रिपोर्ताज संग्रह रांगेय राघव का आँखों–देखा लिखा' साहित्य भर नहीं है, अपितु अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा की और भी भयानक, अमानवीय बना देने वाली साम्राज्यवाद एवं देशी पूंजीवाद के गठजोड़ से उपजी त्रासदी का दस्तावेज है। 'बांध भंगे दाओं' रिपोर्ताज में रांगेय राघव लिखते हैं– ''मार्च 1942 में कुष्टिया में अन्न संकट प्रारंभ हुआ। अप्रैल में कीमत 12 से 20 रुपए हो गई और जून में तो पूरे 40 रुपए। तीन महीने तक यही हालत रही। बाजार में चिड़िया तक के लिए एक दाना चावल नहीं था। 90 फीसदी गाँव वाले और 'टाउन' में आधे से भी ज्यादा लोग अरहर, मसूर, और चने की दाल पर जिंदा थे। लोग घरों से बाहर आते डरते थे कि एक नहीं, दो नहीं, सड़कों पर अनेक भूखे दम तोड़ते होंगे और डरते थे घर जाते हुए जहाँ बच्चे, अपने बच्चे भूखे बैठे होंगे। माँ

बेटी को देखती थी, पति पत्नी को देखता था। पिता की आँखें डूबते हुए अरमानों–सी बच्चों से टकराकर तड़पकर भींग उठती थीं। किन्तु कहीं कोई राह न थी। घर खाली थे बाजार खाली थे। चारों ओर प्राणों की ममत्व दोनों हाथ उठाकर हाहाकार कर रही थी। लोग घरों में मरते थे। बाजार में मरते थे। राह में मरते थे। जैसे जीवन का अंतिम ध्येय मुट्ठी–भर अन्न के लिए तड़प–तड़प कर मर जाना ही था।''[9]

अकाल–पीड़ित जनता के सम्मुख नैतिक–अनैतिक, उचित–अनुचित का भेद समाप्त हो जाता है। अकाल 'महाभूख' को आमंत्रित करता है और यह 'महाभूख' उन समस्त सामाजिक–नैतिक–धार्मिक वर्जनाओं को खंडित करती है जिनकी वजह से कोई समाज 'सभ्य–समाज' बनता है। भूख जाति नहीं जानती, धर्म नहीं जानती। नैतिक–अनैतिक का विश्लेषण भी करना नहीं जानती। ज्ञानी–अज्ञानी का भेद भी मिटा देती है महाभूख, और अंत में इस महाभूख की परिणति मृत्यु है। 'एक रात' रिपोर्ताज में रांगेय राघव ने इसी सच को उजागर किया है जहाँ भूख से नतमस्तक मनुष्य के लिए खून और प्रेम के धरातल पर बने रिश्ते भी बेमानी हो जाते हैं। पति, भूख से बेबस पत्नी की हत्या कर देता है या उन्हें छोड़कर चला जाता है। रांगेय राघव लिखते हैं–

''और वह भूख जब माँ ने कहा, वह माँ नहीं थी, रंडी थी– हाँ, रुपया अन्न था क्योंकि अन्न रुपए के लिए था, खाने के लिए और टूक–टूक होते कलेजे के लिए सबसे अच्छी दवा, सबसे बड़ी सांत्वना थी– मौत!''[10]

अकालजन्य दारुण विभीषिका जनता को तोड़कर रख देती है, उन्हें आर्थिक रूप से कमजोर बनाकर साम्राज्यवाद एवं देशी पूंजीवाद के ब्यूह में अभिमन्यु की भाँति निहत्था बना देती है। जीवन जीने के सारे रास्ते बंद कर देती है। भूख से लोग इतने कमजोर पड़ जाते हैं कि जीवन बचाने का उपाय भी नहीं कर पाते। इनकी स्थिति शासक–वर्ग के उस दावे को खोखला प्रमाणित कर देती है जिसमें जनता की सेवा का दंभ भरा होता है। सब कुछ स्वाहा हो जाता है पर जीवन जीने की अदम्य जिजीविषा, मृत्यु से ऊपर प्रमाणित होती है। जीवन न बचे न सही, जीने की लालसा कभी न समाप्त होने वाले संघर्षों से अनुप्राणित रहती है। बंगाली

जनमानस की इसी अदम्य जिजीविषा को 'अदम्य जीवन' रिपोर्ताज में रांगेय राघव ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है– ''गर्व से मेरी छाती फूल उठी। कौन कहता है कि बंगाल मर गया है? जहाँ भूख और बीमारियों से लड़कर भी मनुष्यों के बालकों में क्रांति को चिरजीवी रखने का अपराजित साहस है, वह राष्ट्र कभी नहीं मर सकेगा। हड्डी–हड्डी से लड़ने वाले यह योद्धा जीवन की महान शक्ति को अभी तक अपने में जीवित रख सके हैं।''[11]

अकाल अपने आप में सर्वग्रासी प्राकृतिक आपदा है। अकाल के बाद महामारी का फैलना शेष को ग्रास बना लेने जैसा है। अगर अकाल प्राकृतिक उथल–पुथल है तो महामारी मानवीय भूल एवं अमानवीय कुकृत्यों का परिणाम! असेम्बली में बड़ी–बड़ी बहसें, समस्या से निपटने के बड़े–बड़े दावे, एक–दूसरे पर अविश्वास रखने वाले स्नेह–हीन पशु व्यवहार आदि सभी मिला कर स्थिति की भयानकता को और भी तीव्र बना देते हैं। बंगाल का अकाल ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण का प्रतीक बनकर उभरा। यह अकाल बहुत दिनों तक तो नहीं रहेगा किन्तु उसका दुष्प्रभाव एवं भयानक स्मृतियाँ इतिहास बनकर सभ्यता को कलंकित करती रहेंगी। 'बूचड़खाना' रिपोर्ताज में रागेय राघव लिखते हैं–

''वैभवशालिनी विशाल सड़कें, ट्राम, बस, विक्टोरिया और मोटर एक ओर और वैभव की गहरी छाया रिक्शा, दूसरी ओर बड़ी–बड़ी इमारतें, ऊँचे–ऊँचे महल और बगल में मैले टाट से ढके घिनौने घर। गंदी पकौड़ियाँ, मैले रसगुल्ले। काम, काम, काम.... तनख्वाह नहीं, पैसा नहीं, भूख–भूख.... अकाल के बिना आधी जान, अकाल में मौत..... अकाल के बाद रोग..... रोगो में तड़प और डस्टबिनों की भयंकर बदबू, दिमाग फाड़कर सड़ा देने वाली दुर्गंध।''[12]

सन् 1966 में बिहार में पड़े सूखे और 1975 में पटना में आई भीषण बाढ़ के अनुभवों को फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने रिपोर्ताज संग्रह 'ऋणजल–धनजल' में व्यक्त किया है। बाढ़ और सूखा–दोनों प्राकृतिक आपदाएँ हैं– सर्वग्रासी प्राकृतिक आपदाएँ। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की यह कृति– 'ऋणजल धनजल'– कई दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। पहली और मुख्य बात, कि बाढ़ और सूखे– दो अभूतपूर्व प्राकृतिक आपदाओं का यह ऐतिहासिक दस्तावेज है और दूसरा यह कि

यह सिर्फ वृत्तांत ही नहीं हैं अपितु 'आंखों–देखा लिखा' साहित्य है। रघुवीर सहाय लिखते हैं– ''रेणु ने अकाल जैसे सामाजिक अनुभव में बैठकर 1966 के पहले भी कुछ–न–कुछ लिखा था, किन्तु अवश्य ही निरी किताब बनाना उनका उद्देश्य न था। किसी ईमानदार लेखक के लिए किताब की संरचना भी उतनी ही सृजनात्मक होती है जितनी उसमें या अन्यत्र संकलित उसकी रचनाएं हैं और 'ऋणजल' और 'धनजल' को एक साथ रखने में निश्चय ही रेणु का कोई रचनात्मक प्रयोजन रहा होगा– निरा शब्द चमत्कार नहीं।''[13]

'ऋणजल–धनजल' में बाढ़ से संबंधित पाँच एवं सूखाजन्य अकाल से संबंधित छः रचनाएं हैं। 'बाढ़' जैसी प्राकृतिक आपदा संपूर्ण जीवन–जगत को अस्त–व्यस्त कर देती है। गाँव–देहात बाढ़ से प्लावित होते रहते हैं, पर पटना शहर में बाढ़ का आना सिर्फ एक प्राकृतिक आपदा का आना ही नहीं, प्रशासनिक व्यवस्था की पोल खोलने जैसा है। दुष्यंत कुमार के शब्दों में– **कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए, कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।** रेणु ने भी शहर और गाँव के फर्क को इस आपदा के संदर्भ में रूपायित किया है– ''इसी बीच एक अधेड़, मुस्टंड और गंवार जोर–जोर से बोल उठा–ईह! जब दानापुर डूब रहा था तो पटनियां बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए.... अब बूझो!

मैंने अपने आचार्य–कवि मित्र से कहा– ''पहचान लीजिए। यही है वह 'आम आदमी' जिसकी खोज हर साहित्यिक गोष्ठियों में होती रहती है। उसके वक्तव्य में 'दानापुर' के बदले उत्तर बिहार अथवा कोई भी बाढ़ग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र जोड़ दीजिए... ।''[14]

बाढ़ की विनाश लीला का वर्णन अनुभूतिजन्य सत्य का आग्रह है किन्तु बाढ़ को 'मृत्यु का तरल दूत' मानना रेणु जैसे रचनाकार के लिए ही संभव है। रेणु ऐसे रचनाकार हैं जो किसी भी चीज को त्याज्य और घृणास्पद नहीं मानते, वे हर जीवित तत्त्व में पवित्रता और सौंदर्य तथा चमत्कार खोज लेते हैं। रेणु ने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, मजबूरी और गरीबी को देखा था। यही कारण है कि प्राकृतिक आपदाओं एवं उसके प्रभाव में उनकी आत्मा एकाकार हो जाती है। बाढ़ उनके लिए मृत्यु का तरल दूत है। वे लिखते हैं–

''जब हम कॉफी हाउस के पास पहुंचे, कॉफी हाउस बंद कर दिया गया था। सड़क के किनारे एक मोटी डोर की शक्ल में गेरुआ–झाग–फेन में उलझा पानी तेजी से सरकता आ रहा था। मैंने कहा– ''आचार्य जी, आगे जाने की जरूरत नहीं। वह देखिए– आ रहा है.... मृत्यु का तरल दूत।

आतंक के मारे मेरे दोनों हाथ बरबस जुड़ गए और सभ्य प्रणाम निवेदन में मेरे मुंह से कुछ अस्फुट (हां, मैं बहुत कायर और डरपोक हूँ) शब्द निकले।''[15]

बाढ़ के बाद महामारी और लोगों के घोर स्वार्थ, बाढ़ की विभीषिका को और भी गहन कर देते हैं। राहत सामग्री 'लूटने' एवं न पाने का असंतोष लोगों को मानसिक बीमार बना देता है। आपदा के समय की प्राण रक्षा समस्या, ईर्ष्या और द्वेष का कारण बनती है। महामारी एवं अन्य छोटी–छोटी बीमारियाँ पहले से आतंकित लोगों को और भी परेशान करती हैं। पूरा शहर बीमार हो जाता है। स्वार्थी लोगों के स्वार्थ पूरे होते हैं। बाढ़ग्रस्त पटना शहर की असली तस्वीर रेणु ने अपने रिपोर्ताज 'कलाकारों की रिलीफ पार्टी' में उकेरा है। रेणु लिखते हैं– ''यो पटना शहर भी बीमार ही है। इसके एक बांह में हैजे की सुई का और दूसरी में टाइफायड के टीके का घाव हो गया है। पेट से 'टेप' करके जलोदर का पानी निकाला जा रहा है। आँखें जो कंजक्टिवाइटिस (जोय बांग्ला) से लाल हुई थी– तरह–तरह की नकली दवाओं के प्रयोग के कारण क्षीण ज्योति हो गई है। कान तो एकदम चौपट ही समझिए– हियररिंग एड से भी कोई फायदा नहीं। बस 'आइरन लंग्स' अर्थात् रिलीफ की सांस के भरोसे अस्पताल के बेड़ पर पड़ा हुआ किसी तरह 'हुक–हुक कर जी रहा है।''[16]

बाढ़ के साथ–साथ बिहार में 1966 में पड़े सूखे को रेणु ने अपने रिपोर्ताजों में पिरोकर नया आयाम दिया है। बाढ़ हो या सूखा, ये समस्याएँ अपने आप में भयानक तो हैं पर इन समस्याओं से निपटने का वाजिब कारण एवं उपाय न होने पर मानवीय संवेदना को शून्य भी बना देती हैं। अखबार में छपने वाला हर महत्त्वपूर्ण, गैर–महत्त्वपूर्ण समाचार एक समान प्रतीत होने लगते हैं। प्रशासनिक व्यवस्था के गहरे गैर–जिम्मेदाराना कर्त्तव्यों से उपजी यह त्रासदी जनता की नियति होती जा रही है। रेणु की व्यंग्य दृष्टि में सब कुछ फ्राड है। वे लिखते हैं– ''तुमने

कभी कोसी–कवलित जनों, अकाल–पीड़ितों और शरणार्थियों के दुख–दर्द को भोगकर जीती–जागती छवियाँ आँकी थी? क्या हो गया तुझे जो इस तरह 'बोतल प्रसाद' हो गया तू?''

इस सवाल के जवाब में मुझसे सवाल किया जाता है– कौन कहता है सूखा पड़ा है? सरकार? सोशलिस्ट (प्रजा–संयुक्त)? कम्युनिस्ट? कांग्रेसी? कौन बोलता है? कोई मिनिस्टर? कोई जनता का सेवक? आल फ्राड।''

किन्तु दूसरे ही दिन लेखकजी यानी 'बोतल प्रसाद' ने देखा कि सूखे के नाम पर राजधानी के 'बार' और सब्जी बाजार में सुरा से लेकर बैंगन तक की कीमतें अचानक बढ़ गई हैं तो उसका माथा ठनका, तब वह पटना की सड़कों पर 'ड्राउट' देखने निकला।''[17]

'सूखा' से बचने के लिए लोग अपना सारा सामान बेच देते हैं फिर भी उनकी प्राण रक्षा नहीं हो पाती। ऐसा नहीं है कि स्रोत की कमी के कारण यह त्रासदी भयावह हो जाती है, बल्कि शोषण का पर्याय बन चुकी सरकार एवं प्रशासनिक व्यवस्था इस त्रासदी के भयानक हो जाने के जिम्मेदार हैं। समाज में दो वर्ग मौजूद हैं– एक, जिसके पास प्राकृतिक आपदा में जीवन बचाने का कोई भी सामान नहीं है, दूसरा, ऐसी परिस्थिति में भी ठाट–बाट में कमी न करने वाला वर्ग। महत्त्वपूर्ण एवं आश्चर्यजनक बात यह नहीं है कि समाज असमानता के आधार पर बँटा है। आश्चर्य इस बात का है कि जीवन रक्षा के न्यूनतम सामान भी सबके पास मौजूद नहीं हैं, क्यों? जीवन पर अधिकार आर्थिक स्तर पर निर्धारित किया जाएगा? भूमि दर्शन की भूमिका (4) रिपोर्ताज में रेणु इस सामाजिक असमानता एवं सरकारी शोषण और लापरवाही को उजागर करते हैं। वे लिखते हैं– ''अरे भगवान....भगवान मालिकवने सबके ओर.... नहित भगवानो आन्हर है कि बहिर.... हाय रे.... एसन अनियाव? तीन–तीन दिन पर हमन के एकगो मडुओ के रोटी न मिले और हुन कर हवेली में पुरनमासी के सतनरैनजी के कथा में पूड़ी बुंदिया के जेवार... और रुआब ऐसन कि बोला मत। चोरी में पकड़ा देगा। डकैती में फँसा देगा। जेहल में देगा।.... जेहल में देगा, त उहे दे दो। जेलवा में खाये के त मिल तई?..... हः हः गरीब के देखेवाला कोय..... नहीं।'

''ठीक बात।''– जितेन्द्र ने आंख मूदे, सिर झुकाए कहा।

''मलिकवन के घर हैजा–फौती मइसो.... ।''

''थारियो–लोटवो बेचलइए, बकरी–बकरा सब... ।''

''अगिया जरतय कइसे?''

''लकड़ियो–जलावनो सब मलिकवने के... ।''

''आग लागो हुनकर.... ।''

विनोदवा। इधर आ यहाँ सामने.... ।''

''यायावर' के कैमरे को उसकी आँखें छेद देगा–ऐसा लगा। रोशनी एकदम कम हो गई थी। ..... फ्लैश चमका तो विनोदवा के चेहरे पर आतंक की एक हल्की–झलक देखने को मिली, जिसे देखकर सभी हँस पड़े।

''जशोदा माई? विनोदवा.... ।'' इससे आगे क्या कहूँ? क्या कहना चाहिए? कह दूं– जाकर खाना भेज दूंगा। दूध भेज दूंगा? दवा भेज दूंगा। क्या कह दूं? हम यहाँ क्यों आए? यह क्या देखा?''[18]

रेणु और 'दिनमान' के संपादक अज्ञेय बिहार के सूखाग्रस्त क्षेत्र के दौरे पर गए थे। वहाँ की स्थिति नारकीय थी। कुछ नहीं था लोगों के पास। रेणु ने सूखा और सामाजिक असमानता जो मानवीय देन है को साथ वर्णित करके परिस्थिति को और भी विकट एवं चिंतनीय बना दिया है। रेणु समाजवादी लेखक हैं। रेणु में अपूर्व वर्णन शक्ति है और यह अपूर्व पर्यवेक्षण शक्ति से ही उपज सकती हैं यह दुर्लभ गुण उन्हें उन तमाम हिन्दी लेखकों से ऊँचे स्थान पर ला बिठाता है जो ब्यौरों को घटिया लोगों का रोजगार और उपदेश को, अथवा दार्शनिकता को श्रेष्ठ साहित्यिक कर्म मानते हैं। रेणु परिस्थितियों को समग्रता में देखते हैं और यह देखना एक ही साथ बाहर और भीतर दोनों ओर होता है। यही उनके ब्यौरे को अर्थ दे जाता है। अलग से अर्थ गढ़ने की जरूरत रेणु को नहीं होती। रेणु के रिपोर्ताज उनके इसी लेखन शैली के अद्‌भुत नमूने हैं। रोज–रोज की घटनाएँ हमारे दैनिक जीवन से इतनी गहरी जुड़ी होती हैं कि हर घटना अनेकों प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित कर

देती है। इन प्रश्नों का समाधान हमसे तीव्रता की अपेक्षा करता है। ऐसी स्थिति में कला और साहित्य की युगयुगीन प्रेरणाएँ निरर्थक जान पड़ती हैं। किन्तु कला और साहित्य मनुष्य के सामूहिक अनुभव की अभिव्यक्ति होते है। अतः वे जीवन से तटस्थ हो जाएं यह संभव नहीं। रेणु और उनका रिपोर्ताज साहित्य सच्चे अर्थों में मनुष्य के सामूहिक अनुभव की अभिव्यक्ति हैं। जयप्रकाश नारायण के साथ फणीश्वरनाथ रेणु लगभग सभी आंदोलन में सक्रिय रहे। रेणु की मानसिक स्थिति यह थी कि वे जयप्रकाश नारायण के साथ किसी भी हद तक जाने को तैयार थे। 'ऋणजल–धनजल' पढ़ने के पश्चात जयप्रकाश नारायण लिखते हैं–

''बिहार के जिस सूखे की कथा इसमें है उससे लोहा लेने की कोशिश मैंने भी की थी। किसी भी विपत्ति से ग्रस्त लोग मुझे बराबर उकसाते रहे हैं और मैं भरसक जो सूझता रहा, करता गया हूँ। रेणु जी ने इस पुस्तक में बिहार की जिस बाढ़ का जिक्र किया है उसकी भयानकता भी मैंने चंडीगढ़ की अपनी एकांत कैद में महसूस की थी। बाढ़ की उस खबर ने मुझे इतना विह्वल कर दिया था कि मैंने इंदिरा जी को एक महीने के पैरोल के लिए पत्र लिखा था। उस बाढ़ की थाह लेने का मौका मुझे तो नहीं दिया गया, पर रेणु जी उसमें खूब डूबे। मनुष्य ही किसी क्रांति का और किसी साहित्यकार का प्राण बिन्दु होता है। मनुष्य, उसकी दूसरी एकाग्रता तोड़ देता है। मैं अब तक अपने सामर्थ्य भर मनुष्य की मुसीबतों से जूझने का प्रयास करता रहा हूँ। रेणु जी ने भी यह लड़ाई, अपने कलम के माध्यम से लड़ी है। उनका सारा साहित्य, इस दृष्टि से अनेक समकालीन मनुष्य का इतिहास है।''[19]

कुबेरनाथ राय के ललित निबंध संग्रह 'गद्यमादन' में 'रिपोर्ताज' शीर्षक से तीन निबंध संकलित हैं– 'दृष्टिजल', 'दृष्टि–अभिषेक' एवं 'कजरीवन में जीवहंस'। 'दृष्टिजल' और 'दृष्टि–अभिषेक' प्राकृतिक आपदा अनावृष्टि (सूखा) एवं 'अतिवृष्टि' (बाढ़) पर केन्द्रित रिपोर्ताज है जिसमें लेखक ने सामान्य जनता के अस्त–व्यस्त जीवन को तीव्र संवेदना के साथ व्यक्त किया है। कुबेरनाथ राय ने 'दृष्टिजल' रिपोर्ताज में उन सभी मानवीय स्थितियों को दिखाया है जो इस प्राकृतिक आपदा को झेलने के लिए अभिशप्त हैं। लाठी के उस्ताद सोमारू अहीर, बद्री बढ़ई,

छैलवाराम नर्तक, कविराज श्रीयुत भट्टाचार्य तोताराम, ग्राम सेवक बच्चन सिंह हों या अन्य कोई भी, अनावृष्टि की मार सभी को झेलनी पड़ती है। कुबेरनाथ राय ने भी प्राकृतिक आपदा के साथ उन बाह्य स्थितियों पर गौर किया है जो इस आपदा की त्रासदी को सिर्फ प्राकृतिक नहीं रहने देती। सभी रिपोर्ताज लेखकों के यहाँ स्थितियाँ एक जैसी हैं पर उनकी रचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि अलग–अलग ढंग से व्यक्त हुई है। अनावृष्टि की मार झेलती वसुधा कुबेरनाथ राय के यहाँ पीली है, समूचा वातावरण पीलेपन की छाया से ग्रस्त है। वे लिखते हैं– ''उदास मटमैला मरा हुआ पीला रंग क्षितिज तक फैला था। पीला एक अजीब रंग है। अपने चटक तेजस्वी रूप में यह शुचिता और सौभाग्य को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए पीले सरसों के फूलों का प्रसार देखकर लगता है कि धरती किसी ईश्वरीय श्रृंगार रस को व्यक्त कर रही है। परन्तु यह मरा हुआ जर्द पीला, खाकी पीला तो जरा, मरण और ह्रास का रंग है। सारी धरती आज मरे हुए धान्य से ढकी है। मृतवत्सा वसुंधरा की छाती पर हमारी फसल की लाश बिछी है। धान का इस तरह से मरना कभी नहीं देखा था।''[20]

विवेकी राय ने भी अपने रिपोर्ताज संग्रह 'जुलूस रुका है' में बाढ़ और सूखा को विषय बनाया है। इस रिपोर्ताज में सूखे से संबंधित 'आसमान में जलबंदी' और बाढ़ से संबंधित 'बाढ़!!! बाढ़!!! बाढ़!!!', 'प्रलय का पानी' शीर्षक रचनाएँ हैं। 'आसमान में जलबंदी' रिपोर्ताज में विवेकीराय ने अनावृष्टि की वजह से उत्पन्न हो गयी अकाल जैसी स्थिति को लोक एवं राजनीति से जोड़कर देखा है। सारे बरसाती नक्षत्र बीत जाते हैं, अगहन भी बीत जाता है पर बरसात नहीं होती। सारे लोग उदास हैं कि खेती कैसे की जाएगी। वे लिखते हैं ''फिर जल भरने की डुग्गी पिटी, क्योंकि उत्तरा नक्षत्र भी निर्जल सरक गयी। बरसात उत्तरायण हो गयी। खेती का मुख हस्त यानी हथिया नक्षत्र चढ़ गया। 'चढ़ते बरसे आद्रा', उतरते बरसे हस्त, सुखी रहे गृहस्थ।' मगर हथिया भी नहीं बरसी तो क्या होगा? खेत परती रह जाएंगे। पशु–प्रानी भूखों मर जाएँगे।''[21]

'बाढ़!!! बाढ़!!! बाढ़!!!' शीर्षक रिपोर्ताज में बाढ़ का आना एक प्राकृतिक आपदा भर नहीं है, हमारी शासन–व्यवस्था की अदूरदर्शिता का परिणाम भी है। बाढ़

में सिर्फ मनुष्य ही नहीं दुख पाते, मनुष्येतर प्राणी भी समान रूप से बाढ़ की विभीषिका को झेलते हुए जीवन–मृत्यु के संघर्ष में झूलते रहते हैं। नेता एवं सरकारी तंत्र, लोगों का शोषण करता है और अपने निकम्मेपन का परिचय देता है। विकास और सुव्यवस्था के सारे दावे खोखले एवं पीड़क साबित होते हैं। विवेकी राय लिखते हैं– ''चार दिन बाढ़ में घिरा रहा। वह दृश्य देखा कि कलेजा कांप गया। लानत है आधुनिक युग की सारी तरक्की पर। वह वैज्ञानिक उन्नति, जिसमें इंसान चाँद छू रहा है, कैसे इस मुल्क में आकर इस कदर चुक गई? दीन–हीन, दयनीय, विवश बेचारा, आर्त और भूखा–दूखा इंसान का ऐसा रूप कि जिसे देख लाज को लाज लगे।''[22]

मणि मधुकर का रिपोर्ताज संग्रह 'सूखे सरोवर का भूगोल' सूखा को केन्द्र में रखकर लिखे गए रिपोर्ताजों में महत्त्वपूर्ण है। राजस्थान की तपती गर्मी, रेतीली भूमि और सूखे की मार। शेष जीवन के अशेष को प्रस्तुत किया गया है। 'सूखे सरोवर का भूगोल', 'भूख का अंधेरा', 'पानी सिर्फ आंखों में है', 'होंठों में पिवणा का जहर', आदि महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं जो सूखे की मार को झेलती मानवता एवं वर्ग–विभाजन की समस्या को संवेदना के गहरे धरातल पर खींच ले जाती है। मणि मधुकर ऐसे रिपोर्ताज लेखक हैं जिनकी बिना लाग–लपेटवाली भाषा अभिव्यक्ति में गहरे उतरती है। उनकी भाषा एक ओर पीड़ित लोगों की संवेदना से संवाद करती है तो दूसरी ओर उन समस्त तत्वों को अलग कतार में खड़ी कर देती है जो आदमखोर हो गए हैं। 'सूखे सरोवर का भूगोल' रिपोर्ताज में वे लिखते हैं– ''यह मेरी जमीन है, निर्लज्ज और निर्जीव! न कुछ पा लेने का संतोष, न खो देने का दर्द। लगातार अकाल पड़ता हैं, धरती–कुछ नहीं देती, आकाश तसले की तरह ठनठनाता रहता है और आदमी इतना कुंद हो जाता है कि वह अपने से अलग किसी का खयाल नहीं कर पाता। सास–ससुर, पति–बच्चे सब सो रहे हैं और बीस रोज की भूख से तलफलाती हुई औरत अचानक उठकर कहीं चल देती है। इस 'चलने' के सिवा दूसरा कोई विकल्प नहीं है। जिंदा रहने की इच्छा सब कुछ करवा लेती है। पिता किसी गड्ढे में बचा–खुचा धान छुपा देता है। रोज खुद, एक दो फांकी मार लेता है, पर अपने बच्चों को एक दाना तक नहीं दिखलाता और उन्हें अपनी मौत मरने देता

है। 'मनुष्य का आचरण' जिनके लिए एक 'चिंतन' है, वे इसे 'निर्दयता' कह सकते हैं क्योंकि कुछ भी कहना बहुत आसान है, लेकिन जिस तरह से भरपेट डकार लेते हुए वे दया, ममता, समता, बंधुता आदि का जिक्र करते हैं, वे हमारी समझ से बाहर है।''[23]

रेगिस्तान और उसके जीवन की अंतरंग आवाजों से जुड़े मणि मधुकर के रिपोर्ताज आंखों में रेत की तरह भर जाते हैं और चुभने लगते हैं। जो चीजें दिखती हैं आँखों में गड़ती हैं और उन चीजों के होने का भयावह अहसास भीतर धँस जाता है और धीरे–धीरे शरीर की तमाम हलचलों को बर्फ बना देता है। सूखा न सिर्फ मानव समुदाय को मारता है अपितु बेजान पशु–पक्षियों को भी अपना ग्रास बना लेता है। 'भूख का अंधेरा' रिपोर्ताज में मानवेतर प्राणियों की त्रासद मृत्यु का वर्णन किया गया है– ''दूर–दूर तक बंजर धरती। फटी हुई दरारों के नंगे दृश्य। मरे हुए पशुओं के ढेर लगे हैं। हड्डिया बिक रही हैं। खाले सूख रही हैं। हरनाऊ की तरफ लौटता हुआ मैं अनेक गाय बैलों को अंतिम सांसों के बीच फँसा हुआ देखता हूँ। उनके माथे पर रोली के टीके लगे हैं। मरते वक्त भी टीकों की चमक बुझती नहीं है। मंदिर का पुजारी कहता है, ईश्वर कहीं नहीं है।''[24]

राजनेताओं ने सामान्य जनता को सिर्फ एक वोट समझा है जिसकी जरूरत पाँच साल में सिर्फ एक बार ही पड़ती है। हिन्दुस्तान की जनता अपने वोट को मछली मानती है, वह उसे मगरमच्छ नहीं बना पाई। नेता रूपी बगुले–मच्छीमार आते हैं और मछलियाँ चुगकर लौट जाते हैं। सरकार सिर्फ शोषण के नए–नए तरीके इजाद करती है। नयी सरकार, शोषण का नया तरीका। इन सबमें पीछे छूट जाता है तो सिर्फ मनुष्य, वह मनुष्य जो साहित्य और कला के ही नहीं अपितु राजनीति के केन्द्र में भी है। सरकार बनने के बाद जो जनप्रतिनिधि जनता की सुध तक नहीं लेते, चुनाव से पहले सारे साजो–सामान जुटाने एवं बड़े–बड़े दावे करने से भी नहीं घबराते। जनप्रतिनिधियों का निकम्मापन सूखा और बाढ़ की त्रासदी को और त्रासद बना देता है। ऐसा नहीं है कि जनता इन बातों से अनभिज्ञ है। वह अभिशप्त है इस सलीब को ढोने के लिए। 'भूख का अंधेरा' रिपोर्ताज में मणि मधुकर व्यवस्था के निकम्मेपन पर चोट करते हैं– ''चुनाव के समय ये धीरे आवाजों

से पट जाते हैं। पगडंडियाँ आम रास्तों में बदल जाती हैं। उस समय दिन–रात घुरघुराने वाली जीपें कहां हैं? वे ट्रक, ठेले, फड़फड़िए? कहां हैं वे लोग– गाँव'–बास में दारू की ढेरों बोतलें खोलने वाले, रुपए बाँटने वाले, मठबावड़ी के नाम पर दान का नाटक रचने वाले। वे कहां चले गए हैं सब? क्या वे इस वक्त अन्न–पानी नहीं बांट सकते? सुन्दरा के हरलाल ने कहा था, ''बै सगला धोला कागला है पाँच साल में एक बार मच्छी खावण आवै।''[25]

रांगेय राघव ने 'तूफानों के बीच' रिपोर्ताज संग्रह बंगाल के अकाल को आधार बनाकर लिखा था। बंगाल का अकाल 1942 ई. में पड़ा था। उस समय भारत साम्राज्यवादी शक्ति के अधीन था। किन्तु मणिमधुकर ने राजस्थान के जिस अकाल का वर्णन किया है वह स्वतंत्रता प्राप्ति के पच्चीस वर्ष बाद का है जहाँ किसी जगह का नाम 'हड़ियाल' इसलिए पड़ जाता है कि जब 'छप्पना' अकाल पड़ा तो पूरा गाँव मुर्दा ठठरियों से ढक गया था। टीलों पर चमकते हुए हड्डियों के ढेर दूर से ही नजर आते थे। धीरे–धीरे लोगों ने कहना चालू कर दिया हड़ियाल। बेपनाह मृत्यु का बेशर्म गवाह, चार हर्फों का यह नाम। यह कथा सिर्फ एक 'हड़ियाल' की नहीं है अपितु पूरे राजस्थान की है या राजस्थान की जगह पर कोई भी प्राकृतिक आपदाग्रस्त जगह या राज्य या फिर राष्ट्र ही क्यों नहीं। मणि मधुकर लिखते हैं– ''इतने बड़े मुल्क की इतनी बड़ी शतरंज में रेगिस्तान के ये मनुष्य–मवेशी कहाँ जुड़ते हैं? पच्चीस वर्षों की स्वतंत्रता में कभी किसी ने जिजीविषा के इन 'कठिन' क्षणों को चीन्हने की कोशिश की है? बाऊ कहते हैं, ''मरियोडा नै वे कीकर पिछाणै जद जीवतड़ा री बालद हांकै–मरने वालों को वे क्यों पहचानेंगे, जबकि जिंदा लोगों को जानवर की तरह हाँकते हैं।''[26]

प्राकृतिक आपदाओं विशेषकर सूखा और बाढ़ को आधार बनाकर लिखे गए रिपोर्ताजों में सर्वत्र प्रकृति के अलावा अमानवीय दशाओं का ही चित्रण है जो मनुष्य के लिए कलंक है, जो मृत्यु को और भी बेरहम बना देती है।

2.1 मानवजनित समस्याएँ

रिपोर्ताज का उद्‌भव द्वितीय विश्व–युद्ध के समय हुआ। सोवियत लेखक अपने देशवासियों को हिटलर के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से समाचार पत्रों में युद्ध के जो विवरण प्रकाशित कराया करते थे, उन्हीं को उनके शैलीगत प्रभाव के कारण बाद में 'रिपोर्ताज कहा गया। सिस्टर क्लेमेंट मेरी के अनुसार, ''रिपोर्ताज वस्तु या घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया पर आधारित होता है और उसमें प्रत्यक्ष साक्षात्कार की अनुभूति रहती है। वह प्रमुखतः वर्णनात्मक है परन्तु उसमें हर्षोल्लास, करुणा तथा अवसाद जैसे संवेदनों की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त स्थान रहता है। घटना का यथावत वर्णन और तद्‌विषयक लेखक का उत्साह, ये दोनों तत्व मिलकर ही रिपोर्ताज का निर्माण करते हैं। रिपोर्ताज वस्तुगत सत्य को प्रभावशाली बनाता है, उसका संबंध सिर्फ वर्तमान से होता है किन्तु उसका लेखक वर्तमान के उस बिन्दु पर होता है, जिसमें भूतकालीन मूल्य और भावनाएँ रहती हैं और भविष्य के प्रति उत्कट लालसा भी।''[27]

यदि रिपोर्ताज वस्तु या घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया है तो घटनाएं प्राकृतिक और मानवजनित दोनों हो सकती हैं। चूंकि रिपोर्ताज लेखक की तीव्र संवेदना घटनाओं एवं उसके प्रभाव के साथ होती है, ऐसी स्थिति में घटना चाहे प्राकृतिक हो या मानवजनित समान संवेदना की माँग करती हैं। रिपोर्ताज लेखकों ने इसके विषय का विस्तार करते हुए घटने वाली मानवजनित समस्याओं को वर्ण्य विषय बनाया। ये समस्याएँ युद्ध, सांप्रदायिक एवं जातिगत दंगा, राजनीतिक विचलन एवं दुष्चक्र, अपराध, आगजनी, नशा, आंदोलन, पर्यावरण, कचरा फैलाना, औद्योगीकरण के दुष्प्रभाव आदि हो सकते हैं।

प्राकृतिक आपदाओं पर मनुष्य का वश नहीं है किन्तु इस संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य अपने महत्त्वाकांक्षाओं, प्रगति की अंधी प्रतिस्पर्धा की दौड़ में शामिल होने की वजह से नित नई–नई समस्याओं को जन्म देता है। रिपोर्ताज विधा में किसी स्थान या घटना का यथार्थ, सजीव, मर्मस्पर्शी और संवेदना को जागृत करने वाला वर्णन किया जाता है, इसलिए इसमें घटना, दृश्य या वातावरण प्रधान होता है

चरित्र अथवा व्यक्ति नहीं। अतः रिपोर्ताज लेखक अपनी गहन अंतर्दृष्टि एवं विश्लेषणात्मक प्रतिभा के आधार पर उन समस्याओं को वर्तमान मूल्य की भाँति प्रस्तुत कर देता है जो मानवजनित ही क्यों न हों। मानवजनित समस्याओं पर लेखनी चलाकर रिपोतार्ज लेखक सुंदर भविष्य की स्थापना की ओर संपूर्ण मानवता को अग्रसर करना चाह रहा है जिसकी अनदेखी चरम पतन में होगी।

युद्ध मानवजनित समस्या है। क्षुद्र मानवीय स्वार्थ और साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा युद्ध जैसी भीषण समस्या को जन्म देती है। युद्ध से चाहे जिसका स्वार्थ पूरा होता हो, भुगतना पूरी मानवजाति को पड़ता है। जितना भीषण युद्ध उतना ही भयानक उसका दुष्प्रभाव! रामायण, महाभारत, विश्व युद्ध और सभ्यता के विकास काल से लेकर युद्धों का जो सिलसिला चल पड़ा है, ये सभी मनुष्य की क्षीण होती नैतिकता का परिणाम है।

रिपोर्ताज लेखकों ने युद्ध की विभीषिका को रिपोर्ताज का विषय बनाया। साहित्यिक प्रतिभा से संपन्न पत्रकार अपने अद्‌भुत वर्णन क्षमता के द्वारा युद्ध को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। ये रचनाकार युद्ध की रिपोर्टिंग के लिए जीवन को दाँव पर लगाकर युद्ध क्षेत्र में गए और वहाँ का आँखों देखा विवरण प्रस्तुत किया। ऐसे रचनाकारों में धर्मवीर भारती, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवसागर मिश्र, विष्णुकांत शास्त्री, लक्ष्मीनारायण लाल आदि प्रमुख हैं।

सितंबर 1971 में धर्मवीर भारती ने मुक्तिवाहिनी के सहयोग से बंगलादेश की गुप्त यात्रा की। इस यात्रा के अनुभवों को बम्बई से प्रकाशित 'धर्मयुग' के लिए भेजते रहे जो उसी समय से ही 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप से छपे। बाद में ये रिपोर्ताज 'युद्ध यात्रा' संग्रह नाम से छपे। बंगलादेश के स्वतंत्रता–संग्राम से संबंधित इन रिपोर्ताजों में मुक्तिवाहिनी के अदम्य साहस, भारतीय इंजीनियरों के कौशल का चित्रण बड़ी संवेदना के साथ किया गया है। 1971 में बंगलादेश की मुक्ति को लेकर प्रारंभ भारत–पाकिस्तान युद्ध के वास्तविक मोर्चे के रोमांचक अनुभव, भारतीय स्थल सेना के सहयोग से हुए। बाद में 1972 तक के छपे रिपोर्ताजों को 'मुक्तक्षेत्रे–युद्धक्षेत्रे' में संकलित किया गया। इस साहसिक कार्य के लिए उन्हें सन् 1972 में भारत सरकार ने 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया। 3 दिसम्बर 1971 से

लेकर 16 दिसम्बर 1971 तक चले इस युद्ध में जहाँ सेना के जवान अपना कार्य कर रहे थे वहीं भारती जी कदम से कदम मिलाकर मानवता और पशुता के बीच उभरे संघर्ष को न सिर्फ लिख रहे थे अपितु भारत–बंगलादेश के रिश्ते की नई नीव भी रख रहे थे। पाकिस्तान बंगलादेश के संसाधनों का इस्तेमाल 'अपने लोगों के लिए करना चाहता था तथा 'अपनी' भाषा उर्दू बंगलादेशियों के ऊपर थोपना चाहता था जबकि बंगलादेशी लोग अपनी भाषा बांग्ला पढ़ना चाहते थे। अपने ही राष्ट्र के एक हिस्से के साथ अमानवीय कुकृत्य एवं उनका दमन पाकिस्तान की नियति थी। 'धनुष सी नदी' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती लिखते हैं– ''आपका कागज में मुजीब साहब का छवि वेशी अच्छा है। देवता आदमी हैं। अल्लाह सब देखता है, कौन राक्षस है, कौन देवता! ये खान सिपाही, ये इंसान है साब? हमारा गाँव में आगी बारता है। गोरु, मुरगी, छागल, पखेरू सब ले जाता है। आठ–आठ बरस की बच्ची के साथ बुरा काम करके संगीन झोककर परान ले लेता हैं। ऐसा–ऐसा काम किया भारती साहब कि अपने को बोलने में सरम आता है। इंसान का काम नहीं, साहब जानवर है ओ तो। अच्छा एकागज में आप मुजीब साहब का नाम बंग्ला लेखा में दिया है। हम बूझते हैं। हिन्दी लेखा तो बिल्कुल बंग्ला लेखा के समान है। उर्दू लेखा नहीं बूझते। वो जैसा खान सिपाही है वैसा उसका लेखा। हमारा स्टूडेंट लोग से बोला, ये लेखा नहीं पढ़ेगा तो हम शूट कर देगा। ढाका में हत्या कर दिया उसका, सब जवान–जवान खोका लोग।''[28]

25 मार्च 1971 को आधी रात को पाकिस्तानी फौज ने भोले–भाले बंगलादेशियों पर अमानुषिक कहर बरपाया। धरती, आसमान, सब ओर भयानक आक्रमण निहत्थे सोए हुए शहर पर किया गया। पाकिस्तानी फौज अपने इस अमानवीय कृत्य की घोषणा भी कर रही थी कि उन्होंने ढाका के आधे लोगों को भून डाला है और जो बाकी बचे हैं उन्हें भूख से तड़पा–तड़पाकर मारेंगे। वे विद्यार्थियों को कत्लेआम कर और बाजारों को जलाकर रेडियो पर इसकी रिपोर्ट प्रसारित कर रहे थे। उन्होंने ढाका में नरसंहार का दूसरा तरीका अपनाया। फौजी ट्रकें कतार बाँधकर निकलतीं। गलियों में पहुँचकर उन्हें घेर लिया जाता और जितने लोग मिलते उन्हें गिरफ्तार कर ट्रकों पर लाद देते। मशीन गनें उनकी ओर तनीं

रहती और रस्सियाँ देकर उनसे कहा जाता कि एक दूसरे के हाथ–पाँव कसकर बाँध दें। फिर मुँह में कपड़ा ठूँस दिया जाता और चलती ट्रकों पर ही संगीने भोंककर उन्हें मार डालते, ट्रकें आकर बूढ़ी गंगा के किनारे खड़ी हो जातीं और उनमें से लाशों को पानी में लुढ़का दिया जाता। हृदय विदारक घटना का विवरण सुनकर, धर्मवीर दुखी होकर लिखते हैं ''सुनते–सुनते मेरा गला सूख गया था। आँखें जलने लगीं थी, मुट्ठियाँ तन गयी थीं। इस भयानक अमानुषिकता को भी जातीयता के नाम पर, कूटनीति के नाम पर, शक्ति संतुलन के नाम पर जो नजरअंदाज कर रहे हैं, क्या उन्हें भी माफ किया जाना चाहिए। मेरे हाथ में राइफल नहीं, पर तनी हुई मुट्ठियों में कसी हुई कलम इन दरिन्दों और इनको शह देने वालों के मुखौटे उधेड़ने में अगर जरा भी कोताही करे तो मेरे सारे लिखने–पढ़ने को लानत।''[29]

सुसंस्कृत और सभ्य कहे जाने वाले समाज में युद्ध की कोई जगह नहीं होती। किन्तु, यदि युद्ध अनिवार्य हो जाए तो यह संस्कृति और सभ्यता की रक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण हो जाता है। फिर क्या पढ़ा–लिखा और क्या अनपढ़। सभी इस युद्ध में शामिल हो जाते हैं और फिर युद्ध क्षेत्र को पहचानना कठिन नहीं रह जाता। युद्ध एक माहौल होता है। एक हवा में फैली–फैली सी सहम। घटनास्थल के बहुत पहले से युद्ध को महसूस किया जा सकता है, तमाम चीजों में, चेहरों में, आवाजों में यहाँ तक कि रास्तों के सुनसान घुमावों में, खेतों के सन्नाटों में, टीनों के उभारों और खंदकों के अंधेरों में। कवि–साहित्यकार भी इस युद्ध से निरपेक्ष नहीं रहता उसकी रचनाएँ, सत्य और न्याय के लिए लड़ने वाले देशवासियों के कंठ में विराजती है, प्रेरणा बनकर देशप्रेम का भाव जागृत करती हैं। 'प्रभु इस रस को, नए रस को क्या कहते हैं' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के गीत को मुक्तिवाहिनी सैनिकों का मार्गदर्शन बताते हैं। वे लिखते हैं– ''हमारे अनेक सतही विचारक समझ नहीं पाते कि कैसे युग–युग से यही पेस्टोरल रोमांस मुक्ति की क्रांति में बदलता आया है। वे यह नहीं समझ पाते कि मनुष्य मन की वह कौन–सी रहस्यमयी प्रक्रिया है जो इसी सौंदर्यबोध को धधकती क्रांति चेतना में बदल देती है। वे यह नहीं समझ पाते कि इतिहास का वह कौन सा क्षण होता है जब इसी बाँसुरी

के लिए कच्चा हरा बांस काटने वाले उसे ट्रेंच में गाड़कर असत्य के खिलाफ युद्ध का आधार स्तम्भ बना देते हैं और दुनिया के तमाम नपुंसक प्रजातंत्रवादी और मार्क्सवादी पाखंडी खामोश खड़े देखते रहते हैं। तब उन ग्रामीण क्रांतिकारियों के सहारे के लिए यहिया खान के खिलाफ उनके पूर्वज नवाब हुसेन शाह के कवि यशोराज खान ही काम आते हैं, अपने नए रूप में। तब उनका नाम होता है रवीन्द्रनाथ टैगोर जो उसी वंशी की याद दिलाकर लिखते हैं– 'तोमार आकाश, तोमार बाताश, आमार प्राणे बाजाये बांशी, सोनार बांगला आमी तोमाय भालोवाशी।' और यह उनका राष्ट्रगीत बन जाता है और प्राणों में बजने वाली वह वंशी ट्रेचों में गाड़ दी जाती है मशीनगनें चलाने के लिए। इस रस को कौन जान सकता है, वही जो हर हृदय और हर धरती में बिंधी कविता और क्रांति का असली रिश्ता जानता है।''[30]

बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम के पृष्ठभूमि पर विष्णुकांत शास्त्री ने भी युद्ध संबंधी रिपोर्ताजों का लेखन किया है। वे, धर्मवीर भारती के साथ थे। जिन दृश्यों, घटनाओं को उन्होंने देखा, अनुभव किया, वही लिखा। मुक्तिवाहिनी के सैनिकों की वीरता और आत्मविश्वास, पाकिस्तानी सैनिकों की पराजय, घायल सैनिकों की दुर्दशा, बांग्लादेश से आए शरणार्थियों की मार्मिक अवस्था का हृदयबेधक चित्रण शास्त्री जी ने अपनी पुस्तक 'बंगलादेश के संदर्भ' में किया है। विष्णुकांत शास्त्री के लिए वे दिन उत्तेजना, विक्षोभ और उत्साह से भरे हुए दिन थे। युद्ध के मोर्चे पर अर्द्धसैनिक वेश में गोलों के धमाकों के बीच मुक्ति योद्धाओं के साहचर्य ने जीवन को एक नया अर्थ प्रदान किया। सन 1977 में प्रकाशित 'स्मरण को पाथेय बनने दो' में शास्त्री जी लिखते हैं– ''पीछे से गुडुम की गंभीर आवाज आती है, गोला छूटता है, सनसनाता हुआ हम लोगों के सिर के ऊपर से गुजरता है। हम सब आँखें गड़ाए अभीष्ट दिशा की ओर देख रहे हैं, अचानक एक जगह धूल–धुएँ का स्तंभ सा उठता है और कुछ ही सेकेंडों के बाद गोले का फटने का घना नाद सुनाई पड़ता है। कैप्टेन को पूरा संतोष नहीं होता, निशाने के काफी पास पड़ने पर भी गोला कुछ बाएं गिरा है, वे आवश्यक संशोधन के साथ फिर हुक्म देते हैं। एक–एक कर

छह गोले उसी चौकी पर बरसाए जाते हैं। गोले का धड़ाका हम लोगों की छाती की धड़कन को तेज कर देता है।''[31]

रिपोर्ताज साहित्य के यशस्वी लेखक फणीश्वरनाथ रेणु ने भी युद्ध जैसी मानवजनित समस्याओं को आधार मानकर रिपोर्ताजों की रचना की है। नेपाल में विराटनगर के मील–मजदूरों की बदतर जीवन–स्थितियों को केन्द्र में रखकर रेणु ने 'सरहद के उस पार' रिपोर्ताज लिखा जो 'नेपाली क्रांति कथा' की पृष्ठभूमि बना। नेपाल में पहली बार प्रजातांत्रिक सरकार के लिए राणाशाही के खिलाफ दूसरा सशक्त संग्राम शुरू हुआ जिसका संपूर्ण ब्यौरा नेपाली क्रांति कथा है जिसे रेणु ने 'हिल रहा हिमालय' नाम से धारावाहिक रूप में 'जनता' में लिखा था। इस संघर्ष में रेणु पर्चे, गीत वगैरह लिखने के साथ ही 'मुक्ति–संदेश' नामक एक बुलेटिन का प्रकाशन भी करते थे। रेणु ने इस क्रांति में भाग लिया था अतः वे एहरन बुर्ग एवं जान रीड की तरह लेखक के साथ–साथ क्रांति के योद्धा भी थे। इन रचनाओं में नेपाल की राणाशाही के अत्याचार और दमन के विरुद्ध जनता के सशस्त्र संग्राम का यथातथ्य आँखों देखा विवरण है। लेखक ने क्रांति की आग, बेचैनी और पीड़ा को अपने अंदर भोगा है। चमड़िया–सिंहानिया–लायलकाओं सरीखें पूंजीपतियों ने वहाँ के राणाशाही को अपने साथ मिलाकर जनता को खूब लूटा है क्योंकि वहाँ न इनकम टैक्स का बखेड़ा, न ट्रेड यूनियनों के कानून की पाबंदी और न ही मजदूर यूनियनों का डर। राणाशाही और पूंजीपतियों के मिले–जुले दुष्चक्र से खस्ता हाल जनता मरणासन्न की स्थिति में आ गयी है। जनता की स्थिति को 'सरहद के उस पार' रिपोर्ताज में रेणु ने जिस प्रकार व्यक्त किया है, स्वाभिमानी जनता उस तरह का जीवन का परित्याग कर शोषणवादी शक्तियों के खिलाफ खड़ी तो जरूर होगी। रेणु लिखते हैं– ''देखिए, दाहिनी ओर वह मजदूर कालोनी है या 'सूअर के खुहारों' का समूह! उनके बच्चे और औरतों की दशा देखिए, कितनी दर्दनाक सूरत है। अस्पतालों और स्कूलों की जरूरत जब यहाँ की सरकार ही अपनी प्रजा के लिए नहीं महसूस करती है तो इन 'राक्षसों' से क्या आशा की जाए? हाँ, मजदूरों के स्वास्थ्य और दिलबदलाव को मद्देनजर रखकर सुरा–सुंदरी का विशेष प्रबंध यहाँ

अवश्य है। औसतन दस क्वार्टरों पर एक भट्ठी और पाँच क्वार्टरों पर एक वेश्यालय।''[32]

संसार में जितने भी युद्ध हुए हैं उनमें पुरुष चाहे जितने भी मारे गए हैं, स्त्री वर्ग का नुकसान सर्वाधिक रहा है। विजेता एवं शक्तिशाली वर्ग अपने प्रतिद्वंद्वियों की महिलाओं का नैतिक एवं चारित्रिक अपमान करना अपनी वीरता एवं परम कर्त्तव्य समझता है। राणाशाही सत्ता को उखाड़ फेंकने वाले क्रांतिकारियों के मनोबल को कमजोर करने के लिए राणाशाही सैनिक क्रांतिकारियों की स्त्रियों का अपमान करने से भी नहीं चूकते। 'नेपाली क्रांति कथा, –एक' में रेणु लिखते हैं– ''नेपाली कांग्रेस के छोटे–बड़े सभी सदस्यों के नाम 'मौत का परवाना' जारी कर दिया गया है– ''देखते ही गोली मार दो।'' किन्तु दोपहर तक सारे नगर को छान डालने के बाद भी नेपाली कांग्रेस का कोई सदस्य नहीं पकड़ा गया। एक बच्चा भी नहीं।

कर्नल ने कहा– उनकी औरतों से कहो, अपने–अपने घरवालों को दो दिन के अंदर हाजिर करें। नहीं तो औरतों को ही 'धुन' दिया जाएगा अर्थात् कैद किया जाएगा..... सब कुछ किया जाएगा।''[33]

जब मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए युद्ध हो रहा हो तो उस युद्ध में गरीब और सर्वहारा मुक्त भाव से रहता है जबकि शोषणकारी शक्तियाँ डरी और सहमी रहती हैं। अन्याय और अत्याचार का पक्ष लेने वाले लोग डर के साए में जीने को बाध्य रहते हैं। उन्हें डर सताता है कि कब क्रांति दूतों की दृष्टि उन पर पड़ जाए और वे श्रीहीन हो जाए या उन्हें मरना पड़े। नेपाली क्रांतिकथा में रेणु लिखते हैं– ''विराटनगर की जनता अपने–अपने घरों में बंद त्राहि–त्राहि कर रही है। शहर के अधिकांश परिवारों ने कई दिन पहले शहर छोड़ दिया है। जो रह गए हैं, वे हर 'फाइरिंग' पर दहल रहे हैं। सबसे ज्यादा भयभीत हैं– राणाशाही की चाकरी (जी–हजूरी) करने वाले, बिर्तेवाले (बिना मालगुजारी दिए ही बन जाने वाले काले व्यापारी, पेंशनभोगी सरकारी कर्मचारी।''[34]

सन् 1965 के भारत–पाक युद्ध को पृष्ठभूमि बनाकर शिवसागर मिश्र ने रिपोर्ताजों की रचना की जो 'वे लड़ेंगे हजार साल' संग्रह में संग्रहीत है। इस संग्रह में भारतीय वीर जवानों के अदम्य साहस और वीरता की विजयगाथा है जिन्होंने

पाकिस्तानी सेना का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया और वहाँ के नेताओं के इस गर्वोक्ति को, कि हम भारत से हजार साल लड़ते रहेंगे, को मात्र 22 दिनों में ही झुठला दिया। रिपोर्ताज संग्रह के 'दो शब्द' शीर्षक में शिवसागर मिश्र लिखते हैं ''सन् 1965 के युद्ध में सुचेतगढ़, डोगराई, बर्की और खेमकरण के मोर्चों पर ही जमकर लड़ाई हुई और इन ऐतिहासिक स्थलों पर जाने का मुझे अवसर मिला।..... ..... जहाँ–जहाँ मैं जा सका और जिन–जिनसे मिल सका, उन्हीं तथ्यों को मैंने इस संग्रह में थोड़े–बहुत संशोधन के साथ रख दिया है।''[35]

युद्ध पूरी मानवता के नाश का कारण बनता है। छोटी–छोटी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भयानक युद्धों की काली घटा सब कुछ को अपना ग्रास बना लेती है। पर, आश्चर्य इस बात का है कि न जाने कितने युद्धों को सहने के बाद भी मानव जाति अगले युद्ध के लिए हमेशा तत्पर रहती है। इतिहास बार–बार दोहराया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमें भविष्य नहीं अपितु इतिहास संचालित कर रहा है। दुनिया को प्यार–मुहब्बत की आवश्यकता है न कि युद्ध की, लेकिन न जाने किन बातों में फँसी हुई दुनिया प्रथम विश्व–युद्ध के बाद दूसरे विश्य युद्ध को निमंत्रित कर लेती है। प्रथम विश्व युद्ध में खूब बम बरसते हैं, विध्वंस का नंगा नाच होता है। पर हम इस भयानक विध्वंस से सीखते कुछ नहीं। दुनिया ने युद्ध के बदले मित्रता का पाठ कतई नहीं पढ़ा। क्रूरता का ऐसा तांडव मचाता है युद्ध कि इतिहास भी सिहर उठता है, मुख विवर्ण हो उठता है उसका। 'क्षण बोले कण मुसकाए' रिपोर्ताज संग्रह में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं– ''तुम भी जानते ही होंगे कि इस प्रश्न का उत्तर क्या है? तब दूसरी लड़ाई के रूप में वही पाठ मैंने फिर दुनिया को पढ़ाया और मामला एटम बम तक पहुँचा। दुनिया में ऐसा बिध्वंस मचा कि उसकी नस–नस टूट गई और वह हाय–हाय कर उठी, पर क्या इससे दुनिया ने शांति का पाठ पढ़ा? नहीं पढ़ा तो बताओ तुम्हीं कि यह मेरी भयंकर असफलता है या नहीं?''[36]

दंगा, मानवजनित समस्या है जो मनुष्यों के आपसी मतभेदों का भयानक परिणाम है। दंगा हमारे देश की नियति है। भारत की विविधता विश्व मानचित्र पर इसकी विशिष्टता बनती है पर वह विशिष्टता कभी–कभी असामाजिक उथल–पुथल

का कारण बन जाती है। इस देश में विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग रहते हैं। यह देश यूँ तो धर्मनिरपेक्ष देश है पर धर्म, जाति और संप्रदाय आधारित दंगों की रेखा इसके ललाट पर कम नहीं है। भारत, लंबे समय तक साम्राज्यवादी शासकों के अधीन रहा। 15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। पर यह स्वतंत्रता धर्म और सांप्रदायिक दंगों के कंधे पर चढ़कर आई। पूरे देश में मार–काट मची, खून–खराबे हुए जिसके मूल में 'हिन्दू और मुसलमान' तथा भारत और पाकिस्तान था। स्वतंत्रता के बाद आयी सांप्रदायिकता की बाढ़ ने लंबी लड़ाई के बाद आजादी के दामन को दागदार कर दिया। बँटवारे की घटना ने देश में भयानक उथल–पुथल मचाई। राजनेताओं के नेतृत्व पर से जनता का विश्वास उठ गया। विभाजन ने लोगों के बीच धर्म एवं संप्रदाय की खाई खोदकर आपसी एकता दूर कर दी। अमृत राय अपने रिपोर्ताज संग्रह 'लाल धरती' में लिखते हैं–

''तीन रोज के भूखे आदमी के दिन की तरह नातमाम कि हमारी बहन हमारे पास नहीं आ पाती।..... और वह यहाँ आने के लिए उतनी ही शिद्दत से पिंजरे में बंद चिड़िया की तरह छटपटा रही है, मगर आ नहीं पाती। गोया वही दिल्ली है और वही कराची। फर्क सिर्फ यह है कि दोनों के दरमियान एक मरता हुआ साम्राज्य टेढ़ा–मेढ़ा होकर लेट गया है।''[37]

स्वतंत्रता के साथ ही आई सांप्रदायिक उपद्रवों की बाढ़। चीजों का अभाव, कालाबाजारी, चोरी और कंट्रोल के बंधन तो थे ही, शरणार्थियों की दुखगाथा ने कोढ़ में खाज का काम किया और जीवन दूभर हो उठा। जो भी मिलता, यही कहता कि ऐसी आजादी की कामना तो हमने नहीं की थी। क्या यही आजादी है। 'अब हम स्वतंत्र हैं' रिपोर्ताज में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं– ''क्यों साहब, यही है आपकी आजादी। यह कहने में भी लोग न चूकते– ''इससे तो वह गुलामी ही अच्छी थी।'' और यह भी कि ''कहाँ है आजादी।'' सचमुच आजादी कहीं न थी, यानि आजादी तो सब जगह थी, पर उसकी अनुभूति कहीं न थी, उसके गौरव का एहसास किसी में न था। मेरा मन दुख से भरा था, पर इसका उत्तर मेरे पास न था कि जब देश पूर्ण स्वतंत्र है, तो देशवासी यह अनुभव क्यों नहीं करते कि हम स्वतंत्र हैं।''[38]

भारतवासी सचमुच यह अनुभव नहीं कर पा रहे थे कि वे अब स्वतंत्र हैं। स्वतंत्रता छलावा प्रतीत होने लगी थी। भारत की आजादी धार्मिक अलगाव बनकर रह गई। साहित्यकारों ने खूब लिखा इस आजादी को केन्द्र बनाकर। साहित्य की कोई विधा नहीं बची होगी जिसमें विभाजन की त्रासदी और परिणामस्वरूप स्वतंत्रता को विषय बनाकर कुछ न लिखा गया हो। कथाकार यशपाल ने इस आजादी को 'झूठा–सच' कहा तो पाकिस्तान के शायर फैज ने पाकिस्तान बनने पर 14 अगस्त, 1947 के बारे में कहा, ''ये दाग–दाग उजाला शब गुजीदा सहर, वो इंतजार था जिसका ये वो सहर तो नहीं'' ये वो सहर नहीं जिसकी आरजू लेकर प्रत्येक भारतवासी इस उम्मीद में चला था कि कहीं न कहीं मिल जाएगी। अगस्त 1947 से लेकर नौ महीने बाद तक लगभग एक करोड़ साठ लाख हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों को घरबार छोड़कर खून की प्यासी भीड़ से बचने के लिए भागना पड़ा। उसी अरसे में छः लाख लोग मारे गए। 1947 भारत वर्ष के चीलों और गीधों के लिए बड़ा ही शानदार वर्ष था।

आजादी के बाद तो इस देश में बहुत दंगे हुए। अब तो यह संस्कार सा बन गया है इस देश का। दंगे होते नहीं है, कराए जाते हैं, इसकी जांच पड़ताल बहुत मुश्किल नहीं है। दंगे के पहले और बाद के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों का एक मोटा आकलन ही इसका खुलासा कर सकता है। यह दीगर बात है कि समाज में उसके बीज मौजूद हों मगर सामाजिक स्थितियाँ कैसे बनाई–बिगाड़ी जा सकती हैं और कैसे दंगों की पृष्ठभूमि तैयार की जाती है, यह जानना समझना अति आवश्यक है, और दिलचस्प भी। दंगों की पृष्ठभूमि में राजनीति, राजनेता और माफिया लोग होते हैं। राजनेता अपने स्वार्थों के लिए दंगों का ताना–बाना बुनता है। यह कांग्रेस विरोध की राजनीति का भी सहभागी रहा है तो कांग्रेस के फीका पड़ने के बाद मंडल–कमंडल की राजनीति का भी। सबसे अहम है कि कांग्रेस के बनाए सामाजिक समीकरणों के टूटने और नए समीकरणों के बनने या लगातार टूटने–बनने की प्रक्रिया के जारी रहने की भारी कीमत लोगों को चुकानी पड़ी। लोगों की बलि सिर्फ राजनीतिक बदलावों ने ही नहीं ली, आर्थिक खासकर किसानी और औद्योगिक नीतियों व स्थितियों का करवट बदलना भी कई

रूपों में समाज में टूटन पैदा कर गया। पिछले दशकों में जोत घटने, सरकारी उपेक्षा और फसल की सही कीमत न मिल पाने के कारण किसान बेहाल हुए और आंदोलन की राह पकड़े। बाद में इनका राजनीतिकरण हो गया, किसान आंदोलन पीछे छूट गया और रह गए केवल किसान नेता। 'रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद विवाद' ने भी पूरे देश को सांप्रदायिकता की आग में झोंक दिया, कट्टरवाद बढ़ा। देश में दंगों का दौर चल निकला। दंगों के बाद हालात इस कदर खराब हुए कि लोगों का पुश्तैनी व्यवसाय तो ठप्प पड़ गया, लोग दंगे वाले शहरों में अपनी लड़की की शादी तक करने से कतराने लगे। इस डर से लोग मिली–जुली आबादी वाले पुराने शहरों की बजाए नए मुहल्लों का पता देने लगे।

दंगे प्रायोजित होते हैं जिनकी पृष्ठभूमि में सामाजिक असमानता, रोजगार, जातीय असमानता एवं धर्म मुख्य रूप से होते हैं। 'रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद' विवाद धर्म आधारित प्रायोजित दंगा था। 'मथुरा कृष्ण जन्मभूमि विवाद' भी उसी तरह का है जिस तरह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 'अयोध्या राम जन्मभूमि मंदिर' और काशी में भगवान विश्वनाथ मंदिर को माना है। मनोज मिश्र लिखते हैं– ''1990 में मथुरा में दंगा होते–होते बचा और दोबारा उसी मुद्दे को उठाने के लिए 1995 में विश्व हिन्दू परिषद ने विष्णु महायज्ञ की घोषणा करके किया था। मथुरा का विवाद काफी पुराना है। दोनों समुदाय एक दूसरे पर समझौता तोड़ने का आरोप लगाते हैं। ईदगाह के लिए जो शर्त तब की गई थी उसका उल्लंघन हुआ है यह कई मुसलमान नेता भी मानते हैं लेकिन वे यह भी कहते हैं कि समझौता तोड़ने में दूसरा समुदाय भी पीछे नहीं रहा। असल में करीब लाख आबादी वाले मथुरा शहर के हिन्दुओं को सालता है कि शहर में महज दस फीसदी अल्पसंख्यकों के लिए 40 मस्जिदें क्यों हैं। उन मस्जिदों में से कुछ पर तो साफ–साफ लिखा है कि यह मंदिर था इसे तोड़कर मस्जिद बनवाया गया। इन्हीं को हवा देकर 1990 में दंगा कराने की कोशिश हुई लेकिन वह सफल नहीं हो पाई।''[39]

अस्पृश्यता हमारे देश की मानवजनित समस्या है। समाज का एक ऐसा वर्ग जो अस्पृश्य है, जिसे मनुष्य समझा ही नहीं जाता। किसी देश का विकास तभी हो सकता है जब उसमें रहने वाले लोगों को समान अवसर प्राप्त हों, सभी को समान

समझा जाए। इस देश में सामाजिक क्रांति के नारे लगाने वाले गली–गली में हैं, पर अस्पृश्यता–निवारण को सामाजिक क्रांति का प्रतीक मानकर उसे दूर करने का प्रयास करने वालों की संख्या अंगुलियों पर है। मूलतः यह मानव मन के समझ का मामला है। 'अपने भंगी भाइयों के साथ' रिपोर्ताज में सामाजिक क्रांति और अस्पृश्यता निवारण को एक साथ देखने का प्रयास करते हुए कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं– ''आर्थिक–सामाजिक–क्रांति का अर्थ है बाहरी समानता और अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है भीतरी यानी मानसिक समानता। पहली कानून की शक्ति से, हिंसा के बल से संभव है, दूसरी मन के संस्कारों के परिवर्तन से, इसे यों भी कह सकते हैं कि पहली सामाजिक क्रांति और दूसरी है मानसिक क्रांति– पहली का चरम विकास दूसरी में है और दूसरी का पहली में। पत्ते और टहनियों का नहीं, मूल का ही यह परिवर्तन है।''[40]

धर्म एक ऐसा आवरण है जो सामाजिक असमानता को उचित ठहराने का प्रयास करता है। धर्म के आवरण में ही ऊँच–नीच का भेद जन्मता है, पलता और बढ़ता है। धर्म के अंध श्रद्धा की छाया में हमारा राष्ट्र लंबे समय से जीवित रहा है। धर्म शक्ति है– राष्ट्र चेतना। इस राष्ट्र चेतना को भारतीय संस्कृति भी कह सकते हैं। संस्कृति ही मूल जीवन स्रोत है। राष्ट्र के ह्रासकाल में जब जनजीवन का संपर्क इस मूल स्रोत से टूट गया और जाति के सर्वनाश का भय चारों ओर छाया तो राष्ट्र के कर्णधारों, संतों ने जनजीवन को उसे मूल–स्रोत के साथ अंध–श्रद्धा के सूत्र में बांध दिया। यह अंध–श्रद्धा अंधी–श्रद्धा भी रही और अंधों की श्रद्धा भी। यह एक प्रकार की विष–चिकित्सा थी। कुंभ के मेले में साधु सम्राट जगदगुरु शंकराचार्य का जुलूस निकला। चांदी की अम्बारी में विराजमान जगदगुरु शंकराचार्य और ये विशाल अंबारी ढो रहे हैं बारह मानवीय कंधे। मजदूरों के कंधे जिनकी देह फटे–मैले वस्त्रों से ढकी हुई है। यह अंबारी इतना विशाल और बोझिल कि हाथी की कमर पर पड़े तो वह अपने कंधे पुट्ठे साधने को विवश हो जाए। इस कारुणिक दृश्य को देखकर प्रभाकर जी लिखते हैं–

''मनुष्य कुछ पैसों के बल पर किसी मनुष्य को वाहन बना, उस पर चढ़े यह अहंकार की परिसीमा है!

मनुष्य कुछ पैसों के लिए अपने कंधों पर किसी मनुष्य को ढो चले यह विवशता की परिसीमा है।

जहाँ ये दोनों परिसीमाएँ मिलती हैं, वहीं नवयुग के पत्रकार का बेधक प्रश्न अपना समाधान पाता है कि हमारे देश में जब तक दीनता है– मानसिक दीनता, आर्थिक दीनता, सामाजिक दीनता– तभी तक धर्म की यह अम्बारी है और जिस दिन यह दीनता युग का सहरा ले, शक्ति का रूप धारण करेगा, उसी दिन, उसी क्षण ये कंधे यहाँ न होंगे और यह अम्बारी धड़ाम से धरती पर आ गिरेगा।

इस धड़ाम के साथ सब दिशाओं में एक गूंज उठेगी– अब यहाँ कोई राजा नहीं रहा और हमारे कान सुनेंगे– सामाजिक समानता की जय।''[41]

प्राकृतिक आपदाएँ उथल–पुथल मचाती हैं। सामान्य जीवन को अस्त–व्यस्त कर देती है। ये प्राकृतिक आपदाएँ अपनी प्रकृति में चाहे जितनी ही भयानक क्यों न हों, मानवीय व्यवहार इनकी भयानकता को और भी गहरा कर देता है। जनप्रतिनिधियों, सरकारी कर्मचारियों एवं समाजसेवियों के ताने–बाने से यह प्राकृतिक आपदा और भी अमानवीय हो उठती है। ये लोग अपने क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर नहीं उठ पाते और इनके घटिया स्वार्थ की शिकार संपूर्ण मानव जाति होती है। भीषण अकाल के समय लोगों को राहत सामग्री जो बाँटी जाती है उसे ठेकेदार जरूरतमंद तक पहुँचाते ही नहीं हैं। रास्ते में पानी जमीन पर गिरा देते हैं किन्तु प्यासे लोगों तक पहुँचाने भर की मानवीयता नहीं दिखा पाते। 'पानी सिर्फ आंखों में है' रिपोर्ताज में मणि मधुकर लिखते हैं कि अफसरों ने पानी पहुंचाने के ठेके दे दिए पर वह पानी सही जगह पर पहुँचता भी है या नहीं, इसकी फिक्र किसी को नहीं। कई ठेकेदार बाड़मेर से पानी लेकर चलते हैं और दो तीन मील पर उसे फेंककर लौट पड़ते हैं। पेट्रोल का खर्च बचता है। फिर आगे लूओं में हलाल होने कौन जाए।

एक अफसर को मैंने सारा हाल बताया और जोर देकर कहा कि आप चाहें तो मैं वह जगह दिखला सकता हूँ, जहाँ मेरे सामने पानी फेंका गया था। उसने बड़ी मासूमियत से बखान दिया, ''ये ठेकेदार ससुरे बदमाश होते हैं जी।''[42]

जनता के प्रतिनिधि जनता की सेवा हेतु होते हैं पर एक बार चुन लिए जाने के बाद वे अपने उत्तरदायित्वों को भूल जाते हैं। भूख और बेवसी से मरती हुई जनता का दर्द उनके लिए महज मजाक है। अपनी सरकार बचाने एवं उसे शर्मसार होने से रोकने के लिए वे कठोर सत्य को झूठ बनाकर पेश कर देते हैं। भूख से मरे हुए को बीमारी से मरना तथा उसे भीखमंगा बताकर सत्य को ढकने की कोशिश जनप्रतिनिधि द्वारा की जाती है जो प्राकृतिक आपदा को मानवीय त्रासदी में बदल देती है। देवदूतों की सुफेद टोपी और 'लाल फीता' वाली फाइलें सत्यान्वेषण के लिए तैयार है।

रेणु लिखते हैं– ''सत्य के प्रकाश को बयान से ढंकने की कोशिश हो रही है– ''अकाल नहीं है। मौतें नहीं हुई। खबरे झूठी हैं। अकाल की बात करने वाले गद्दार है, स्वार्थी हैं। सारे जिले में सिर्फ दो मौतें हुई– एक बीमार था, दूसरा भिखमंगा।''[43]

आजादी के सात दशक बाद भी हमारा देश छुआछूत, बाल–विवाह, देह–व्यापार और सामंती शोषण का शिकार है। समाज का एक तबका सिर पर मैला ढोने को विवश है। जमीन और जंगलों के पुश्तैनी मालिकों के हक छीने जा रहे हैं और विकास योजनाओं के विस्थापित मुआवजे और पुनर्वास की बाट जोहते दम तोड़ रहे हैं। ग्राम पंचायतों का हक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ले रही हैं तो महिला सरपंचों के अधिकारों पर उनके पतियों का कब्जा है। किसानों के जोत का रकबा, लगातार कम किया जा रहा है। उनके हितों में बनाई जा रही तथाकथित नीतियाँ उनके खिलाफ ही काम कर रही हैं। जाहिर है देश की मुख्य आबादी जो शहरों से दूर गाँवों में बसती हैं और जिसे कभी 'भारत की आत्मा' माना जाता था, लगातार हाशिए पर धकेली जा रही है।

जंगलों पर सरकारी आधिपत्य का सबसे ज्यादा खामियाजा उठा रही हैं– आदिम जनजातियाँ। देश का कोई भी कोना हो जंगलों से ये समुदाय बेदखल किए जा रहे हैं। देश के राज्य मध्य प्रदेश में ऐसा ही हुआ है। बांधों और अभ्यारण्यों के नाम पर जंगलों से उजाड़कर आदिवासियों को दूसरी जगह बसाया जा रहा है। सहरिया और बैगा जनजातियाँ इस मार को झेलने के लिए विवश हैं।

जनसंचार माध्यमों का दिन प्रतिदिन अमानवीय होते जाना, संवेदना को समाचार बनाकर बेचना, मोबाइल आदि का प्रयोग मानवजनित समस्याओं के कारण बनते जा रहे हैं। विज्ञान और तकनीकी मानव जीवन को जितना ही सुविधाजनक बनाते जा रहे हैं, जीवन को उतना ही मूल्यहीन भी बना रहे हैं। मोबाइल किशोरों का खूब 'अहित कर रहा है। एमएमएस और अश्लील तस्वीरों के आदान–प्रदान का मुख्य जरिया कैमरे से लैस मोबाइल ही है। मोबाइल सेवा प्रदाता कंपनियाँ किशोरों की बिगड़ती आदतों का व्यावसायिक लाभ उठाने के लिए तरह–तरह की योजनाएँ पेश करता है और किशोर बाजारपरस्त ताकतों से मात खा रहे हैं। वास्तव में इस दौर के किशोर सेक्स, ड्रग्स, शराब व अन्य असामाजिक आदतों की गिरफ्त में पड़ता जा रहा है। शराब और ड्रग्स के बढ़ते प्रयोग के पीछे कई वजहें हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मौजूदा शिक्षा व्यवस्था ने बच्चों को अंक प्राप्त करने की मशीन बनाकर रख दिया है। हर अभिभावक अपने बच्चों से परीक्षा में ज्यादा से ज्यादा अंक लाने की अपेक्षा रखने लगा है। इसके परिणामस्वरूप किशोरों पर मानसिक दबाव बढ़ा है और वे सिगरेट, शराब और ड्रग्स जैसी बुरी लतों के शिकार होते जा रहे हैं। पार्टियों के बढ़ते चलन ने भी उन्हें नशे का आदी बना दिया है। लड़के–लड़कियाँ ऐसा मानते हैं कि पार्टी के दौरान अधिक से अधिक झूमने–नाचने से साथियों के बीच उनके प्रभाव में वृद्धि होती है। इसके लिए ये नशीले पदार्थों का सहारा लेते हैं। जरायम की दुनिया में कच्ची उम्र के कारनामे आज की प्रमुख समस्याओं में से एक है। घर–बाहर का माहौल और बाजारवादी सहूलियत खास तबके के किशोरों के लिए खतरे का सामान बनती जा रही हैं। आईस्टीन ने कहा था– ''भौतिकी के तमाम नियम असत्य सिद्ध हो सकते हैं किन्तु एक नियम कभी भी असत्य सिद्ध नहीं होगा और वह है उष्मागतिकि का दूसरा नियम जिसके अनुसार ब्रह्मंड की 'इंट्रापी' सदैव बढ़ती जाएगी।''[44]

'इंट्रापी' का संबंध बेतरतीबी से है। यानी इंट्रापी के बढ़ने का अर्थ है– बेतरतीबी या अस्त–व्यस्तता का कमोबेश उसी अनुपात में बढ़ना। अगर आइंस्टीन की इस बात को जीवन के संदर्भ में देखने की कोशिश इसलिए करें कि विज्ञान भी जीवन का ही एक हिस्सा है और हमारी जमीन भी उसी ब्रह्मंड का ही एक हिस्सा

है तो वर्तमान ज्वलंत हालात और जीवन मूल्यों के बेकाबू हो चले ह्रास में इंट्रापी का दूसरा अर्थ अराजकता और तबाही भी हो सकता है।

रिपोर्ताज, वर्तमान की इसी अराजकता को जो भविष्य का मूल्य निर्धारण करती है, पकड़ने में समर्थ विधा है, क्योंकि रिपोर्ताज लेखक मूक द्रष्टा नहीं होता, वर्तमान की जमीन पर टिककर भविष्य देखने वाला स्रष्टा भी है। वह अपने समय एवं समाज की समस्याओं को गहराई से जानता है और उनकी पड़ताल भी करता है। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय लिखते हैं– ''रिपोर्ताज' का लेखक घटना का स्वयं अंश भी होता है उसका प्रत्यक्ष द्रष्टा भी, तब भी तो वह घटनाओं को देखकर उनका उत्सव, मेला, सम्मेलन, बाढ़, सूखा, युद्ध, अकाल, महामारी, क्रांति–यथातथ्य चित्रण करता है। ऐसी सक्रिय विधा में शब्द उसी प्रकार त्वरा पकड़ते हैं जैसे स्वचालित बंदूक से निकलने वाली गोली। यह स्वयं चालित रचना प्रक्रिया रिपोर्ताज लेखन के समय उपयुक्त शब्दों को स्वतः चेतना में अवतरित कर देती है। बाह्य प्रत्यक्ष घटना विद्युत की तरह झटके दे–देकर उसका श्रेष्ठ रचनात्मक तत्व कोंचकर बाहर निकाल देती है।''[45]

3.3 यांत्रिक दुर्घटनाएँ

वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगीकरण के युग में मानव जीवन मशीनों पर निर्भर होता जा रहा है। मशीनों पर मनुष्य की निर्भरता, जीवन को आसान बनाने के साथ–साथ आरामदेह भी बना रही है। इस आसान और आरामदेह जीवन में खलल तब पड़ती है जब ये हृदयहीन यंत्र मानवजीवन को रुई की तरह रौंद डालते हैं। तब सहसा यह वैज्ञानिक प्रगति और उससे निसृत यंत्र अभिशाप की तरह प्रतीत होने लगते हैं। रिपोर्ताज लेखक समय और बदलते परिवेश के प्रति सजग तो रहता ही है, बदलते हुए जीवन और उसके प्रभावों पर भ्झी उसकी पैनी दृष्टि रहती है। यही कारण है कि यांत्रिक दुर्घटनाएँ जेसी समस्याओं को भी रिपोर्ताज साहित्य का आधार बनाया गया और मार्मिक रिपोर्ताजों की रचना भी की गई।

मानव अपने प्राकृतिक जीवन में अत्यंत ही सरल रहा है। भोलापन उसके व्यवहार का एक महत्त्वपूर्ण स्वभाव था। सर्वत्र सरलता एवं सादगी का साम्राज्य था। जैसे–जैसे उसके जीवन में वैज्ञानिक प्रगति शामिल होती गई, मशीनों की दखलदांजी बढ़ती गई, उसका जीवन जटिलतर होता गया। बदलते परिवेश के साथ जीवन में बदलाव सिर्फ मानव जगत में ही नहीं हुआ, मानवेत्तर प्राणियों में भी हुआ। रिपोर्ताज कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने इस तथ्य को बड़ी बारिकी से पकड़ा है। लेखक वन प्रदेश में घूमने गए। प्रकृति की सुंदरता एवं वन्य–पशुओं का किल्लोल ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। वानर–दलों के खेल से लेखक अभिभूत हो गया। वन्य जीवन जो यंत्रों से दूर था, अत्यंत ही सरल और सहज था। घर लौटते समय वन–रास्ते में उसे वानर–दल की क्रोध भरी खों–खों सुनाई पड़ती है। पचास–साठ वानरों को एक जालीदार गाड़ी में ठूँस कर ले जाया जा रहा था। सभी वानरों में आक्रोश था और सभी के मुख पर क्रोध की कठोरता स्पष्ट ही दिख रही थी। वे एक दूसरे को फाड़ कर खाने को तैयार थे। प्रकृति में स्वतंत्र होने पर जो वानर–दल एक–दूसरे के साथ खिलवाड़ और आमोद–प्रमोद में जुटा था, मशीनी कैदखाने में एक–दूसरे को पिस डालने को उद्यत थे। एक वानर–शिशु को उसकी माता ने नोचना प्रारंभ कर दिया और उसके मस्तक को अपने दोनों हाथों से इस तरह दबाया कि खून बह निकला। यह मातृत्व के साथ पैशाचिकता का मर्मवेधक

संयोग था। लेखक इसे मशीनी सभ्यता का परिणाम मानते हैं। यह एक यांत्रिक दुर्घटना है जो मातृत्व में भी निर्दयता को प्रश्रय देती है। प्रभाकर लिखते हैं– ''मैं सोचने लगा, जो प्राणी उपवन में प्रेम की पुनीत प्रतिमा, सरसता की सुंदर निधि और स्नेह का सागर है, वही गाड़ी में बैठकर दानवता का अवतार, क्रोध की ज्वालामुखी एवं हृदय–हीनता की मूर्ति कैसे हो गया।''[46]

मशीनी सभ्यता के विकास ने यांत्रिक दुर्घटनाओं को जन्म दिया। कुछ दुर्घटनाओं का परिणाम तो तुरंत परिलक्षित होता है फिर धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है, परिदृश्य से ओझल हो जाता है। किन्तु कुछ दुर्घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनका प्रभाव कभी न समाप्त होने वाला होता है, पीढ़ी–दर–पीढ़ी बस स्थानान्तरित होता रहता है। सन् 1945 में जापान के नागासाकी और हिरोशिमा में परमाणु बम विस्फोट ऐसी ही यांत्रिक दुर्घटना है। भारत में भी 'भोपाल गैस त्रासदी' ऐसी ही दुर्घटना है जो अब भी अपने अस्तित्व के साथ मौजूद है और दुष्प्रभावी भी। 3 दिसम्बर 1984 की 'भोपाल गैस त्रासदी' ऐसी ही यांत्रिक दुर्घटना थी। गैस रिसाव की घटना सोये हुए लोगों के लिए मृत्यु बनकर आई। इस जहरीली गैस ने भोपाल और आस–पास के लोगों का नरसंहार किया। लोग डरे–सहमें रहने लगे। जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष छिड़ गया था। सर्वत्र व्याप्त डर और आतंक के वातावरण से लोग मुक्त नहीं हो पा रहे थे। 3 दिसम्बर 1984 : भोपाल रिपोर्ताज में शालिनी शर्मा लिखती हैं– ''ऐसा रहा यह गैस कांड। परन्तु अभी भी लोगों में इतना आतंक फैला हुआ है कि जरा सी बात से घबरा जाते हैं। एक समय ऐसा हो गया था कि लाशें जलाने या गाड़ने की जगह खत्म हो गयी थी। एक ट्रक की लाशें ठिकाने लग नहीं पाती थी कि दूसरा ट्रक आ जाता था।''[47]

भोपाल गैस दुर्घटना पर लिखित शशांक का रिपोर्ताज 'उस हवा के दंश' और शरद जोशी द्वारा रचित 'भोपाल गैस : नरमेघ का दर्दनाक हाल' रिपोर्ताज में इस त्रासदी का अत्यंत ही कारुणिक वर्णन मिलता है। ये रिपोर्ताज कल्पना पर आधारित न होकर अनुभूत सत्य पर लिखित है। रिक्की लांबा ने 'अब कैसे है! विषपायी बच्चे' रिपोर्ताज लिखकर इस दुर्घटना को जीवंत कर दिया है।

रफ्तार पर सवार आज का मानव दुर्घटनाओं के साये में साँस लेने को बाध्य है। सड़क–दुर्घटना और ट्रेन–दुर्घटना आज आम बात हो गयी है। आतंकवाद जैसी वैश्विक घटनाओं से हर साल जितने मनुष्य नहीं मरते, उससे ज्यादा मनुष्य सड़क दुर्घटना में मारे जाते हैं। ये दुर्घटनाएँ सिर्फ यांत्रिक दुर्घटनाएँ नहीं होती वरन मानवीय भूलों का यांत्रिकरण होती हैं। हमारे देश में लगभग कोई न कोई हादसा प्रतिदिन होता है जिनमें ट्रेन दुर्घटना आम है। 'मस्त लोगों के मरे हुए मन' रिपोर्ताज में ट्रेन दुर्घटना के संबंध में रघुवीर सहाय लिखते हैं– ''बिहार में बागमती के पुल पर की रेल दुर्घटना की खबर ने उन्हें छोड़ जिनके अपने सगे उस गाड़ी में थे, किसी को विचलित नहीं किया और इस बात पर कि चारों ओर मौत सरीखी भयानक उदासीनता है विरले ही विचलित हुए हैं।....

रेलगाड़ी गिर गयी, यह दुर्घटना का एक ही हिस्सा है। दूसरा हिस्सा यह है, हम अपने में मस्त हैं। दोनों को मिलाकर ही असल दुर्घटना का रूप बनता है।''[48]

मनुष्य धीरे–धीरे संवेदनशून्य होता जा रहा है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' का भाव संकुचित होता जा रहा है। हम इन त्रासदियों के अभ्यस्त होते जा रहे हैं।

यांत्रिक दुर्घटनाएँ सिर्फ स्थल की मोहताज नहीं होती। आकाश और जल भी इस सीमा से बाहर नहीं हैं। आए दिन विमानों के लापता एवं दुर्घटनाग्रस्त होने एवं समुद्र में जहाजों और नावों के डूब जाने की खबरे हमारे मानस को झकझोरती रहती हैं।

22 जून 1985 को पारादीप की 'आउटर एप्रोच चैनल' में चल रही डेजिंग के दौरान पानी जहाज के टकराने की घटना को केन्द्रित कर आशुतोष शर्मा ने 'जहाज और तूफान' रिपोर्ताज लिखा। क्षतिग्रस्त जहाज से बड़ी मुश्किल से लोगों को बचाया गया। जहाज समुद्र में डूब गया। आशुतोष शर्मा लिखते हैं– रात्रि ग्यारह बजे मैं और मेरे कप्तान– हम आखिरी लोग थे, जो नाव में कूदे। सामान कुछ तो लोग साथ लेकर कूदे, कुछ मछुवारे जाकर ले आये। जहाज छोड़ दिया। मैंने मुड़कर भी पीछे नहीं देखा। आगे का हिस्सा पानी के ऊपर था अभी भी। डूबने में उसे बारह घंटे से भी अधिक लगे। छोर पर आकर फिर सबकी गिनती हुई। No

causalties! जान में जान आयी। आराम से बैठकर सोचा– क्या–क्या हुआ और क्या कर सकते थे।''[49]

'असीम आकाश के बियावान में', 'जे.के. जूट स्टीम सिलिंडर विस्फोट', 'मनुष्य का आधार या विनाश की सभ्यता' आदि प्रमुख रिपोर्ताज हैं जिनमें यांत्रिक दुर्घटनाओं एवं उनसे उत्पन्न त्रासदी को आधार बनाया गया है। एक अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व की घटना पर लक्ष्मीचंद्र जैन ने 'असीम आकाश के बियाबान में' एक मूक कुत्ते की पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है जिसे वैज्ञानिकों ने एक दमघोट पिंजरे में बंद कर परीक्षण के लिए जमीन से 900 मील ऊपर अंतरिक्ष में भेज दिया गया। कानपुर के जूट मिल में हुए सिलंडर विस्फोट पर बलराम द्वारा रचित 'जे.के. जूट स्टीम सिलिंडर विस्फोट' एक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज है जिसमें घायल एवं उपेक्षित मजदूरों की स्थिति का सटीक वर्णन किया गया है।

आज के भागमभाग जीवन में यांत्रिक दुर्घटनाएँ सिक्के के दूसरे पहलू की तरह मानव जीवन में शामिल हो चुकी हैं। पत्र–पत्रिकाओं में इससे संबंधित सामग्री बराबर प्रकाशित होती रहती है किन्तु 'रिपोर्ताज' शीर्षक से नहीं। यांत्रिक दुर्घटना संबंधी रिपोर्ताज परंपरा समृद्ध नहीं हो पाई है। समृद्ध परंपरा के अभाव में ये रचनाएँ अन्य विषयों से घुलमिल गई हैं, फिर भी, निस्संदेह उनका स्वतंत्र अस्तित्व भी है।

3.4 साहित्यिक समस्याएँ :

हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य में विषय वैविध्य का विस्तार है। जब किसी साहित्यिक घटना या साहित्य से जुड़े प्रश्नों को रिपोर्ताज का विषय बनाया जाता है तो ऐसे रिपोर्ताजों को साहित्यिक रिपोर्ताज कहते हैं। जब किसी सार्वजनिक महत्त्व की किसी घटना या किसी साहित्यकार से संबंधित घटना वर्ण्य–विषय बनती है तो साहित्यिक रिपोर्ताज का सृजन होता है। अली मुहम्मद के शब्दों में– ''किसी साहित्यकार के स्मारक, जन्मभूमि, कर्मभूमि या किसी साहित्य सम्मेलन, गोष्ठी, पुरस्कार वितरण समारोह, अभिनंदन समारोह, पुस्तक विमोचन समारोह आदि की अनुभूतियों को आधार बनाकर रिपोर्ताज लिखे गए हैं। भाषा और साहित्य से जुड़ी समस्याओं पर लिखी रचनाएँ अंततः लेखकों की उन अनुभूतियों की देन हैं जो साहित्य और साहित्यकारों की मर्मभेदी पीड़ा, उनके स्मारकों की दुर्दशा देखकर अंदर–ही–अंदर छटपटा रही थीं।''[50]

ऐतिहासिक समस्याओं को आधार बनाकर जिन लोगों ने रिपोर्ताजों की रचनाएं की उनमें कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने अपने रिपोर्ताज संग्रह 'क्षण बोले कण मुसकाए में 'मरने के बाद मुलाकात', 'दो दिनः दो गोष्ठियां' और 'मध्य भारत की श्रद्धा के फूल' रिपोर्ताज संग्रहित किया है। 'मरने के बाद मुलाकात' रिपोर्ताज में रिपोर्ताज लेखक ने जहाँ एक ओर प्रेमचंद की प्रगतिशीलता की सुंदर व्याख्या की है वहीं दूसरी ओर प्रेमचंद की रचनाओं में वर्णित समस्याओं के माध्यम से समाज और साहित्य की तमाम समस्याओं को उजागर किया है। 'रंगभूमि' उपन्यास पढ़ते–पढ़ते 'प्रभाकर' जी की इच्छा होती है कि काश! प्रेमचंद मिल जाते तो उनसे अनेक प्रश्न पूछता। अचानक प्रेमचंद प्रकट हो जाते हैं, जिन्हें देखकर प्रभाकर जी कहते हैं कि आपके बारे में सुना था कि आपकी मृत्यु हो चुकी है और आप के 'हंस' ने प्रेमचंद–स्मृति–अंक भी' प्रकाशित किया था, पर आप तो वैसे के वैसे हैं। रिपोर्ताजकार ने 'गीता' के माध्यम से साहित्य की अमरता का मार्मिक ढंग से वर्णित किया है। वे लिखते हैं– वे बोले, ''बात क्या होती; हमारे महान जीवन–शास्त्र गीता में यह लिखा है कि 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।' यानी जिस तरह मनुष्य

अपने पुराने कपड़े छोड़कर नए बदल लेता है, उसी तरह आत्मा पुरानी देह छोड़कर नयी देह ग्रहण कर लेती है।

यह इस देश का दुर्भाग्य है कि अपने जीवन–शास्त्र में इतनी बड़ी बात लिखी होने पर भी, यहाँ मृत्यु को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है और जीवन की इतनी अधिक उपेक्षा की जाती है।

इधर–उधर क्यों भटकते हो मेरी तरफ ही देखो। मेरे आधी सदी के जीवन में जिन्होंने यही नहीं कि एक बार भी मेरी ओर प्रेम से नहीं देखा, बल्कि हमेशा जो अपने खूनी, पंजे मुझ पर कसते रहे, वे मृत्यु की साधारण घटना होते ही बदल गए और इतने जोर से रोए कि मेरे आत्मीयों का विलाप भी फीका पड़ गया।'

मैंने कहा, ''बाबूजी, बात यह है कि हमारे देश में नर्सों की बहुत कमी है और स्यापेवालियों की बहुतायत है। अच्छा, यह तो बताइए कि आजकल आप कहां हैं?''[51]

रिपोर्ताज लेखक का संशय है कि 'रंगभूमि' का प्रमुख पात्र 'सूरदास' को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिलती और उसके जीवन में चारों ओर निराशा और असफलता है। सूरदास असल में मानव जीवन का प्रतीक है और अपने जीवन संघर्षों से वह यह बतलाता है कि मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध युद्ध जारी रखना चाहिए और यदि उसमें असफलता मिले तो भी निराश नहीं होना चाहिए। सूरदास का संदेश ही यह है कि सफलता या असफलता मनुष्य के कार्य की कसौटी नहीं है। फल–प्राप्ति की आशा किए बिना हमें अपना कार्य करते रहना चाहिए। पर ऐसी स्थिति में जहाँ फल–प्राप्ति की कामना ही न हो, निष्क्रियता छा जाने का डर बनेगा और कोई भी परिश्रम नहीं करना चाहेगा। भारतीय विचारधारा शुरू से ही यह व्यक्त करती है कि मनुष्य तो कर्त्तव्य कर्म के लिए बाध्य है, फलों की चिंता में उलझना उसका काम नहीं है। इस संदर्भ को व्याख्यायित करने के लिए प्रेमचंद के माध्यम से कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर लिखते हैं– ''कृष्ण महापुरुष हैं और भक्तजन उन्हें साक्षात् भगवान मानते हैं, पर उन्होंने महाभारत का जो युद्ध कराया, यदि हम उसके परिणाम पर नजर डालें, तो उन्हें देश और संस्कृति का संहारक कह सकते हैं, पर असल में ऐसा नहीं है। इसी तरह सूरदास असफल होकर भी महान हैं और उसके

मुकाबले में ईसाई मिल मालिक जानसेवक सफल होकर भी हीन है। सूरदास मनुष्य को पराजय की हीनता और निराशा से बचाकर जैसे अपने रोम–रोम से पुकार रहा है– अरे पराजित और पिछड़े मनुष्य! उठ अधिकार के लिए युद्ध कर! हार मिले या जीत, बस तू युद्ध ही करता चल। युद्ध ही जीवन है, संघर्ष ही मनुष्यता है।''[52]

साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि किसी रचना का प्लाट रचनाकार को कहाँ से मिलता है? किसी अन्य रचना से या अपने समय और समाज से। स्पष्ट है कि कोई भी रचना समय–समाज निरपेक्ष नहीं हो सकती। रचनाकार जितना ही अपने समय और समाज की नब्ज को पहचानने की क्षमता रखता है, उसकी रचना उतनी ही सत्य की गहराइयों में उतरकर अपने समय–समाज को व्यक्त कर पाती है और भविष्य में अपनी प्रासंगिकता प्रमाणित करती रहती है। लेखक प्रेमचंद से जब पूछता है कि रंगभूमि का प्लाट थैकरे के 'वैनिटिफेयर' से आपने लिया है तो प्रेमचंद कहते हैं–

मुझे रंगभूमि का बीजांकुर एक अंधे भिखारी से मिला, जो मेरे ही गाँव में रहता था। एक जरा सा इशारा, एक जरा सा बीज लेखक के मस्तिष्क में पहुँचकर इतना विशाल वृक्ष बन जाता है कि लोग उस पर आश्चर्य करने लग जाते हैं। इंग्लैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार डिकेंस ने शिकरम गाड़ी के मुसाफिरों की जबान से 'पिकविक' नाम सुना और बस अपनी अमर हास्य कृति 'पिकविक पेपर्स' की रचना की। श्रीमती जॉर्ज इलियट ने अपने बचपन में एक फेरीवाले को कंधे पर थान रखे देखा था। इसी पर उन्होंने 'साइलेन्स मार्नर' नामक उपन्यास रचा। मर्मस्पर्शी रचना 'स्कारलैट लेटर' के बीज हायाने को एक पुराने मुकदमे की मिसल से मिले। दो सहेलियों की इस बहस से कि उपन्यास की नायिका सुंदर हो या नहीं 'जेन आथर' की सृष्टि हुई।''[53]

आजादी के बाद भाषा की समस्या गंभीर एवं राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरी। असमी, बंगाली, मराठे, गुजराती, सिख, हिन्दू इस तरह लड़ते दिखायी दिए जैसे वे जन्म–जन्म के बैरी हैं और उनमें मतभेद नहीं जन्मजात शत्रुता है। बम्बई और पंजाब में इस शत्रुता का जो प्रदर्शन हुआ उससे देश की एकता ही खतरे में पड़ गई क्योंकि अब देश के लिए भाषा नहीं, भाषा के लिए देश की बलि देने का

उपक्रम होने लगा था। 'दो दिनः दो गोष्ठियां' रिपोर्ताज में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर लिखते हैं –

''कितनी विचित्र बात है कि भाषा, जो मनुष्य को मनुष्य के पास लाती है, मनुष्य–मनुष्य की एकता का वाहन बनती है, मनुष्य को मनुष्य से खूंखार भेड़ियों की तरह लड़ा रही थी, क्योंकि वह सहयोग की राह भूल संघर्ष के पथ जा चढ़ी थी। पनपती देश वल्लरी के लिए यह स्थिति भयावह थी और राष्ट्र की बौद्धिकता चिंतित थी कि क्या राष्ट्र की पन्द्रह भाषाओं के बीच स्वस्थ संपर्क का कोई मंच नहीं हो सकता, जहाँ सब समान अधिकार और समान दायित्व के साथ बैठे, मिलें और देखें कि वास्तविक परिस्थितियाँ भावात्मक हैं, अभावात्मक नहीं, संयोगात्मक हैं, वियोगात्मक नहीं, संपर्कात्मक हैं, संघर्षात्मक नहीं, संक्षेप में संगठनात्मक हैं, विघटनात्मक नहीं।''[54]

भारतीय ज्ञानपीठ नामक शोध एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठान की स्थापना संस्कृत, प्राकृत, पाली, तमिल आदि भाषाओं के अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित भारतीय वाङ्मय के प्रकाशन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में सर्जनात्मक साहित्य रचना प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से श्री शांति प्रसाद जैन द्वारा 1944 में हुई थी। उसकी योजना है कि समस्त भारतीय भाषाओं में सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोपरि साहित्यिक सृजनात्मक कृति पर एक लाख रुपए प्रति वर्ष पुरस्कार दान के निमित्त अपेक्षित निधि प्रस्तुत कर, योजना का संचालन करे। इस संदर्भ में प्रभाकर जी लिखते हैं– ''पुरस्कार का संविधान नोबुल प्राइज और दूसरे विश्व–पुरस्कारों के संविधानों का अध्ययन कर बनाया जा रहा है और वह एक विशाल तंत्र का रूप लेगा। पर मान्या रमा रानी जी ने जो रूप–रेखा दी और चर्चा के बीच–बीच में श्री लक्ष्मीचंद्र जैन ने जो स्पष्टीकरण किए, उनसे स्पष्ट है कि पुरस्कार का संविधान शुद्ध प्रजातंत्री और प्रतिनिध्यात्मक होगा और संस्थापकों का हाथ उसमें स्पर्श मात्र ही रहेगा। संस्थापकों की यह वृत्ति भी मुझे स्पृहणीय लगी कि वे पुरस्कार पर अपना या अपने पूर्वजों का नाम लगाने के लोभ को संवरण कर सके और उनकी घोषणा भी उन्होंने अपनी ओर से न कर एक सार्वजनिक संस्था भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से की। निश्चय ही इसके लिए भविष्य उनका अभिनंदन करेगा।''[55]

समाज और साहित्य का आपस में गहरा संबंध होता है। समाज से पृथक साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साहित्य समाज से संपृक्त, उससे प्रेरणा प्राप्त सृजन होता है। साहित्यकार का उत्तरदायित्व समाज के उन वर्गों के हित के लिए लड़ना है जो शोषित और वंचित है। अगर साहित्यकार ऐसा नहीं कर पाता है तो वह और उसका साहित्य दोनों ही समाज के लिए कोई स्थान नहीं रखते। 'हड्डियों के पुल' रिपोर्ताज में साहित्यकार, पथभ्रष्ट साहित्यकार के ऊपर व्यंग्य करते हुए रेणु ने लिखा है– ''अच्छा यह तो बताओ! क्या यही के. एम. मुंशी, उपन्यासकार कन्हैयालाल मणिक लाल मुंशीजी हैं?

यदि हां तो लेखकों, कथाकारों यानी कलाकारों को प्रायश्चित करना ही होगा।.... गांधी को एक पत्रकार ने मारा और एक उपन्यासकार लोगों की मौत को अपने बयान से ढककर लाखों की जान लेने की कोशिश कर रहा है। कला के सुंदर चेहरे पर कालिख पुत रही है। ... मैं कहता हूँ– कलाकारों को यहाँ भेजो।

– तुम्हारे नृत्य के विशेषज्ञों ने मृत्यु का नंगा नाच नहीं देखा है।

– तुम्हारे कवि ने भूख से दम तोड़ते हुए इंसान के बेजान और पुरदर्द नगमें को नहीं सुना।''[56]

जो साहित्यकार शोषित और वंचित जनता के लिए संघर्ष नहीं कर सकता वह और उसका साहित्य प्रतिक्रियावादी साहित्य और साहित्यकार कहलाता है। ऐसे लोग रिपोर्ताज जैसी क्रांतिकारी विधा का विकास नहीं कर सकते। शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''रिपोर्ताज क्रांतिकारी संघर्ष का ही माध्यम बन सकता है, प्रतिक्रियावादी साहित्य का नहीं। हड़ताल को ही लें। उसमें पूंजीपति की दिलचस्पी क्या है, उसका स्वार्थ कहां है? हड़ताल तोड़ने के लिए (Black Legs) की भरती करने में, पुलिस से दमन कराने में, मजदूरों में फूट डालने में और इन जन विरोधी कार्यों का समर्थन करने वाला रिपोर्ताज किस–किस प्रकार पाठकों की सहानुभूति अपनी ओर खींच सकता है? इसलिए पूंजीवाद या उसके समर्थक 'कलाकार' रिपोर्ताज की कला का विकास नहीं कर पाते। वे उसे क्रांतिकारियों के हाथ में एक तीव्र अस्त्र बनते देख भयभीत भी होते हैं और उसकी निंदा भी करते हैं।''[57]

रामशरण शर्मा 'मुंशी' ने केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा की विकासपुरी, दिल्ली में भेंट और उनके साथ बिताए गए पल को केन्द्र में रखकर 'केदारनाथ अग्रवाल विकासपुरी में : कुछ झलकियाँ' रिपोर्ताज की रचना की। साहित्य के दोनों महारथियों के आपसी प्रेम एवं सौहार्दपूर्ण जीवन के ऊपर लिखा गया यह रिपोर्ताज हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य की अमूल्य धरोहर है। अवसर है केदारनाथ अग्रवाल के 76वें जन्मदिन का जो उन्होंने रामविलास शर्मा के साथ मनाया। रामविलास शर्मा ने केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का पाठ किया। 'माँ' कविता का पाठ करते समय रामविलास शर्मा का गला भर आया था। लेखक का दूसरा रिपोर्ताज 'अमृत लाल नागर विकासपुरी में : कुछ झलकियाँ' है जिसमें नागर जी के साथ बिताए पलों को लेखक ने रिपोर्ताज विधा में व्यक्त किया है। नागरजी और रामविलास शर्मा नागर जी के एक रिपोर्ताज की बात करते हैं। रामशरण शर्मा 'मुंशी' लिखते हैं–

बात फिर रिपोर्ताज पर आ गयी। मैंने पूछा : ''नागरजी, वह आपके किस संकलन में छपा है?'' उन्हें याद हो आयी। बोले : हां, वह है मेरे एक संकलन में।''

इस पर भैया बोले : ''इनके सबसे बढ़िया रिपोर्ताज 'गदर के फूल' में हैं। गाँव–गाँव जाकर इन्होंने उन्हीं लोगों की बोली में उनकी कही बातें लिखी हैं। इतनी मेहनत अब कौन करता है?

''हां, उस किताब का जिक्र,'' नागरजी बोले, ''डलहौजी के नाती ने भी अपने एक लेख में किया है।''

'रिपोर्ताज' और संस्मरणों पर बात होती रही। मैंने अपने मन की बात कह दी : ''हिन्दी में अब ऐसा जीवन्त लेखन देखने को नहीं मिल रहा जिसे पढ़कर लगे कि सब कुछ आँखों के सामने घटित हो रहा है। न वैसे संस्मरण, न रिपोर्ताज।''[58]

इसी संग्रह में सोना शर्मा द्वारा लिखे गए दो रिपोर्ताज 'सम्मान स्वीकार, पुरस्कार राशि स्वीकार नहीं' एवं 'व्यास सम्मान : आँखों देखा हाल' संग्रहीत हैं। पहले रिपोर्ताज में रामविलास शर्मा को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मानित किए जाने की घटना है जिसमें रामविलास जी ने सम्मान तो स्वीकार किया किन्तु

पुरस्कार राशि को यह कहकर लौटा दिया कि यह रुपया गरीब छात्रों के अध्ययन में खर्च किया जाए।

'व्यास सम्मान : आँखों देखा हाल' रिपोर्ताज रामविलास शर्मा को व्यास सम्मान से सम्मानित किए जाने के अवसर को आधार बनाकर लिखा गया है। व्यास सम्मान बिड़ला फाउंडेशन की ओर से दिया जाता है। इस सादे समारोह में के.के. बिड़ला, अजित कुमार (फाउंडेशन के एक सदस्य और प्राध्यापक किरोड़ीमल कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय), चयन समिति के अध्यक्ष प्रो. श्यामाचरण दुबे (भूतपूर्व कुलपति, आचार्य व निदेशक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज, शिमला), श्री बिशन टंडन (निदेशक, के.के. बिड़ला फाउंडेशन) एवं अन्य लोग उपस्थित हैं। रिपोर्ताजकार सोना शर्मा ने इस साहित्यिक वातावरण का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस अवसर पर अपने भाषण में हिन्दी भाषा एवं हिन्दी क्षेत्र की समस्याओं पर गहन प्रकाश डाला है। वे हिन्दी भाषा के विकास के संबंध में किए गए कार्यों को अपर्याप्त मानते हुए अधिक प्रयास पर जोर देते हैं। वे अपने उद्‌बोधन में कहते हैं–

''सबसे पहले हिन्दी प्रदेश की जो जनपदीय समस्याएँ हैं, जातीय समस्याएँ हैं, साहित्य के इतिहास की समस्याएँ हैं, उन्हें हल करने का काम है। ''बहुत सा काम ऐसा है जिसके लिए सर्वेक्षण की जरूरत है, जैसे भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण। ग्रियर्सन के बाद किसी ने सर्वेक्षण किया ही नहीं और जब आप सर्वेक्षण न करेंगे तो भाषा विज्ञान की सामग्री कहाँ से लेंगे।

''इसी तरह भारतेन्दु युग का बहुत सारा साहित्य पत्रिकाओं में बंद पड़ा है। कोई इस बात पर ध्यान नहीं देता कि इसको वहाँ से निकालकर पुस्तकों के रूप में छापना चाहिए।

''तो आप हिन्दी भाषा सीखेंगे कैसे? आपको अपने साहित्य की भाषा और साहित्य का पता कैसे चलेगा? हम लोग भाषा और साहित्य का जो इतिहास पढ़ते–पढ़ाते हैं, वह बहुत ही अधूरा है– समग्रता की दृष्टि से। इस समग्रता को लोगों के सामने लाना चाहिए। यह किसी एक आदमी का काम नहीं हो सकता,

किसी एक संस्था का काम नहीं हो सकता। सब लोग मिलकर करें, तब इसे पूरा करना संभव होगा।''[59]

ललित शुक्ल ने अपने रिपोर्ताज 'कवि का घर' के माध्यम से हिन्दी के महान कवि मलिक मुहम्मद जायसी के नगर 'जायस' की अवहेलना को मार्मिक अंदाज में व्यक्त किया है। जायस की महत्ता इस बात में है कि वह इतिहास की अनेक स्मृतियों संजोने वाला पुराना कस्बा है। नयी पीढ़ी को हिन्दी काव्य के अमर शिल्पी मलिक मुहम्मद जायसी, उनके स्थान– जायस कोई लगाव नहीं है। अवध की इसी धरती में डलमऊ में प्रेम की पीर के गायक मुल्ला दाउद हुए थे। अवध की यह धरती अपनी उर्वरा शक्ति से काव्य की एक उत्कृष्ट परंपरा को जन्म देती रही है। इस सांस्कृतिक गौरव के संरक्षण की ओर 'कुर्सियों' का ध्यान नहीं जाता। साहित्यकारों के नाम पर हुए सरकारी, गैर–सरकारी प्रयास सिंहासनी–सत्ता को चिढ़ाते हैं और स्वतंत्रता के बाद भी ऐसा लगता है कि अभी कोई उद्धारक कदम उठने वाला था उठाने वाला नहीं है। ललित शुक्ल लिखते हैं–

''जायसी के जन्म स्थान जायस और मृत्यु स्थल रामनगर दोनों के आस–पास उदासी का वातावरण है। यदि कोई मदरसा या स्कूल चलाया जाता है तो वह भी बहुत दीनहीन दशा में है।

तुलना करता हूँ विदेश के साहित्यकारों के स्मारकों से, तो पाता हूँ कि अपना देश अभी बहुत पीछे है। गोर्की, तालस्ताय, शेक्सपीयर, गोल्डस्मिथ जैसे अनेक नाम प्रसंगतः लिए जा सकते हैं। जिनके स्मारक और संग्रहालय नयी स्फूर्ति के साथ गौरवशाली परंपरा और सांस्कृतिक वैभव की गाथा कहते हैं। अपने यहाँ समारोहों में बड़ी–बड़ी घोषणाएँ की जाती हैं पर उन पर अमल करने वाला कोई नहीं दिखता।''[60]

भारतीय साहित्य के साथ–साथ पाश्चात्य साहित्यिक अनुभूतियों को आधार बनाकर लक्ष्मीचंद्र जैन, अक्षय कुमार जैन, रामकुमार आदि ने रिपोर्ताजों की रचना की। भारतीय साहित्यकारों के स्मारकों, जन्मभूमि एवं कर्मभूमि को केन्द्र में रखकर हरिमोहन, प्रकाशन दुबे आदि ने रिपोर्ताजों की रचना की। लेखकीय समस्या पर रघुवीर सहाय एवं रामनारायण उपाध्याय ने कलम चलाई है। धर्मवीर भारती, रघुवीर

सहाय, भदंत आनंद कौसल्यायन से साहित्यकारों ने भाषा की समस्या पर रिपोर्ताज लेखन किया।

3.5 ऐतिहासिक तथ्य

इतिहास की घटनाओं को विषय बनाकर लिखे गए रिपोर्ताज ऐतिहासिक रिपोर्ताज कहलाते हैं। इन रिपोर्ताज में ऐतिहासिक तथ्य का उद्‌घाटन होता है। रिपोर्ताज लेखक इतिहास के अनछुए पहलुओं को अपनी अनुभूति का प्रतिबिम्ब बनाकर साहित्य के ताने–बाने में बुनकर उन्हें रिपोर्ताज के रूप में प्रस्तुत कर देता है। लेखक इन घटनाओं का द्रष्टा या भोक्ता नहीं होता। अलीमुहम्मद के शब्दों में– ''इतिहास के किन्हीं अनछुए, विस्मृत पहलुओं को उजागर करने के लिए लेखक उन्हें आधार रूप में ग्रहण कर रचना का ताना–बाना बुनता है। लेखक उस घटना या दृश्य का भोक्ता या द्रष्टा नहीं होता, वह उन लोगों से तथ्य एकत्रित करता है जो उस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के भोक्ता या दृष्टा रहे हैं। कभी–कभी लेखक अनदेखे ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करने के लिए पुरातात्विक विभाग की भी मदद लेता है। इस प्रकार यहाँ इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं के उन तथ्यों को प्रकाश में लाया जाता है जिनका उल्लेख इतिहास में नहीं होता।''[61]

इतिहास को आधार बनाकर लिखे जाने वाले रिपोर्ताज ऐतिहासिक रिपोर्ताज के अंतर्गत आते हैं। इतिहास की वह घटना सामाजिक भी हो सकती है, धार्मिक भी या दैवी आपदा पर आधारित भी, वह घटना सैकड़ों–हजारों वर्ष पुरानी भी हो सकती है या कुछ वर्ष पूर्व की भी। डॉ. वीरपाल के अनुसार– ''यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि हमें रिपोर्ताज में निहित लेखक के उद्देश्य मंतव्य पर भी ध्यान देना चाहिए। किस प्रेरणा से उसने किसी रिपोर्ताज को लिखा, यह भी उसको ऐतिहासिक, राजनीतिक या धार्मिक बनाता है। ऐतिहासिक रिपोर्ताजों में प्रायः लेखक किसी अनछुए, अनदेखे ऐतिहासिक तथ्य का उद्‌घाटन करता है। इतिहास में अनुलिखित तथ्यों पर भी प्रकाश डालना यहाँ लेखक का उद्देश्य होता है।''[62]

जिन लेखकों ने इतिहास को अपने रिपोर्ताजों का विषय बनाया है उनमें कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रांगेय राघव, भगवतशरण उपाध्याय, लक्ष्मीचंद्र जैन, अमृत लाल नागर, मणि मधुकर, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवसागर मिश्र, धर्मवीर भारती आदि प्रमुख हैं।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध रिपोर्ताज संग्रह है 'क्षण बोले कण मुसकाए'। इस रिपोर्ताज संग्रह में 'अब हम स्वतंत्र हैं', 'मस्जिद की मीनारें बोली', 'लाल किले की ऊँची दीवार से' एवं 'लाल मंदिर की छाया में' आदि ऐतिहासिक घटना प्रधान हैं। 'युक्त प्रांत की असेम्बली में', लखनऊ कांग्रेस के उन दिनों में', 'कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में' आदि रिपोर्ताज राजनीतिक पृष्ठभूमि से संबंधित हैं। प्रभाकर जी के रिपोर्ताज बहुआयामी हैं। उनमें सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक जागरुकता के साथ–साथ इतिहास के प्रति लगाव एवं उज्ज्वल भविष्य के प्रति एक आशा है।

स्वतंत्रता, देश–प्रेम एवं ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता को प्रभाकर जी ने अलग ढंग से व्यक्त किया है। युग–बोध और युग–चिंतन इनके रिपोर्ताज में गुंफित रहते हैं। भारत की आजादी एक ऐसी घटना थी, जो अपने साथ खुशी के साथ–साथ विषाद भी लेकर आई। भारत विभाजन और सांप्रदायिकता की बाढ़ ने इस आजादी की खुशी को गम में बदल दिया। भारतवासी इससे उबर नहीं पाए कि चोरबाजारी, कालाबाजारी और राजनीतिक स्वार्थों ने आजादी को और भी दुखपूर्ण बना दिया। भारतवासी आजाद थे किन्तु उन्हें अपने को आजाद मानने में काफी समय लग गया।

प्रभाकर जी का मानना है कि हमारे देशवासियों में स्वतंत्र मानव के अधिकार की भावना तो जाग उठी है पर स्वतंत्र मानव के कर्त्तव्य की भावना अभी नहीं जगी है। जिस दिन हमारे देशवासियों में स्वतंत्र मानव के कर्त्तव्य की भावना जाग जाएगी उसी दिन हमारी स्वतंत्रता का अनुष्ठान पूरा होगा। प्रभाकर के रिपोर्ताजों में मानवता की जबरदस्त वकालत की गयी है। आजादी के समय देश में हुए सांप्रदायिक दंगे ने देश को झकझोर कर रख दिया था। धर्म एवं संप्रदाय के नाम पर जितनी मारकाट मची, इतिहास में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने अपने रिपोर्ताजों के माध्यम से जहाँ इस सांप्रदायिक वैमनस्य को निरूपित कर रहे थे वहीं दूसरी ओर इसका समाधान भी प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे थे। हिन्दू–मुसलमान, मंदिर–मस्जिद से बड़ी है– इंसानियत। उनका मानना है कि जो इंसान नहीं है वह खुदापरस्त नहीं हो सकता। 'मजिस्द की मीनारें बोलीं'

रिपोर्ताज में वे लिखते हैं– ''आज की बात तो बस इतनी ही है कि इंसान यह समझ ले कि धर्म विश्वास की चीज है, इसलिए जिनका विश्वास पूजा में है, वे पूजा करें और जिनका नमाज में है, वे नमाज पढ़े, पर इंसान की सबसे जरूरी चीज इंसानियत है। इंसान पूजा करे या नमाज पढ़ें पर यदि उसमें इंसानियत नहीं है तो वह धर्मात्मा–खुदापरस्त नहीं हो सकता।''[63]

डॉ. वीरपाल वर्मा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के निबंधों के विषय में लिखते हैं– ''इनके ऐतिहासिक रिपोर्ताजों में सांप्रदायिक सद्भाव, भाईचारे एवं देश की एकता–अखंडता के लिए जबर्दस्त अपील है। इतिहास में लिपे–पुते सांप्रदायिक कटु तथ्यों को उघाड़कर समाज में विष घोलने में उन्होंने अपनी लेखनी का पराक्रम नहीं दिखाया। यद्यपि लेखक ने कहीं–कहीं किसी की निंदा की है तथापि वह निन्दा सकारण है और उसमें इतनी शालीनता है कि एक बारगी उस ओर ध्यान नहीं जाता। 'प्रभाकर' जी के ऐतिहासिक रिपोर्ताजों की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने विवादास्पद विषयों पर लेखनी नहीं चलाई, अपितु समाज के लिए उपादेय वर्तमान विषयों पर ही लिखा।''[64]

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के रिपोर्ताजों में ऐतिहासिक चेतना को वैज्ञानिक धरातल पर विश्लेषित किया गया है। लाल किले को चेतना प्रदान करते हुए वे उसे भारत के मध्यकालीन इतिहास के साथ–साथ देश के बनने–बिगड़ने का प्रत्यक्ष साक्षी बना देते हैं। लेखक 15 अगस्त 1951 को भारतीय स्वतंत्रता की पांचवीं जन्मतिथि पर लाल किले पहुँचता है। लाल किला एक हजार वर्षों का इतिहास समेटे खड़ा है। लाल किला अपने गौरवशाली अतीत को याद करता है, साथ ही उस रक्त रंजित इतिहास को भी जिसका वह प्रत्यक्ष गवाह रहा है। किन्तु आजादी के बाद लाल किला जिस घटना का गवाह बना, वह उसे आश्चर्यचकित करती है। लाल किला कहता है–

''मैं मनुष्यों का निर्माण हूँ और सदा मनुष्यों के साथ रहा हूँ, पर मैंने सदा मनुष्य को मनुष्य का खून पीने की तैयारी करते ही देखा है। मेरे द्वार से जो आदेश दिए गए हैं, उनका सार है : ''मारो, काटो और मिटा दो।'' इन आदेशों को सुनते–सुनते मैंने मान लिया था कि इंसान भी एक जंगली खूनी जानवर ही है, पर

इधर कुछ दिन से मेरे दरवाजे पर एक नया झंडा लगा है। उसमें केशरिया, सफेद और हरी, ये तीन पट्टियां हैं और बीच की पट्टी पर एक चक्र का निशान है। इस झंडे की छाया में अब जो नए संदेश और आदेश दिए जाते हैं उनमें प्यार, मोहब्बत और नयी रचनाओं की बातें होती हैं। कहने का ढंग भी हुंकार और खा–फाड़ का नहीं, आ बैठकर का होता है। यह सब सुनकर मैं सोचता हूँ कि एक नयी दुनिया में पहुँच गया हूँ और अब इंसान भी जंगल की झाड़ियों से निकलकर अपने घर आ गया है। मुझे लगता है, इंसानियत ने अब नयी जिंदगी पायी है।''[65]

राजनीति और इतिहास का पारस्परिक घनिष्ठ संबंध है। कदाचित यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए अधिकांश रिपोर्ताजों में इतिहास और राजनीति अंतर्निहित है। राजनैतिक रिपोर्ताज को ऐतिहासिक भी समझा जा सकता है और वह ऐतिहासिक हो सकता है क्योंकि वर्तमान की राजनीति ही भविष्य का इतिहास बनती है। अली मुहम्मद के शब्दों में– ''एक प्रकार से देखा जाए तो पाश्चात्य और हिन्दी साहित्य में इस विधा का आरंभ ही राजनैतिक उथल–पुथल के बीच हुआ। प्रकाश चन्द्र गुप्त जब रिपोर्ताज को युद्ध की खंदकों में जन्मी विधा कहते हैं तब वे निश्चित रूप से इसके राजनैतिक पहलू की ओर इंगित करते हैं। रूसी क्रांति के प्रत्यक्षदर्शी जॉनरीड ने 'टैन डेज देट शुक दा वर्ल्ड' और द्वितीय विश्वयुद्ध के साहसी लेखक व सैनिक इलिया एहरेन वुर्ग ने 'फॉल ऑफ पेरिस' रचना राजनैतिक उथल–पुथल के बीच ही लिखी।''[66]

हिन्दी साहित्य में भी प्रारंभिक रिपोर्ताजों के विषय अधिकांशतः राजनैतिक रहे। यदि हम भारतीय परिस्थितियों को देखें तो राजनैतिक उथल–पुथल के समय ही हिन्दी रिपोर्ताज का प्रारंभ हुआ। हमारे देश में स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर था। देश में एक ओर वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश भर रहा था तो दूसरी ओर स्वतंत्रता की आकांक्षा दिन–प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी। अली मुहम्मद के शब्दों में– ''स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी रिपोर्ताज दोनों ने अपने क्रांतिकारी तेवरों से राजनैतिक व्यवस्था को हिला कर रख दिया। इस समय रिपोर्ताज का विकास क्रांतिकारी परिस्थितियों के सहारे तेजी से हुआ। इसे क्रांतिकारी साहित्य के रूप में मान्यता भी संभवतः इसी समय मिली।''[67]

3 नवम्बर 1947 को उत्तर प्रदेश असेम्बली का पहला अधिवेशन प्रारंभ हुआ। किसी भी राज्य के लिए यह ऐतिहासिक एवं गौरवशाली क्षण है कि आजादी के बाद स्वतंत्र भारत में वह अपने असेम्बली का कार्य स्वतंत्र रूप से प्रारंभ कर सके। असेम्बली में ढेर सारे मुद्दों पर चर्चा हुई। सदस्यों ने अपने–अपने विचारों द्वारा सहमति एवं असहमति दर्ज कराई। हिन्दी के प्रस्ताव पर सदन दो भागों में बँट गया था। एक, हिन्दी के पक्ष में, दूसरा हिन्दुस्तानी के पक्ष में। हिन्दी का प्रस्ताव पास हो गया और मुस्लिम लीगी 'वाक आउट' कर गए। इस ऐतिहासिक क्षण में असेम्बली में मौजूद प्रभाकर जी लिखते हैं कि– ''हिन्दी का प्रस्ताव पास हो गया। इसका अर्थ हुआ प्रांत की आत्मा उसे वापस मिल गई। आशा करनी चाहिए कि बिहार और मध्य प्रांत भी शीघ्र ही अपने यहाँ यह कदम उठाएँ और संविधान– परिषद भी इसी राह आएगा। प्रांतों की भाषाओं के मनके अपनी–अपनी जगह रहेंगे और हिन्दी का सूत्र उन्हें एक में बांधे रहेगा।

क्या हिन्दी की विजय हिन्दुओं की विजय है? नहीं, यह सांप्रदायिकता के विरुद्ध राष्ट्रीयता की स्मरणीय विजय है।''[68]

इतिहास प्रसिद्ध 'पाम्पे आई' की प्राकृतिक आपदा को आधार मानकर लक्ष्मीचंद्र जैन ने 'जब पाम्पे आई को प्रलय ने वरा' रिपोर्ताज लिखा। लेखक ने अपने अनुभूतिजन्य कल्पना के आधार पर इस प्रलय को ऐतिहासिक बना दिया। 'इतिहास और कल्पना' शीर्षक से प्रकाशित यह रचना 'पाम्पेई' की विनाश लीला के अनेक मार्मिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करती है। लक्ष्मीचन्द्र जैन की लेखन प्रतिभा से युक्त यह रिपोर्ताज, हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य की अद्वितीय रचना है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं– मेरी दृष्टि से इस विधा को कला की परिपूर्ण पालिश देने का श्रेय लक्ष्मीचंद्र जैन को प्राप्त है। उनके लिखे रिपोर्ताज– जब पाम्पेआई को प्रलय ने वरा, गंगा–वोल्गा के संगम पर, असीम आकाश के बियावान में, और एक डाकू : दो खतः तीन दृष्टियां आदि हिन्दी साहित्य के ऐसे रत्न हैं जो किसी भी भाषा–सरस्वती के कंठहार में प्रदीप्त हो सकते हैं। उनकी दृष्टि की सूक्ष्मता, गहरे अध्ययन की पृष्ठभूमि, भाव–नियोजन और संदेश दान की क्षमता अनन्य है।''[69]

सन् 1857 की क्रांति से जुड़ी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के लिए अमृतलाल नागर ने संयुक्त प्रांत आगरा व अवध के गाँव–गाँव घूमकर गदर संबंधी स्मृतियाँ एवं किंवदंतियाँ आदि एकत्र किए। ऐसा उन्होंने अपनी कहानी को पूरा करने के लिए किया। दिन–प्रतिदिन गदर से संबंधित लोग छीजते जा रहे थे। सत्तावनी क्रांति के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गए इतिहास के अभाव में जनश्रुतियों के सहारे ही इतिहास की पहचान सही ढंग से की जा सकती है। यह सत्य है कि इतिहास में कुछ महत्त्वपूर्ण लोग स्थान पा जाते हैं, पर कुछ ऐसे लोग भी स्थान पा जाते हैं जो इसके अधिकारी नहीं हैं। कुछ लोग स्थान पाने के अधिकारी हैं पर नियति उन्हें गुमनामी के अंधेरे में धकेल देती है। नागर जी ऐसे बलिदानियों को भी पहचान दिलाना चाहते थे। वे लिखते हैं– ''गदर के नायकों में अनेक ऐसे हैं जो मुझे नकली लगते हैं और जिनका ढिंढोरा पीटना अब बंद हो जाना चाहिए और बहुत से ऐसे नायक हैं जो अब तक छिपे पड़े हैं या दुर्भाग्यवश गलत मूल्यांकन के शिकार हो गए हैं। मैं केवल राजा–रजवाड़ों में ही नहीं, बल्कि जन साधारण के उन शहीदों को भी पहचानना चाहता हूँ जो हमारी प्रणामांजलि प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी हैं। मुझे एक नए शहीद का नाम मिलता है तो मुहावरे की रीति में मेरा एक सेर खून बढ़ता है। मैं कोरी व्यक्ति पूजा या विगत वैभव की रोमाँटिक परिपाटी का पुजारी नहीं। परपंराओं को इसलिए पहचानना चाहता हूँ कि उनमें कौन–सी ऐसी सशक्त हैं जो हमें आज भी अपने समय और परिस्थितियों से जूझने के लिए नया रूप धारण कर प्रेरणा दे सकती है। सौ वर्ष पहले के लोग भले ही देश को नक्शे के रूप में न जानते हों, मगर अपनी धरती की मिल्कियत अपने पास नहीं है तो क्या है?''[70]

'गदर के फूल' पढ़कर सन् 1857 की ऐतिहासिक क्रांति साकार हो उठती है। भगवतशरण उपाध्याय के रिपोर्ताजों में 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर', 'ठूठा आम और पुरातत्व का रोमांस' संग्रह प्रमुख हैं। भगवतशरण उपाध्याय की दृष्टि इतिहास को समग्रता में देखने की है। 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर' रिपोर्ताज संग्रह में रिपोर्ताज लेखक ने 'नारी', 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', 'वैश्य', 'शूद्र', 'दास', 'अंत्यज' और 'लेखक' शीर्षक से रिपोर्ताज लिखे। ये रिपोर्ताज भारतीय

समाज के मानवीय अंगों की आपबीती है जिसमें इनके उद्‌भव और विकास को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। 'नारी' रिपोर्ताज में वे लिखते हैं –

''मैं नारी हूँ– भारतीय नारी, मेरी कहानी अभिशप्त की है। इस कहानी के प्रसार पर वेदना का विस्तार है, रक्त का रंग उस पर चढ़ा है, दुर्भाग्य के कीचड़ में वह सनी है।

मैं नारी हूँ, पितृसत्ताक–युग से पूर्व मातृसत्ताक–युग की भारतीय नारी, जिसने वनों का शासन किया, जनों का निग्रह। तब मैं नितान्त नग्नावस्था में गिरि शिखरों पर कुलांच करती थी, गुहा–गहुवरों में शयन करती थी, वन–वृक्षों को आपाद–मस्तक नाप लेती थी, तीव्र गतिका नदियों का अवगाहन करती थी।''[71]

इन रिपोर्ताजों में ऐतिहासिक तथ्यों की गहन पड़ताल की गयी है। ऐतिहासिक तथ्यों की भरमार से कभी–कभी यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि कहीं हम इतिहास की पुस्तक तो नहीं पढ़ रहे हैं। लेखक ने इतिहास के उन अनछुए पहलुओं को भी उजागर किया जो इतिहासकार से छूट गए। डॉ. वीरपाल वर्मा लिखते हैं–

''डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने 'नारी' 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', 'वैश्य', 'शूद्र' आदि रिपोर्ताजों में इन जातियों के उत्कर्ष और अपकर्ष की बड़ी रोचक, वास्तविक एवं मार्मिक कहानी कही है। हजारों वर्ष पूर्व से लेकर आज तक जितने भी उतार–चढ़ाव इन जातियों ने देखे उन सबका मनोरंजक लेखा–जोखा इन रिपोर्ताजों में हैं। ये रिपोर्ताज तत्कालीन जातियों के मन में चलने वाले संघर्षों, उनकी प्रवृत्तियों एवं विवशताओं का दस्तावेज है। इनमें तथ्यपूर्ण प्रामाणिक इतिहास भी है और कुछ तत्कालीन वे पहलू भी जिनको इतिहासकारों ने प्रायः अनदेखा किया है।''[72]

'शूद्र' रिपोर्ताज में शूद्रों की उत्पत्ति, विकास एवं वर्तमान में उनकी स्थिति का ऐतिहासिक निरूपण किया गया है। ऋग्वेद से लेकर अब तक के उनकी बदलती–बिगड़ती स्थिति का वर्णन है। शूद्र जो सेवक है, लांक्षित और प्रताड़ित हैं जिसके कराह की गूंज युग–युग के आकाश में भरी पड़ी है, जिसके चीत्कार से

दिशाएँ प्रतिध्वनित हैं तथा जिसके आँसुओं से गंगा–जल का कण–कण खा है। शूद्रों के उद्‌भव एवं विकास के संबंध में लिखा गया है–

''मैं स्वयं सिद्ध नहीं हूँ, समाज सिद्ध हूँ, स्वयं शूद्र नहीं, आर्य शूद्र हूँ। मेरा प्रारंभ ऋग्वेद के पुरुषसूक्त से है, उस पुरुष ब्रह्म के पदों से जिसके उरू से वैश्य, बाहुओं से क्षत्रिय और मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। यह तो मेरा सैद्धांतिक प्रारंभ है, परन्तु मेरा ऐतिहासिक आरंभ और पुराना है, जब 'विशों' की वर्ग–विशिष्ट पंक्तियों में किंकरों की किंकर्त्तव्यता उनकी निम्नगामिता का कारण बनी, जब विशों का एकांग न तो पौरोहित्य का आदर पा सका, न राजन्य का सौजन्य और न वह वैश्य का कृषिकर्म में संभाल सका, अर्थात् जब उसके चपल कर न तो पशु–हनन कर सके, न शत्रु–हनन और न ही पशु–चारण या भूमिकर्षण और तब जब आर्य ने अपने इन्द्र के निरंतर वज्र–प्रहार से हमारे लौह–दुर्गों को तोड़ दिया।''[73]

''मैं मजदूर हूँ' निबंध में मजदूरों के जीवन का इतिहास वर्णित है, उनका उद्‌भव और उनके द्वारा संसार का निर्माण वर्णित है। संसार का विकास आज जहाँ तक भी पहुँच गया हो किन्तु मजदूरों की स्थिति आज भी नरकीय है। आज भी उनके पास न घर है और न द्वार। उनका जीवन मीलों की दीवारों की आड़, धुएँ के बादलों की घनी छाया और टाट–फूस–टीन से घिरा है। ऊँची–दुनिया में, संसद में मजदूरों की बेहतरी के लिए कानून बनते किन्तु उनकी स्थिति जस की तस। उनके जीवन में चारों ओर अंधेरा है, घरौंदे के पीछे, उन मकान कहलाने वाले घरौंदे के पीछे जहाँ दिन–रात की मजदूरी से जीवन थका–माँदा टकराता है और टकरा–टकराकर टूट जाता है। बैलगाड़ी से रथ बने, रथ से महारथ। औद्योगिक क्रांति के पश्चात भाप से चलने वाले इंजन गढ़ दिए गए और जहाज भी बना दिए गए। आज संसार अंतरिक्ष की दूरियाँ भी माँप चुका है पर मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। इतिहास की छाया वर्तमान में भी मजदूरों का साथ नहीं छोड़ रही है। इस रिपोर्ताज में लेखक एक ऐसे प्रश्न से टकराता है जिसका उत्तर न तो इतिहास में था और न ही भविष्य में मिलता जान पड़ता है–

''दुनिया में क्या नहीं? कौन सी चीज मैंने अपने हाथों नहीं पैदा की? मेरे सहारे कारखाने अमित मात्रा में माल उगलते जा रहे हैं। मैं तृण से ताड़ बनाता हूँ,

तिल से पहाड़। नगर को ढो सकने वाले जहाजों से लेकर सुई तक कोई महान और अदनी चीज नहीं जो मेरे स्पर्श के जादू से जीवन धारण न कर लेती हो। पूरी यह सब कुछ भी मेरे लिए क्यों नहीं? मैं इनमें से तिनका तक भी नहीं ले पाता। मैं भूखा और नंगा हूँ पर क्या ये मिलें जिनमें मैं खाने पहिनने का अपार सामान तैयार कर रहा हूँ मेरा पेट नहीं भर सकतीं, तन नहीं ढक सकती? इसका उत्तर भला कौन देगा– इन्हें जो बनाता है वह मैं, या जिनके लिए बनाता हूँ वे?''[74]

'अभिसार का आकर्षण' रिपोर्ताज में अभिसारों के ऐतिहासिक परंपरा का वर्णन मिलता है। विवाह नामक संस्था का निर्माण इसलिए किया गया था कि मनुष्य संयमित होकर समाज में रह सके, नियमों और आचारों का निर्वाह कर सके। विवाह इसलिए भी कि मनुष्य व्यवस्था के प्रति कम खतरनाक हो सके, समाज के प्रति अधिक श्रद्धावान पर कड़ी व्यवस्था के बाद भी संकेत स्थान बनते चले गए और उनकी परंपरा में अभ्सिार की तरंगे उठती और विलीन होती चली गयीं। भारत के महान व्यक्तित्व वशिष्ठ, अगस्त्य, देवव्रत, व्यास, धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर, कर्ण, पाण्डव आदि न जाने कितने इन्हीं अभिसारों के परिणाम हैं जो अपने–अपने समय में समाज व्यवस्था का संचालन किए। भगवतशरण उपाध्याय इस निबंध में इतिहास वर्णित अभिसारों के विषय में लिखते हैं– ''इन अभिसारों का आकर्षण कभी मिटा नहीं, उनकी महिमा बढ़ती ही गयी और हमारे महाकाव्यों के एकांतिक वीर और समाज के नायक उन्हीं से प्रजनित होकर समाज की रक्षा के लिए उन्हीं विरुद्ध विधि–निषेध की व्यवस्था देने लगे।''[75]

'दिल्ली की आपबीती' रिपोर्ताज दिल्ली के एक हजार साल के ऐतिहासिक यात्रा को आत्मकथा के अंदाज में लिखा गया है। इस रिपोर्ताज में एक हजार साल के इतिहास के बनने–बदलने एवं बिगड़ने का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में दिल्ली अनेक नामों से इस देश की राजधानी रही। इसने अनेक शासकों को देखा है, विदेशी आक्रमणों को सहा है। सल्तनतों की राख इसके तन पर रमी है और खंडित राजमुकुटों के चूरे आज भी झिलमिला रहे हैं। दिल्ली ने प्रतिहार और गढ़वाल, तोमर और चौहान, पठान और तुर्क, खिलजी और तुगलक, सूर और सैयद, लोधी और मुगल, मराठे और अंग्रेज सबको देखा है और उनके बीच

दर्दनाक खूंरेजी, चंगेज, तैमूर, नादिर और अब्दाली के आक्रमणों को भी देखा है। दिल्ली, कहती है– ''हजार साल की जिंदगी में बराबर बनती–बिगड़ती रही हूँ। आज भी नयी दुल्हन की सजधज से खड़ी हूँ अपनी पीठ पर सिरी, तुगलकाबाद, जहाँपनाह, फरोजाबाद, शाहजहानाबाद के खंडहर और अपने सीने पर नयी दुनिया के नए महलों के नयी राष्ट्रीयता के अरमान उठाए। जानती हूँ, यही आखिर नहीं है, पर जो हो रहा है, होने वाला है, उससे उदासीन भी नहीं हूँ– अभी तो चैन से गुजरती है आकबत की खुदा खैर करे।''[76]

मणि मधुकर के रिपोर्ताज संग्रह 'सूखे सरोवर का भूगोल' के तीन रिपोर्ताज 'बैराठ, वाणगंगा और अज्ञातवास', 'आदिम ताल में डूबे हुए रात दिन' 'हल्दी घाटी की गुफाओं में', ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संबंधित रिपोर्ताज हैं। पहले रिपोर्ताज में महाभारतकालीन घटनाओं को वर्णित किया गया है जबकि शेष दोनों रिपोर्ताज आदिवासियों और महाराणाप्रताप से जुड़ा है। भील तथा अन्य आदिवासियों ने महाराणाप्रताप को सहारा एवं खूब सारा प्यार दिया था। भील अनेक खांपों में बंटे हुए हैं– डाबी, लेखिया, गेटार, मारगट, दूबल, अलिया, लौटिया, कलेदा, चुर, नौचिया आदि। किन्तु ये भील आज भी उपेक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। मालिक का कर्ज न पूरा कर पाने की एवज में अपने बेटे को मालिक के पास गिरवी रखने की बुरी प्रथा आज भी भीलों के समाज में चली आ रही है। कितने ही आदिवासी सेठ–साहुकारों से ऋण लेते हैं किन्तु जब चुका नहीं पाते हैं तो प्रायः अपने बच्चे को रेहन रख देते हैं। ऐसे कितने ही बच्चे हैं जो बड़े हुए और जिंदगी भर गुलामी का फंदा गले में लटकाए हुए मर गए। पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं पर कर्ज से मुक्ति नहीं मिलती। सूदखोर का शिकंजा कसता चला जाता है। ऐसी बदतर जिंदगी जीने वाले भीलों को स्वतंत्रता प्रिय हैं। वे जीवन सत्य, न्याय और ईमानदारी से जीना चाहते हैं। ऐतिहासिक चरित्र भूलिया भील ने राणा प्रताप को आजाद रखने, रहने एवं किसी की आजादी को छीनने वाले को पाठ पढ़ाने की सीख दी थी। उसने सिखाया था कि बहुत से लोग सिर्फ सांस लेते हैं, तुम जिंदा रहना, अपमान और दासता में बार–बार मरने से अच्छा है खुले आसमान के नीचे एक बार मरना क्योंकि कायर का जीवन मृत्यु से भी बदतर है लेकिन शूरवीर के लिए मृत्यु

का अर्थ है– एक अधिक पवित्र और अभीष्ट जीवन का स्वीकार। मणि मधुकर 'हल्दी घाटी की गुफाओं में' रिपोर्ताज में लिखते हैं– ''स्वाभिमान और स्वाधीनता का सही अर्थ.... उस जमीन पर भटकने के बाद शायद तुम जान लोगे। दुनिया को पता है कि राणा प्रताप ने कभी न झुकने की सौगंध उठायी, लड़ाइयाँ लड़ी.... लेकिन वहाँ की मिट्टी तुम्हें यह अहसास कराएगी कि ऐसा उसने एक राजा की हैसियत से नहीं किया। वह सिर्फ उस जत्थे का अगुआ था जो मुक्त रहने की आकांक्षा और आत्मगौरव की रक्षा के लिए निरंतर जूझता रहा था। मामूली भीलों के साथ मिलकर उसने जो संघर्ष किया... उसे नयी निगाहों से देखने की जरूरत है।''[77]

रांगेय राघव ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने इतिहास को आधार बनाकर न केवल रिपोर्ताजों की रचनाएं की अपितु उनकी कहानियों और उपन्यास का विषय भी इतिहास ही है। बंगाल में सन् 1942 में अकाल पड़ा। अकाल क्या था मृत्यु और अमानवीयता का साक्षात ताण्डव। इस ऐतिहासिक अकाल ने गुलाम भारत की शासन व्यवस्था एवं शासकों के चरित्र को नंगा कर दिया। इस रिपोर्ताज में भूख से व्याकुल बंगाल की जनता का मार्मिक चित्रण किया गया है वैसा चित्रण हिन्दी रिपोर्ताज में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रांगेय राघव कृत यह ग्वालियर हैं' और 'खौलता खून' शीर्षक रचनाएं मजदूरों पर पुलिस के दमन चक्र और बम्बई के नाविक विद्रोह पर लिखी गई है। इन रिपोर्ताजों में साम्राज्य, सामंतवाद एवं पूंजीवाद के विरोध की लहर देखी जा सकती है। 'यह ग्वालियर हैं' में भूखे मजदूरों की ताकत एवं उनके विरोध का स्वर देते हुए राघव लिखते हैं– ''किसके पैरों की चाप सुनाई दे रही है? उनकी जिनकी ठोकर से हिटलरी मेघनाद का गढ़ चकनाचूर हो गया। उनकी, जिनकी पग ध्वनि को सुनकर करोड़ों की आँखें हर्ष से किलक उठती हैं। उनकी, जिनकी भूख पर लोगों ने नफे कमाए हैं। उनकी जिनकी बाजुओं के हिलने से साम्राज्य का भारी–भरकम बजड़ा समुद्र में पड़े तिनके की तरह डगमगाने लगता हैं यह किनकी हुँकारों से आसमान काँप रहा है। उनकी, जिनकी बात इंसानियत की पुकार है? जिनके मुंह से निकले इंकलाब का मतलब है इंसान की आजादी। जिनके 'जिंदाबाद' का अर्थ है मेहनतकशों का राज। जिनके हर नारे में राष्ट्र का जागरण है। जिनके भाई सारे संसार में शेरों की तरह दहाड़ रहे हैं और

मुफ्त की खाने वाले ऐसे भाग रहे हैं जैसे भूचाल आ गया हो। जिनकी एक करवट में राजाओं के मुकुट धूल में गिर गए हैं और वे नौकरी की तलाश में चल पड़े हैं।''[78]

'आधी रात से सुबह तक' रिपोर्ताज संग्रह में आपातकाल की राजनीतिक परिस्थितियों को आधार मानकर तानाशाही से लोकतांत्रिक चेतना की ओर अग्रसर मूल्यों को दिखलाने की कोशिश की गयी है। आपातकाल एक ऐतिहासिक घटना है प्रजातांत्रिक राष्ट्र भारत के लिए। आपातकाल के दौरान संपूर्ण हिन्दी क्षेत्र में सामान्य जनता पर किए गए अत्याचारों, बड़े–बड़े नेताओं की गिरफ्तारी और तानाशाही की ओर बढ़ते भारतीय गणतंत्र की विडम्बना का खुलासा किया गया है। लेखक ने एक ओर जहाँ शासन द्वारा किए गए, उपलब्धियों के झूठे दावों के खोखलेपन को प्रकट किया है वहीं दूसरी ओर तानाशाही से भीतर ही भीतर असीम आतंकित जनता के अंतःसंघर्ष को मुखरित किया है। पुस्तक की 'भूमिका' में रिपोर्ताज लेखक लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं– ''यह मैंने देखा है। यह मैंने नहीं लिखा, किन्हीं अज्ञात हाथों ने मुझसे लिखवाया। यह मैंने भोगा है। यह मैंने कल्पना से नहीं, केवल सच्चाइयों से लिखा है। केवल सच्चाइयों से सचाई को लिखना कितना विकट कार्य है।''[79]

धर्मवीर भारती ने भारत एवं पाकिस्तान युद्ध को केन्द्र में रखकर रिपोर्ताजों की रचना की। ये रिपोर्ताज धर्मवीर भारती के 'आंखों देखा' हाल हैं। पाकिस्तानी सेना बांग्लादेशियों पर बर्बर अत्याचार कर रही थी। भारतीय सेना बांग्लादेशी मुक्ति सेना के साथ मिलकर पाकिस्तानी सेना से युद्ध कर रही थी। भारत और बांग्लादेश की सम्मिलित सेना ने पाकिस्तानी सेना को आत्मसमर्पण करने को मजबूर कर दिया। बांग्लादेश को पाकिस्तान से आजादी मिली। रिपोर्ताजकार धर्मवीर भारती ने बांग्लादेश की इस आजादी को भारत–पाकिस्तान की आजादी से श्रेष्ठ बताया। वे लिखते हैं– ''ये बात दूसरी है कि उस दिन भी तोपें दगी थीं, कराची में भी और दिल्ली में भी, लेकिन वे तोपें इस बात का ऐलान करती थीं, कि हमने धर्म के आधार पर दो राष्ट्र बनाने की झूठी, मानव–विरोधी कल्पना के आगे, ब्रिटिश चालबाजों के आगे घुटने टेक दिए जिसका कुफल हम आज तक भोग रहे हैं। तोपें

आज भी दगी थीं, लेकिन ये मुजीब बैटरी की तोपें धर्म के आधार पर दो राष्ट्र की उस कल्पना की धज्जियाँ उड़ा रही थी। बता रही थीं कि संस्कृति, भाषा और आजादी सांप्रदायिक राजनीति के संकीर्ण दायरे से परे की चीज है। इन तोपों की सलामी का किसी से क्या मुकाबला?''[80]

'फणीश्वरनाथ रेणु के बाढ़ और सूखे पर आधारित रिपोर्ताज साहित्य की अनुपम धरोहर हैं किन्तु रेणु ने अन्यान्य विषयों पर भी रिपोर्ताजों की रचना की है। 'समय की शिला पर शिलाव का खाजा' राजगृह नालंदा पर लिखा गया यात्रा–कथात्मक रिपोर्ताज है जिसमें रेणु हमें बौद्ध युग में ले जाते हैं। यह इतिहास के माध्यम से वर्तमान को खंगालने का प्रयास है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों को साहित्यिक कलेवर प्रदान कर वर्तमान में आरोपित कर दिया गया है। रेणु लिखते हैं– ''दीपनगर 'बाइपास' से गाड़ी गुजरी। दूर से ही 'नव–नालंदा विहार' के नए भवन की झलक मिली। महिला–सहयात्री इस झलक पर अकारण ही मुग्ध हो गई– की सुंदर।'

हँसी आई। अभी तो न जाने कितना 'भीषण–सुंदर' देखना बाकी ही है।

यहीं कहीं 'नालो' ग्राम रहा होगा। सारिपुत्र–मौद्गलायन का जन्म स्थान। संभव है जहाँ हमारी गाड़ी खड़ी है– यहीं....।

दक्खिन–राजगिर–गिरिव्रज।

रामायणकालीन–वसुमति। महाभारत काल का वृहद् रथपुर, बौद्धयुग का कुशाग्रपुर, मगध के राजाओं की राजधानी राजगिर।

यहाँ एक प्रेतात्मा और आकर गाड़ी में सवार हो गई– इत्सिंग।

..... पंद्रह साल पहले, सारिपुत्र– मौदगलायन की हड्डियाँ विदेश से आईं और भारत के नगरों में घूमती–फिरती पाटलीपुत्र पहुँचीं तो इन हड्डियों के स्वागत में एक विशाल जुलूस निकला था। उस जुलूस को देखकर दासानुदास ने (पार्टी–पत्रिका) में एक निबंध प्रकाशित करवाया था– हड्डियों का जुलूस।''[81]

रेणु लिखित 'नेपाली क्रांति कथा' के सारे रिपोर्ताज नेपाली कांग्रेस के सशस्त्र आंदोलन से संबंधित हैं जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों को रिपोर्ताजकार ने

सुरक्षित रखा है। रेणु इस क्रांति में भाग लिए थे अतः वे लेखक के साथ–साथ योद्धा भी थे। इन रचनाओं में नेपाल की राणाशाही के अत्याचार और दमन के विरुद्ध जनता के सशस्त्र संग्राम का यथातथ्य, आँखों देखा विवरण है। लेखक ने क्रांति की आग, बेचैनी और पीड़ा को अपने अंदर भोगा है। ये रिपोर्ताज, लेखक के प्रामाणिक अनुभव हैं। रेणु की क्रांतिकारिता के संबंध में विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला लिखते हैं– ''उसकी क्रांतिकारी प्रवृत्ति और अन्याय तथा दमन का विरोध करने की उग्रता मेरी ही जैसी थी। उसके विचार मेरे अपने जैसे लगते थे। वास्तव में वह मेरा ही था। वह स्वतंत्रता का प्रचंड योद्धा था। नेपाल में प्रजातंत्र के हमारे संघर्ष में उसने हमसे कंधे से कंधा मिलाया। राणा शासन को अपदस्थ करने के हेतु नेपाली कांग्रेस ने 1950 ई. में जो सशस्त्र क्रांति छेड़ी थी उसमें रेणु भी शामिल हो गया और मुक्ति सेना की फौजी वर्दी में मेरे साथ बंदूक लेकर मोर्चे पर कूद पड़ा।''[82]

निर्मल वर्मा ने भी 'प्राग : एक स्वप्न', 'अंग्रेजों की खोज में', 'अंधेरे के खिलाफ' आदि रिपोर्ताज लिखे जिनमें इतिहास तत्व प्रामाणिक रूप से मौजूद है। ये रिपोर्ताज 'हर बारिश में' संग्रह में संग्रहित हैं। वस्तुतः यह पुस्तक जीवन मूल्यों से जुड़ी है जिसके खास ऐतिहासिक लम्हें, सांस्कृतिक मूल्यों को निहार रहे हैं। पुस्तक के 'आवरण पृष्ठ पर लिखा हुआ है– ''ये निबंध कभी–कभी एक ऐसे 'एक्जाइल' लेखक के रिपोर्ताज जान, पड़ते हैं जिसने युद्ध के मोर्चे पर घायल संस्कृतियों के घावों को जैसा देखा है, वैसा ही आंकने की कोशिश की है और भारतीय आत्मसंतोष से हटकर, खुद अपने देश की व्यवस्था को इन घावों में रिसता देखा है।''[83]

हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों को वर्तमान संदर्भों से जोड़कर विश्लेषित किया गया है। इतिहास जब वर्तमान की दृष्टि से देखा जाता है तो भी उसकी प्रासंगिकता मानव जाति के प्रति उपयोगी हो पाती है। चूंकि रिपोर्ताज क्रांतिकारी विधा है, इसलिए इतिहास और ऐतिहासिक कथ्य उसके प्राणतत्व हैं।

संदर्भ सूची

[1] हिन्दी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन, अली मुहम्मद, पृ. 177–178
[2] प्राकृतिक आपदाएं : शिवगोपाल मिश्र, पृ. 12
[3] वही, पृ. 12
[4] वही, पृ. 12
[5] आखरी कलाम से
[6] वही, पृ. 186
[7] रेखाचित्र बंगाल का अकाल : प्रकाशचंद्र गुप्त पृ. 228
[8] रांगेय राघव ग्रंथावली, भाग 8 : सं.– डॉ. सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 188
[9] वही, पृ. 191
[10] वही, पृ. 200
[11] वही, पृ. 213–214
[12] वही, पृ. 242
[13] ऋणजल–धनजल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 12
[14] वही, कुत्ते की आवाज, पृ. 25
[15] वही, पृ. 24, 25
[16] वही, पृ. 83
[17] वही, पृ. 88
[18] वही, पृ. 108–109
[19] वही, पृ. 1
[20] गंधमादन : कुबेरनाथ राय, पृ. 132
[21] जुलूस रुका है : विवेकी राय, पृ. 20
[22] वही, पृ. 41
[23] 'सूखे सरोवर का भूगोल : मणि मधुकर, पृ. 19–20
[24] वही, पृ. 38
[25] वही, पृ. 40
[26] वही, पृ. 61
[27] हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य : डॉ सिस्टर क्लेमेंट मेरी, पृ. 101
[28] धर्मवीर भारती ग्रंथावली खंड–सात : सं–चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ. 130
[29] वही, पृ. 138
[30] वही, पृ. 164
[31] स्मरण को पाथेय बनने दोः विष्णुकांत शास्त्री, पृ. 101
[32] रेणु रचनावली भाग 4, सं. भारत यायावर, पृ. 29
[33] वही, पृ. 196
[34] वही, पृ. 216
[35] वे लड़ेंगे हजार साल : शिवसागर मिश्र,
[36] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 20
[37] लाल धरती : अमृतराय, पृ. 74
[38] 'क्षण बोले कण मुसकाए' : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 24
[39] मैंने दंगा देखाः मनोज मिश्र, पृ. 27
[40] 'क्षण बोले कण मुसकाए' : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 141
[41] वही, पृ.154–165
[42] सूखे सरोवर का भूगोल : मणि मधुकर, पृ. 64
[43] रेणु रचनावली : सं. भारत यायावर भाग 4, पृ. 63
[44] जनसत्ता, 23 सिंबर 07

[45] हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल (नव्यतर गद्य विधाएं) : प्रो. हरिमोहन, पृ. 163
[46] क्षणबोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 239
[47] जहाज और तूफान : सं. रामविलास शर्मा, खंड 1, पृ. 53
[48] वे और नहीं होंगे जो मारे जाएँगे : रघुवीर सहाय, पृ. 31
[49] जहाज और तूफान : सं. रामविलास शर्मा, पृ. 31
[50] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, दिल्ली, पृ. 193
[51] 'क्षण बोले कण मुसकाए' : प्रभाकर, पृ. 79
[52] वही, पृ. 81
[53] वही, पृ. 85
[54] वही, पृ. 133
[55] वही, पृ. 136
[56] रेणु रचनावली भाग–4, : सं. भारत यायावर, पृ. 62
[57] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 57
[58] जहाज और तूफान : सं. राम विलास शर्मा, पृ. 96
[59] वही, पृ. 144, 145
[60] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, पृ. 20
[61] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, पृ. 181
[62] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, कुसुम प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, पृ. 79
[63] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 64
[64] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 80–81
[65] 'क्षण बोले कण मुसकाए' : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 190
[66] हिन्दी रिपोर्ताजः परंपरा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 183
[67] वही, पृ. 184
[68] 'क्षण बोले कण मुसकाए' : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 74
[69] वही, पृ. 13
[70] गदर के फूलः अमृतलाल नागर, पृ. 30
[71] खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर : भगवत शरण उपाध्याय, पृ. 9
[72] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा : पृ. 79–80
[73] खून के छींटे, इतिहास के पन्नों पर : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 87
[74] ठूंठा आमः भगवतशरण उपाध्यायः पृ. 73
[75] वही, पृ. 75
[76] वही, पृ. 36
[77] सूखे सरोवर का भूगोलः मणि मधुकर, पृ. 110–111
[78] रांगेय राघव ग्रंथावली भाग–8, सं. डॉ. सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 250–51
[79] आधी रात से सुबह तकः लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 7
[80] धर्मवीर ग्रंथावली भागः सात : सं. चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ. 167
[81] रेणु रचनावली, भाग 4ः सं. भारत यायावर, पृ. 92
[82] रेणु का जीवनः सं. भारत यायावर, पृ. 25
[83] हर बारिश में : निर्मल वर्मा, पृ. 6

अध्याय – चार

हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य : युगीन संदर्भ और जीवन मूल्य

4.1 देशप्रेम

4.2 स्वतंत्रता

4.3 जीवन के प्रति दृष्टिकोण

4.4 मानवीय संवेदना

4.5 जीवनानुभव

आज का समाज इतना द्रुतगामी है और उसका रूप इतनी तेजी से परिवर्तनशील है कि आज की जो गंभीर समस्याएँ हैं वे कल पुरानी हो जाती हैं। जब तक हम उनका समाधान खोजते हैं तब तक एक और नयी समस्या उपस्थित हो जाती है। नित नए–नए समस्याओं का उभरना मानवीय जीवन एवं समाज से संबद्ध होता है पर उनका समाधान खोजा जाना आवश्यक है क्योंकि इन प्रश्नों के समाधान पर ही मानव जाति की सभ्यता और संस्कृति का भविष्य निर्भर करता है। इन घटनाओं का प्रभाव सर्वव्यापी होता है। व्यक्ति, परिवार, समूह या यह कहें कि पूरा राष्ट्र इन घटनाओं की सीमा में होता है तो अतिशयोक्ति न होगी। ये घटनाएँ साहित्य में स्थान पाती हैं और साहित्य इनसे सृजन की पृष्ठभूमि। पर दिन–प्रतिदिन बदलते परिवेश को पकड़ने एवं इन समस्याओं के समाधान हेतु ललित साहित्य पर्याप्त नहीं होता। जरूरत पड़ती है ऐसे रूप विधान से निर्मित साहित्य की जो समस्याओं का समाधान उतनी ही त्वरा से करे, जितनी त्वरा से ये समस्याएँ प्रकट हुई थीं। रिपोर्ताज ऐसी ही क्रांतिकारी विधा है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''रेडियो, सिनेमा और प्रेस जैसे यांत्रिक आविष्कारों ने इस कार्य को सरल कर दिया और वास्तविकता के साथ पग मिलाकर चलने की क्षमता मनुष्य को प्रदान की है। ललित साहित्य सामाजिक प्रभाव और स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक तीव्र अस्त्र है। लेकिन वह आज की समस्या का आज ही हल पेश करने में असमर्थ है। इसका प्रभाव युगों तक चलता है। दैनिक जीवन की विशिष्ट समस्याओं तक उसकी पहुँच नहीं होती। इसलिए आधुनिक जीवन की इस नई द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नए साहित्यिक रूप–विधानों को जन्म देना पड़ता है। रिपोर्ताज उनमें से सबसे प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण रूप विधान हैं।''[1]

डॉ शिवदान सिंह चौहान के उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि रिपोर्ताज विधा युग की समस्याओं को पहचानने, पकड़ने एवं उनका समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। साहित्य–रचना का उद्देश्य है मानव के यथार्थ सत्य में छिपे आत्मा के सौंदर्य को खोजकर भाव के माध्यम से, विचार से समन्वित करके प्रस्तुत करना। इस उद्देश्य को साहित्यकार तभी प्राप्त कर सकता है जब वह अपने युग के प्रति ईमानदार हो और जीवन–मूल्यों की उसे समझ हो। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया

लिखते हैं– ''हिन्दी रिपोर्ताज पत्रकारिता जगत में महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावित करने वाली विधा है। जितनी तीव्रता के साथ इस विधा का विकास हो रहा है, उससे भविष्य में गद्य की विविध विधाओं में इसकी समृद्धि की संभावना बढ़ी है। आज की पत्रकारिता, साहित्य की ओर उन्मुख हो रही है और साहित्य पत्रकारिता की ओर आ रहा है। फलस्वरूप हिन्दी रिपोर्ताज इन दोनों क्षेत्रों में सेतु का काम कर रहा है। किसी घटना की रिपोर्ट को कलात्मक एवं साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करना ही 'रिपोर्ताज' है। युग संघर्ष, युग चेतना तथा असाधारण जीवन के पक्षों को तत्काल शब्दों में बाँधना ही इस विधा को साहित्यिकता प्रदान करता है।''[2]

डॉ. भाटिया, ने रिपोर्ताज विधा के संदर्भ में तीन महत्त्वपूर्ण बातें कहीं हैं– 'युग संघर्ष', 'युग चेतना' एवं 'तत्काल शब्दों में बाँधना'। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य में युगीन संदर्भ एवं जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है। रिपोर्ताज साहित्य अपने युगीन संदर्भों और जीवन मूल्यों से जुड़कर उपयोगितावादी साहित्य के रूप में अपनी प्रासंगिकता प्रमाणित करता है। यह साहित्य सिर्फ मनोरंजन हेतु नहीं है अपितु इसमें युग की समस्याएँ विस्तार पाती हैं।

ऐसा मानना है कि पत्रकार–कला में रिपोर्ताज का आविष्कार रूस में हुआ और वहीं से यह भारत आया। निश्चय ही यह उस देश में अपने स्वतंत्र रूप में पनपा होगा, किन्तु भारत में और हिन्दी साहित्य में यह स्वतंत्र रूप में पनपा। हिन्दी साहित्य में जिस समय रिपोर्ताज विधा का जन्म हुआ उस समय देश में स्वतंत्रता आंदोलनों का दौर था। देश को आजाद कराने का प्रयास जारी था। राजनीतिक आंदोलन किए जा रहे थे। देशवासी अपने–अपने तरीके से देश को आजाद कराने में संलग्न थे। यह अजीब संयोग था कि उस दौर में लगभग सारे पत्रकार साहित्यकार थे एवं सारे साहित्यकार पत्रकार। पत्रकारिता और साहित्य का क्षेत्र प्रायः अलग रहे हैं किन्तु अपने विकास के लिए एक–दूसरे पर निर्भर भी रहे हैं। यद्यपि रिपोर्ताज विधा 'पत्रकार–कला' से उद्‌भूत है फिर भी सामान्य, सरकारी और अखबारी रिपोर्ट से अलग है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार–

''लगता है जैसे पत्रकार को किसी विशेष घटना या स्थिति का अपने पत्र (समाचार पत्र) को एक रिपोर्ट देनी थी, पर वह वस्तुनिष्ठ विवरण से अधिक उससे

संलग्न और उस पर मंडराती हुई मानवी–संवेदनाओं से तादात्म्य कर बैठा और स्थिति या घटना–विशेष को केवल धुरी बना, चित्रण वह उन तत्वों का करने लगा जिनका मानवीय संवेदना से सीधा संबंध था। इस प्रकार उसकी रचना 'रिपोर्ताज' बन गयी जिसमें लेखक की कला ने एक नया प्राण फूँक दिया कि उसकी रचना एक विशेष महत्त्व से अभिमंडित हो उठी।''[3]

पत्रकार और साहित्यकार दोनों ही सत्य के सहारे एक नए मानव समाज की खोज करते हैं। दोनों की दृष्टि मनुष्यों के बीच बन रहे नए संबंधों पर टिकी रहती है। पत्रकारिता और साहित्य का अटूट संबंध है। यदि समसामयिक यथार्थ पत्रकारिता का आधार होता है तो रचनाकार की प्रवृत्ति सूक्ष्म यथार्थ की ओर होती है। साहित्यकार सामान्य तथ्यों को सत्य से जोड़ देता है जबकि पत्रकारिता में तात्कालिक प्रभाव प्रमुख होता है, जो कलावादी–रचनाकार युगधर्म से विमुख होकर साहित्य की रचना पर जोर देते हैं वे साहित्य और समाज दोनों के प्रति अन्याय करते हैं। हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि आरंभिक काल में उसने देश को जागृत करने का अथक प्रयास किया, वहीं जनता में साहित्यिक चेतना जगाने का श्रेय भी पाया। समसामयिक परिवेश से प्रायः सभी विधाएँ प्रभावित होती हैं और प्रेरणा भी ग्रहण करती हैं। यही बात सामान्य रूप से रिपोर्ट और रिपोर्ताज के लेखकों पर भी लागू होती हैं।

पत्रकारिता अपने युगीन संदर्भों से जुड़ी रहती है और रिपोर्ताज युगीन संदर्भों एवं जीवन–मूल्यों की गहन पड़ताल करता है। हिन्दी पत्रकारिता ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय न सिर्फ जनमानस को उद्वेलित करने का काम किया अपितु आंदोलन को नयी दिशा भी प्रदान की। उस समय के रिपोर्ताज लेखकों ने युगीन संदर्भ यानि स्वतंत्रता आंदोलन जिसके मूल में न सिर्फ आजादी की भावना थी अपितु जो देशप्रेम जैसे मूल्यों से अनुप्राणित था, को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया।

4.1 देशप्रेम

देशप्रेम एक मूल्य है। जीवन–मूल्य। देश से बँधकर जब हम अपनी अनुभूतियों की अतल गहराइयों से प्रेम करते हैं तो इस प्रेम को देशप्रेम कहते हैं। देशबद्ध मनुष्यत्व के अनुभव से सच्ची देशभक्ति या देशप्रेम की स्थापना होती है। जो मानव हृदय संसार के अन्य जातियों के मध्य रहकर अपनी जाति की स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर पाता, वह हृदय कभी भी देशप्रेम का दावा नहीं कर पाता, यदि वह करता है तो वह दावा निराधार एवं खोखला है। अतः ऐसे में एक प्रश्न उठता है कि आखिर देशप्रेम है क्या? आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में– ''देशप्रेम है क्या? प्रेम ही तो है। इस प्रेम का आलंबन क्या है? सारा देश अर्थात मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, नाले, वन, पर्वत सहित सारी भूमि। प्रेम किस प्रकार का है। यह साहचर्यगत प्रेम है। जिनके बीच हम रहते हैं, जिन्हें बराबर आँखों से देखते हैं, जिनकी बातें बराबर सुनते हैं, जिनका हमारा हर घड़ी साथ रहता है, सारांश यह है कि जिनके सान्निध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, जिनके प्रति लोभ या राग हो जाता है। देशप्रेम यदि वास्तव में अंतःकरण का कोई भाव हो सकता है तो यही हो सकता है। यदि यह नहीं है तो वह कोरी बकवाद था। किसी और भाव के संकेत के लिए गढ़ा हुआ शब्द। यदि किसी को अपने देश से सचमुच प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़ पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि सबसे प्रेम होगा, वह सबको चाह भरी दृष्टि से देखेगा, वह सबकी सुध करके विदेश में आँसू बहावेगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं सुनते की चातक कहाँ चिल्लाता है, जो यह भी आँख भर नहीं देखते कि आम प्रणय सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं जो यह भी नहीं झाकते कि किसानों के झोपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देशप्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि 'भाइयों! बिना रूप परिचय का यह प्रेम कैसा? जिनके दुख के साथी कभी हुए नहीं उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह कैसे समझें?''[4]

ऐसे ही देशप्रेम की अभिव्यक्तियों से हमारा हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य भरा–पड़ा है। 'भारत माता की जय', 'इंकलाब! जिंदाबाद', वन्दे मातरम' आदि नारों

से 1920 से 1947 तक चलने वाले स्वतंत्रता आंदोलनों में भारत का आकाश गुंजायमान था। ये नारे सिर्फ जुबान से नहीं उठ रहे थे अपितु दिलों की गहराइयों से उठ रहे थे। भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों, बुद्धिजीवियों आदि के जुबां से निकले बोल दिलों की गहराइयों में समायी भारत माता की तस्वीर को पूजनीय बना देते थे। जनता में देश के प्रति अनन्य प्रेम उमड़ पड़ा था। सभी अपनी मातृभूमि को आजाद कराना चाह रहे थे। देश के गुलाम रहने का दुख तथा उसे गुलामी से युक्त कराने के पीड़ा और छटपटाहट अपने चरम पर थी। यह छटपटाहट सिर्फ एक व्यक्ति की नहीं था अपितु उस समय का जीवन–मूल्य हो चुका था।

बदलते दौर में दुनिया के साथ–साथ हमारा देश भी बदल रहा था। परिवर्तन सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो अच्छी बात होती है। यदि परिवर्तन नहीं होगा तो यह संसार उतना अच्छा नहीं रह जाएगा। मनुष्य और मनुष्यता दोनों के लिए अनिवार्य है– परिवर्तन। परिवर्तनकारी समाज और राष्ट्र ही सुनहरे भविष्य का वरण कर पाते हैं। रचनाकार अपनी रचनाओं में परिवर्तन को बड़ी शिद्दत से पकड़ता है और उसे एक युग–बोध की तरह प्रस्तुत कर भविष्य की राह बना देता है या ठीक इसके उलट, होने वाले परिवर्तन को जानकर अपनी रचनाओं में उन्हें निरूपित करना प्रारंभ कर देता है। लेखक या रचनाकार सिर्फ एक व्यक्ति नहीं होता अपितु लाखों साल से जीता–जागता आ रहा समाज की एक इकाई होता है। 1919 से 1946 के बीच की भारतीय राजनीति उथल–पुथल एवं आंदोलनों से भरी हुई थी। जहाँ एक ओर महात्मा गाँधी लोगों से कह रहे थे कि मेरी गिरफ्तारी पर कोई हड़ताल न हो, न हलके–फुलके प्रदर्शन हों और न जुलूस ही निकाले जाएँ, वहीं दूसरी ओर दादा भाई नैरोजी 'भारत स्वराज्य के योग्य है' का नारा दे रहे थे। अंग्रेजों का मानना था कि भारत अभी स्वराज्य के योग्य नहीं है और धीरे–धीरे ज्यों ही वह योग्य होगा हम उसे स्वतंत्रता दे देंगे। दादा भाई नौरोजी का नारा अंग्रेजों को जवाब था।

यह लोकमान्य तिलक की आवाज थी। इस गर्जना की घोषणा थी कि स्वराज्य पाने के लिए योग्यता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि स्वराज्य योग्यता का पुरस्कार नहीं, हमारा मानवीय अधिकार है। तिलक महाराज की यह

घोषणा सुनकर मेरे खून में फिर एक नयी बात पैदा हो गयी थी और मेरी कलम में एक चमक आ गयी थी। इस चमक में तथ्यों, आंकड़ों की जगह तेजी थी, बल था, प्रेरणा थी।''[5]

रिपोर्ताज लेखक न्याय और अन्याय की लड़ाई में बेलाग निडर होकर सच्चाई के लिए खड़ा होता है तो इसके पीछे प्रेम की गहनतम अनुभूति होती है। यह अनुभूति देशप्रेम के भावों से ओत–प्रोत होती है। हैवानियत के खिलाफ हर लड़ाई गहन मानवीय प्रेम की लड़ाई होती है। ऐसी लड़ाई लड़ने में रिपोर्ताजकार शामिल हो जाता है। तटस्थ होकर नहीं रह सकता है। यही कारण रहा कि बांग्लादेश–पाकिस्तान के युद्ध में भारतीय सेना कंधा से कंधा मिलाकर लड़ी थी तो भारतीय लेखक धर्मवीर भारती इस युद्ध की रिपोर्टिंग के लिए मृत्यु की परवाह न करते हुए युद्ध स्थलों का दौरा किए और जो देखा उसका विवरण 'आँखों–देखा' प्रस्तुत किया। अहिंसा और सत्याग्रह के अस्त–व्यस्त आंदोलन के बीच एक सच्ची युवा क्रांति की लहर आई थी सन् 1942 में, जिसे कुचल दिया गया। दूसरा महान दौर था आजाद हिन्द फौज का जिसके साथ विश्वासघात किया गया। नौसेना विद्रोह भी समझौता–परस्ती की शिकार हुई। लेखक धर्मवीर बांग्लादेश की आजादी के प्रति सहमे हैं, उन्हें डर है कि यह क्रांति भी कहीं काल के गाल में समा न जाए। आजादी बड़ी कीमत मांगती है। आजादी प्रणम्य है। भारतीय आजादी के लिए जो महत्त्वपूर्ण क्रांतियाँ हुई थीं वे समझौतापरस्ती के धुंधलके में गुमराह हो गयी थी लेकिन धर्मवीर भारती बांग्लादेश की आजादी के प्रति आश्वस्त हैं। वे लिखते हैं–

''समझौतापरस्ती के धुंधलके में गुमराह होकर हम जो नहीं कर सके, वह ये कर रहे हैं। रवीन्द्र ठाकुर ने लिखा था कि जो नदियाँ मरुस्थल में आधी राह में खो जाती हैं, वे भी खोती नहीं हैं। कहीं समुद्र में, तुम्हारी पूजा में वे भी शामिल रहती हैं। मरुस्थल में आधी राह में खोई हमारी क्रांतिच्युत जिंदगियाँ, हमारी टूटी–अधूरी जिंदगियाँ इस हरे समुद्र सोनार में, इस पूजा में, इस 'भालोवाशी' में शामिल होकर सार्थक हो सकेगी न? मन में एक नया सुकून, एक नया प्यार उमड़ता है। मेरी आँखें अब सूनी नहीं रही, वे नम हो आई हैं और उस नमी के पर्दे में मैं फिर बांग्लादेश के फहराते ध्वज को गौरव से सर उठाकर देखता हूँ। आकाश में

फहराता वह हरा ध्वज जमीन पर लहराते हरे धान के नम खेतों में घुलमिल जाता है। प्रणाम, समूचा, व्यक्तित्व एक उल्लसित प्रणाम बन जाता है।''[6]

देश के लिए युद्ध हो तो स्वतंत्रता सेनानी अपना सब कुछ त्यागकर भी, यहाँ तक मृत्यु की भी परवाह न करके लड़ना चाहता है। जीवन और स्वतंत्रता दोनों में से सच्चे देशप्रेमी को स्वतंत्रता ही प्रिय होगी। साधनहीन, नंगे–पैर, युद्ध की पर्याप्त सामग्री न होने पर बांग्लादेशी मुक्तिवाहिनी सेना के जवान देश के लिए मर–मिटने को तैयार हैं। साधनहीनता उनके देशप्रेम में आड़े नहीं आती। घाव चाहे जितना ही गहरा क्यों न हो देश के लिए लड़–मरने का जज्बा कम नहीं होता। 'वे ही बनते दीप' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती ने मुक्तिवाहिनी के एक सिपाही के जज्बे को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है– ''उसका ऑपरेशन तो सफल हुआ था, लेकिन पता नहीं किस नलिका में क्या छेद हो गया है कि पानी भी पीता जो जाकर अंदर से चोट करता और बेहद दर्द होता है। डॉक्टर का कहना है कि 'डायट' पर रहो, कम–से–कम तीन महीने बिलकुल आराम करो, तब यह अपने आप ठीक होगा, हवलदार सैयद मियाँ का कहना है– डायट पर कैसे रहे साहब, हमसे आराम भी नहीं होता, नींद नहीं आती, खाना भी नहीं खाया जाता, हमें तो बस फिर राइफल मिल जाए तो उसको जाकर बताएँ कि बंगाली को गीदड़ कहने वाले को हम कबर का मुंह कैसे दिखाता है।''[7]

देश किसी भी विचारधारा से ऊपर होता है। देश है तो हम हैं। हमारी अक्षुण्ण पहचान देश से ही बनती और बिगड़ती है। सन 1942 में सब ओर से हार जाने पर जयप्रकाश नारायण ने छात्रों से कहा था कि अंग्रेज दुश्मन को उखाड़ने के लिए रेल की पटरियाँ उखाड़ दो। उस समय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी जयप्रकाश और सुभाष को फासिस्टों का एजेंट कह रही थी। उसी सुभाष से प्रेरित मुजीब जनक्रांति के महान नायकों के मुख से जयप्रकश की बातें उद्घोषित हो रही थी और इन बातों को बांग्लादेश की कम्युनिस्ट पार्टी के लोग मान रहे थे। मुक्तिवाहिनी सेना के योद्धाओं ने चटगाँव से ढाका जाने वाली रेल लाइन उखाड़ दी थी क्योंकि इसी रेल लाइन से 25 वर्ष तक चाय और जूट पश्चिम पाकिस्तान को जाता रहा और बदले में वहाँ के सैनिक बांग्लादेशी नागरिकों को टैंक से कुचले,

सोते हुए नागरिकों को तोपों से उड़ा दिया और रुकैया हाल की बेबस छात्राओं का बलात्कार किए। तोप, टैंक और ये बलात्कारी सैनिक इसी रेल लाइन से बांग्लादेश में आए थे। अतः रेल लाइन को ध्वस्त कर दिया गया। इस विषय में 'रेल भंजकों को जगने दो' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती लिखते हैं–

''कभी–कभी बहुत पहले पढ़ी कविताएँ, मन में पता नहीं कहाँ दबी रहती हैं और बीस–तीस बरस बाद अकस्मात उनका अर्थ कौंध जाता है। ऐसी ही एक कविता थी, किसी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कम्युनिस्ट कवि की 'लेट द रेल स्पिलटर अवेक'। अगर मैं भूलता नहीं तो उसका हिन्दी अनुवाद किया था मेरे अग्रज बंधु केदारनाथ अग्रवाल ने 'रेल भंजकों को जगने दो'! वे जो, रेल भंजन करते थे, वे वास्तव में किसानों का कच्चा माल और मजदूरों की मेहनत ट्रेनों पर लादकर ले जाने वाले और बदले में भाड़े के दमनकारी सिपाहियों को ट्रेनों में भेजने वाले उपनिवेशवादियों की रीढ़ का भंजन करते। यह बात आज 28 वर्ष बाद इस टूटी हुई रेल की पटरी पर खड़े होकर समझ में आ रही है।''[8]

समय और परिस्थतियों के आधार पर घटनाओं का मूल्यांकन किया जाता है। स्वतंत्रता के बाद बड़ी तेजी से परिस्थितियाँ बदली। स्वार्थी तत्वों की भरमार हो गयी। जो लोग कभी देश के प्रति वफादारी की बात करते थे वे ही लोग अपने–अपने तरीके से देश को निचोड़ना शुरू किए। इनमें से कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका योगदान तो कम था लेकिन देश से लिया बहुत कुछ। पर कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया पर उन्हें व्यवस्थापकों ने विस्मृत कर दिया। ऐसे लोगों को अपनी पहचान दर्ज कराने के लिए आंदोलन करना पड़ा। कुछ लोग गुलामी के समय में उन अंग्रेजों की सेना में शामिल थे। वे अंग्रेजों की ओर से लड़ते थे किन्तु 1939, 1940 एवं 1946 ई. में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध बगावत कर देते हैं। उनमें से कुछ लोगों को मुअत्तल किया जाता है एवं कुछ लोगों को काला पानी की सजा दी जाती है। जिन सैनिकों को काला पानी की सजा दी जाती है उनमें से सभी को रिहा कर दिया जाता है। ये ही सैनिक अपना नाम स्वतंत्रता सेनानियों में दर्ज कराने के लिए आंदोलनरत थे। 'बागी' रिपोर्ताज में लेखक मुकुल शर्मा उनसे पूछते हैं कि गुलाम भारत एवं आजाद भारत की आर्मी में

क्या फर्क है? तो उत्तर मिलता है– ''बहुत फर्क है। तब की आर्मी देश के लिए नहीं थी, ब्रिटिश सरकार के लिए थी। और अब आर्मी देश के लिए लड़ती है। तब बगावत करना देशभक्ति थी और अब बगावत करना गद्दारी है।''[9]

आजादी के बाद हमारे देश की स्थिति भी नहीं सुधरी। स्वराज्य की कामना करते–करते न जाने कब भारतवासी भ्रष्टाचार के दलदल में फँसते चले गए। चारों ओर लूटपाट और भ्रष्टाचार पनपा जिनके मूल में स्वार्थ था। देश के भविष्य की चिंता नहीं थी कि नवस्वतंत्र राष्ट्र किधर जाएगा। इस भ्रष्टाचार की जड़ थी– हमारी आत्मा में फैला अंधकार। हम चारों ओर अंधकार से घिरे हैं, कहीं भी सत्य रूपी प्रकाश की किरण नहीं है। अपराध और अंधेरे का चोली–दामन का संबंध है। हम महसूस करते हैं, हमारा देश और समाज व्यापक अंधेरे में फँस गया है। महात्मा गाँधी की मृत्यु पर जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि रोशनी चली गयी है और हम सब गहरे अंधेरे में हैं। हम आदर्श हीनता के अंधेरे में जो एक बार धँसे तो दिनोंदिन धँसते चले गए। आदर्श हमारे जीवन में प्रकाश के समान हैं और ये आदर्श हीनता ही व्यक्ति को अथवा समाज को या राष्ट्र को अंधेरे में मार्गच्युत कर भ्रष्ट कर देता है। आज जो, आदर्शहीनता चारों ओर फैली है वही इस भ्रष्टाचार की जननी है।

देश की स्थिति काफी खस्ताहाल है। गाँवों की और भी। गाँव के लोग आजादी के बाद भी जीवन–यापन के लिए अनिवार्य आवश्यक चीजों को जुटा नहीं पाते हैं। उनकी राहें अभावग्रस्तता की धूल से भरी हुई हैं। अभावग्रस्तता उनके शरीर, उनकी आत्मा में फैल गयी है। जीवन में आने वाला उल्लास भी दुख की दीवार को तोड़ नहीं पाता है। पंचवर्षीय योजनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं किन्तु गाँवों की स्थिति जस की जस। महामारी सी महँगाई और काल सा अकाल उनके जीवन को और भी कठिन बना देता है। ग्रामीणों का जीवन निर्वाह थोड़े से में हो रहा है, उनका जीवन जन्म के साथ ही श्मशान में बदल जाता है। वहीं दूसरी ओर एक वर्ग और भी है जो इन्हीं गरीबों एवं ग्रामीणों की सेवा हेतु है किन्तु वास्तविकता उनकी कुछ और ही है जिनके घरों की ओर जाने वाले रास्ते पर लिखा है कि यह– 'आम रास्ता नहीं है।' इनकी स्थिति देखकर प्रतीत होता है कि वास्तव में आम रास्ता होता क्या है? अवश्य ही यह खास रास्ता है; क्योंकि आम लोगों का

रास्ता तो दूसरा है। ये भूले और अनजान लोग हैं और पता नहीं इनको अपने पथ का ज्ञान कब होगा? वास्तव में यह 'पदच्युत वर्ग' हमारे देश के नीति–नियामक लोग हैं जो आदर्शों से दूर भ्रष्टाचार के अंधेरे में खो गए हैं। इनका ध्यान गरीब एवं मजदूर वर्ग की ओर नहीं जाता। गरीबी एवं ग्रामीणों की स्थिति की ओर से विमुख लोग हैं ये लोग। इन पर व्यंग्य करते हुए 'आम रास्ता नहीं है' रिपोर्ताज में विवेकी राय लिखते हैं–

''ये मैले कुचैले राम थे, भूख से तड़पते कृष्ण, ये विवशताओं की बेड़ियों में जकड़े प्रताप! ये नीरव रोदन करने वाले नारायण और रात–दिन गरीबी में जलने वाले जनता–जनार्दन! मोटी–मोटी पोथी, गंभीर ज्ञान, उज्ज्वल सिद्धांत, मानवता की दुहाई, जनता की सरकार, जनता का राज्य, गरीबों के लिए महा–महा आयोजन और वास्तव में सारा गुड़–गोबर हुआ जा रहा बरबस।''[10]

अभावग्रस्तता, जीवन के उल्लास को, उसकी कर्मठता को खंडित नहीं करता। 'स्वराज्य' की कल्पना, आकाश–कुसुम हो चुकी है पर जीवन और उसकी गति आकाशीय नहीं रह जाती। इसी धराधाम पर जीवन खिलता है– इन्द्रधनुषी रंग लेकर, किसी कवि की कविता की तरह। मजदूर जो जीवन–संग्राम में हारता नहीं दिखाई देखा, वस्तुतः वह अपनी जिजीविषा ही प्रकट करता है। उसका सारा शरीर मिट्टी से लथपथ हो जाता है, मुँह पर भी मिट्टी पुत जाती है किन्तु यह वह मिट्टी कीचड़ नहीं जो शरीर को गंदा बनाती है। यह वह मिट्टी है, जो बेदाग बनाती हैं वह अपना खेत बना रहा है। वह किसान मिट्टी–पानी में चमक रहा है, धधक रहा है। यह धधकना नए खून की एक अनूठी चीज है। इसी धधकने से दुनिया में रंगीनी है, सरसता है। किसान की सरसता मानों कह रही है कि 'अटका हुआ स्वराज्य' ऐसे ही आएगा। विवेकी राय 'अटका कहाँ स्वराज्य' रिपोर्ताज में लिखते हैं–

''कोई शास्त्र नहीं, केवल भावना का वेद इसकी कसौटी होगा। यह वेद पवित्र श्रम की द्रष्टा है। दुनिया का निर्माण किसी राजनीति ने नहीं किया, किसी वाद ने नहीं किया, उनके विकास का मूल श्रम की रसवन्ती में है। श्रम ने चाम को

राम बनाया, मिट्टी को सोना बनाया। मैं लड़के से कहता हूँ– अरे सनकी है क्या रे तू?

'जी', वह उत्तर देता है, 'यदि मैं वास्तव में होश में आ जाऊँ तो समाज के होश ठिकाने लग जाएगा।''[11]

1857 के गदर के बाद देश में जबरदस्त बदलाव आया। भारतीय जनमानस एकाएक बदल गया। अवध के क्षेत्रों में सन् सत्तावन के विद्रोह को जन–स्वातंत्र्य के भाव के रूप में पढ़ने वाले वर्ग का उदय हुआ। सन् 1864–65 में अवध के 1400 सरकारी स्कूलों में पांच हजार विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ रहे थे। स्पष्ट है कि यह बड़ा परिवर्तन सिर्फ राजनीतिक गुलामी के चलते नहीं आया। नयी शिक्षा को अपनाने के पीछे सदियों की सामाजिक घुटन से उबरने की इच्छा भी थी। सन् सत्तावन के बाद हमारा देश नया हो उठा। अंग्रेजी भाषा के द्वारा हमारे देश ने अपनी स्वतंत्रता खोने से ज्यादा पाई। देश ने दार्शनिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वैभव को फिर से पाया तथा अनेक प्रकार की असमाजिकता एवं गंदगियों से लड़कर उन्हें साफ करने एवं हटाने में समर्थ हुआ। इस गदर में वस्तुतः हमारी तरह–तरह की कमजोरियाँ ही हारी थीं। गदर के बाद भारतीय नवयुवक उन कमजोरियों का नाश करने के लिए कटिबद्ध हुआ जिसकी वजह से वह गुलाम हुआ था। देशवासियों में प्रेम की भावना जागृत हुई जिसका प्रतिफलन आजादी के रूप में हुआ। अपनी कमियों को जानना और दूर करना तथा देशहित में लग जाना देशप्रेम ही है। 'गदर के फूल' में अमृतलाल नागर लिखते हैं– ''विगत वैभव के गुण ग्रहण करना ही यदि विगत वैभव की पूजा करना है तो मैं उसे निश्चित रूप से सराहनीय समझता हूँ। अन्यथा पिछले जमाने पर कोरी 'आहें' भरना मुझे बड़ा ही मूर्खतापूर्ण और नामर्दी का काम लगता है। वे सचमुच कायर होते हैं जो समय के वार नहीं सह पाते हैं। हममें शक्ति थोड़ी हो या अधिक, यह बहस की बात नहीं, सवाल तो यह है कि हम उसे निकालते और आजमाते कितना हैं। हम भले ही वनस्पति घी के युग में रहते हों, जितने दिन–महीने या वर्ष हो, हमें जीना है।' तब जीवन को ढंग से समेट उठाने का प्रयत्न करना ही चाहिए। जहाँ परिस्थितियाँ एकदम मजबूर कर दें, वहाँ भी यह क्यों भूलें कि आज नहीं तो कल अवश्य ही इस परिस्थिति को बदलना है।''[12]

गाँव–गाँव घूमकर सन् सत्तावन की क्रांति से संबंधित ब्यौरे और जानकारियाँ इकट्ठा कर अमृतलाल नागर ने अद्‌भुत कार्य किया क्योंकि सत्तावन की क्रांति की चिंगारी से ही आगे चलकर हमारे देश की आजादी की ज्वाला धधकी और देश आजाद हुआ। जहाँ सन् सत्तावन के विद्रोहियों ने वीरतापूर्ण कार्य किए वहाँ कुछ ऐसे लोग भी थे जिनके कृत्यों की वजह से डॉक्टर मजूमदार जैसे भारतवासियों का 'सिर नीचा' हो गया और उन्हें भारतीय संस्कृति की दुहाई देनी पड़ी। डॉ. मजूमदार इन कृत्यों के पीछे के कारणों का पता लगाए बिना शर्माते हैं या उनका मस्तक झुक–झुक जाता है तो यह जरूरी नहीं कि उनके विचार सही ही हैं। अमृतलाल नागर लिखते हैं–

''गदर की इन घटनाओं के कारण लज्जा के मारे इतिहास के महान पंडित का मस्तक झुक–झुक गया है। उनकी तरह शर्म मुझे भी आती है, मगर मैं यह नहीं भूल पाता कि ऐसे कार्य वीरों द्वारा नहीं वरन उन लोगों द्वारा अधिक हुए हैं जो सदियों तक अपने से अधिक शक्तिशालियों के असंख्य अत्याचार सहन करते आए थे। महान भारतीय संस्कृति की परंपराएं कमजोर क्यों पड़ी, इसका कारण न देख केवल लज्जा से सिर झुकाकर बैठे रहना विद्वान का काम नहीं, अधकचरा बुद्धि वाले भावुकों का, अथवा स्वपक्ष समर्थन करने वाले चतुर वकील का काम हो सकता है। मजूमदार महोदय ने 57 के 'पुरबियों' की क्रूरता और नृशंसता तो देखी, मगर उनकी बहादुरी और उदारता के उदाहरण न देखे, जिनसे उनका मस्तक गौरवयुक्त होकर ऊँचा उठता।''[13]

रिपोर्ताजों में देशप्रेम अनन्य रूप से वर्णित हुआ है। यह अकारण नहीं है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं देशप्रेम को देशवासियों में फैलाने एवं उनको जोड़ने में पत्रकारिता एवं रिपोर्ताज साहित्य का विशेष योगदान है और यह योगदान समय के साथ बढ़ता ही जाएगा।

4.2 स्वतंत्रता

रिपोर्ताज का उद्‌भव द्वितीय विश्व युद्ध की देन है। विश्व युद्ध में पत्रकार युद्ध के मोर्चे पर जाकर युद्ध की भीषणता की रिपोर्टिंग करते थे। जॉन रीड और इलिया एहरनबुर्ग जैसे पत्रकार–साहित्यकार युद्ध के मोर्चे पर जाकर वहाँ का 'आँखों देखा हाल' रिपोर्तज विधा के रूप में प्रस्तुत करते थे। यही वह समय था जब भारत में स्वतंत्रता आंदोलन काफी जोरों पर था। रोज आंदोलन होते थे, राजनीतिक उथल–पुथल से देश में काफी हलचल मची थी। देशवासियों के समक्ष अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति सबसे बड़ा उद्देश्य था। राजनेता हो या पत्रकार या फिर साहित्यकार सभी की लेखनी देश को आजाद कराने में लगी हुई थी। यह दौर आंदोलनों और क्रांतियों का दौर था। हर पल वास्तविकता व घटनाएँ समाज और राष्ट्र को उद्वेलित कर रही थी। क्रांतिकारी विधा होने के कारण पल–पल परिवर्तनशील सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ को पकड़ने में सिर्फ रिपोर्ताज विधा ही पर्याप्त थी। इस संबंध में शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''आज के क्रांति युग में रिपोर्ताज एक ऐसा रूपविधान है जिसके द्वारा वर्तमान जीवन की संघर्षमयी वास्तविकता का अनुभव पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है। रिपोर्ताज में कहानी और उपन्यास के भी कई गुण रहते हैं। लेकिन उसके अंदर तैयार किए गए परिवेश, चरित्र और घटना में यथार्थता और सत्यता अधिक मात्रा में रहती है।''[14]

रिपोर्ताज क्रांतिकारी संघर्ष का ही माध्यम बन सकता है, प्रतिक्रियावादी साहित्य का नहीं। पूंजीपतियों के अत्याचारों का रिपोर्ताज साहित्य में वर्णन एक मानवतावादी और क्रांतिकारी साहित्यकार नहीं कर सकता। वह इन शोषणवादी ताकतों के विरुद्ध ही अपनी लेखनी का प्रयोग करेगा। यही कारण है कि रिपोर्ताज कला का विकास पूंजीवाद या उसके समर्थक कलाकार नहीं कर पाते हैं। अतः जो रचनाकार अपने विचारों और कार्यों से साम्राज्यवाद–सामन्तवाद–पूंजीवाद का विरोधी रहा है वही रिपोर्ताजों की रचना कर पाया है या कर पाता है। शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''भारत की क्रांतिकारी परिस्थिति में ज्यों–ज्यों जोर आता जाएगा, ज्यों–ज्यों रिपोर्ताज भी विकास करता जाएगा। इसके लिए आवश्यक है कि हमारे तरुण लेखक साहित्य के अन्य रूप विधानों के साथ–साथ रिपोर्ताज की कला

को भी अधिक–से–अधिक अपनाएँ, क्योंकि वह उनमें और संघर्षरत जनता में सीधा संबंध स्थापित करके पूंजीवादी समाज की उस असंगति के बंधन तोड़ देगा जिसमें कलाकार और जनता के जीवन का व्यवधान निरंतर बढ़ता जाता है और कला और साहित्य में रहस्यवाद और निराशावाद को जन्म देता है।''[15]

समसामयिकता रिपोर्ताज की अनिवार्य विशेषता है। यद्यपि रिपोर्ताज का संबंध सिर्फ वर्तमान से होता है किन्तु उसका लेखक वर्तमान के उस बिन्दु पर होता है जहाँ से वह भूतकालीन मूल्य और मान्यताएँ दोनों को पिरो सकता है। रिपोर्ताज में संघर्षकालीन सामाजिक यथार्थ को तत्काल शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है। घटना की तीव्र प्रतिक्रिया रिपोर्ताजों में भावात्मक ढंग से प्रस्तुत की जाती है।

रिपोर्ताज तेजी से बदलते युग की देन हैं, अतः आवश्यक है कि उसमें जीवन की समस्त जटिलताओं व संघर्षों का उल्लेख हो। कल्पित और आरोपित जटिलता यहाँ स्थान नहीं पा सकती, अतः सामाजिक संदर्भों का चित्रण और विश्लेषण इस विधा में अवश्य होता है। इस विधा का लेखक प्रारंभ से ही समसामयिक स्थितियों के प्रति सजग रहता है। परिवेश में व्याप्त संघर्ष व मूल्य कभी घटना, कभी चरित्र के माध्यम से मुखरित होते हैं। रिपोर्ताजकार अपनी रचना का आधार और सामग्री परिवेश से प्राप्त करता है। समसामयिकता लेखक के लिए परिवेशगत वह जीवन है जो स्थानीय, देशीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम से जुड़ा होता है।

समसामयिक घटनाएँ चाहे राष्ट्रीय हो या अंतर्राष्ट्रीय, रिपोर्ताजकार उनसे जुड़ा होता है। यही कारण है कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में रिपोर्ताज विधा का प्रमुख विषय भारतीय स्वतंत्रता ही रहा।

स्वतंत्रता को विषय बनाकर जिन लोगों ने रिपोर्ताजों की रचना की उनमें कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रांगेय राघव, प्रकाशचंद्र गुप्त, यशपाल आदि प्रमुख हैं। रिपोर्ताज के आदि लेखकों में शामिल कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', 'स्वतंत्रता' को केन्द्र में रखकर 'अब हम स्वतंत्र हैं' नामक रिपोर्ताज लिखे। भारतवासियों के लिए स्वतंत्रता सबसे बड़ा मूल्य है, जिसको पाने के लिए देशवासियों ने बड़ी–से–बड़ी कीमत चुकाई। स्वतंत्रता प्राप्ति पर जनसामान्य से लेकर बड़े–बड़े राजनेता तक झूम उठे। प्रभाकर जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है–

''परतंत्रता के इस बंदी गृह की दीवारें टूटीं, तो जीवन एक अद्‌भुत नशे से भर उठा और 15 अगस्त 1947 की रात को पल भर भी नींद नहीं आई। नींद तो तब आए, जब कोई बिस्तर पर लेटे। कभी मैं प्रार्थना करता, कभी पृथ्वी को थपथपाता, कभी आसमान को देखता! और कभी गाने लगा। आज वो हसरत, आजादी की हसरत पूरी हो गयी थी और मुझे अनुभव हो रहा था कि हमारे शहीद आज आसमान में गा रहे होंगे। मुझे लग रहा था कि मैं आज बदल गया हूँ, कुछ और हो गया हूँ और मेरा रोम–रोम स्वतंत्रता के गौरव से भर उठा था।''[16]

भारतवासियों के लिए यह स्वतंत्रता बड़ी महँगी साबित हुई। पहले देश के दो टुकड़े हुए और सांप्रदायिकता के नाम पर जो मारकाट मची कि लाखों लोग बेघर हो गए। स्वतंत्रता के बाद जिन–जिन मूल्यों की स्थापना देश में करने की बात हो रही थी वे सारे मूल्य धरे के धरे रह गए। मूल्यों का इतना अवमूल्यन हुआ कि भारतवासियों में स्वतंत्र होने का भाव ही नहीं पनप सका।

भारत की स्वातंन्त्र्योत्तर स्थितियों को लेकर अमृतराय ने ढेर सारे रिपोर्ताज लिखे जो 'लाल धरती' संग्रह में संग्रहीत हैं। अमृतराय का भी यही मानना है– ''आजादी के नाम पर देशवासियों के साथ छल किया गया है। सत्ता का स्थानान्तरण हुआ है आजादी के नाम पर। उनके रिपोर्ताज राजनैतिक जीवन के खोखलेपन को उजागर करते हैं। लेखक अमृत राय के लिए आजादी उस रेलगाड़ी की तरह है जो गुलाम भारत में भी चलती रही है।''[17]

लोगों ने सोचा था कि आजाद देश में भारतवासियों की स्थिति अच्छी होगी, उन्हें सारे अधिकार प्राप्त होंगे, सारी सुविधाएँ मुहैया कराई जाएँगी, किन्तु ऐसा हुआ नहीं। चारों ओर अनैतिकता का वातावरण तैयार होने लगा, भ्रष्टाचार का माहौल व्याप्त हो गया। स्वदेशी शासन व्यवस्था से दुखी होकर अमृतराय लिखते हैं– ''पहले हम उन विदेशियों के गुलाम थे। अब अपने ही देश में गुलाम हैं। अंतर कुछ नहीं हुआ शासक मात्र बदल गए हैं।''[18]

किन्तु ऐसा नहीं था कि हम अपनी स्वतंत्रता पर गर्व न कर सकें और यह आजादी सिर्फ छलावा मात्र थी। सांप्रदायिकता, चोर बाजारी, भ्रष्टाचार आदि नकारात्मक मूल्यों के बीच भारतीय स्वतंत्रता की परीक्षा भी प्रारंभ हुई। धीरे–धीरे भ्रम

का बादल छँटा और भारतवासी अपनी स्वतंत्रता से साक्षात्कार कर सके। प्रभाकर जी लिखते हैं– ''सांप्रदायिक उपद्रव शांत कर दिए गए। गाँधी जी के महान बलिदान से देश को मनोवैज्ञानिक स्थिरता प्राप्त हुई। सरदार पटेल की दृढ़ता से त्रावनकोर, जूनागढ़, हैदराबाद में उठे राजनीतिक तूफान शांत कर दिए गए और राज्यों को भारत में मिलाकर अखंड भारत की स्थापना हुई। वीरवर करियप्पा के नेतृत्व में कश्मीर में पाकिस्तानियों को कुचल दिया गया। नेहरू की लोकप्रियता से विश्व में भारत का मान बढ़ा। नए संविधान ने भारत में गणराज्य–स्थापना की घोषणा की। पहले आम चुनाव शांति से हो गए और व्यवस्थित शासन आरंभ हुआ। पंचवर्षीय योजना के माध्यम से देश का नवनिर्माण आरंभ हो गया। विश्व के महान राज्यों की ओर से सहायता मिलने लगी। कंट्रोल हटा दिया गया। चीजों की सुलभता बढ़ी, जीवन सुगम हुआ और लोगों के मन में स्वतंत्रता की चेतना का आभास झलकने लगा। पाकिस्तान की नित नूतन शासकीय कलाबाजियों के शीशे में भारत की उन्नति और भी स्पष्टता को भारतवासी देख सके और इससे उनके मन में स्वतंत्रता की चेतना रेखाएँ और भी गहरी हो उठीं।''[19]

स्वतंत्रता के अनेक पर्याय हो सकते हैं– स्वराज, आजादी, स्वाधीनता आदि। स्वतंत्रता को व्यक्त करने का रेणु का अपना अलग अंदाज है। 'नए सवेरे की आशा' रिपोर्ताज में पटना के उस किसान आंदोलन को आधार बनाया गया है जिसका नेतृत्व लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने किया था। स्वतंत्रता के बाद का सबसे बड़ा आंदोलन–पटना का किसान आंदोलन। आजादी तो मिल गई, स्वराज्य तो मिल गया किन्तु किसानों को उनका अधिकार नहीं मिला। आजादी छलावा साबित होने लगी। किसान और गरीबों का जीवन बद से बदतर होता चला गया। इस रिपोर्ताज में 'स्वराज्य' यानि 'सुराज' को भ्रम बतलाते हुए रेणु लिखते हैं कि–

''परमानपुर में किसानों की सभा हो रही हैं। दाढ़ी वाले बाबाजी चुन्नीदास लोगों को शांत कर रहे हैं। चुन्नीदास जी 1930 से 42 तक चौदह बार जेल की सजा भुगत आए हैं। कबीरदास के बाद गाँधीदास बनने वाले इस भोले किसान की जमीन नीलाम हो गई। जमींदार न तो पानी बरसाता है न खेत की पैदावार को बढाता है। फिर कैसी मालगुजारी, कैसा खजाना? सन् 1934 में ही उनका यह नारा

था। जमीन नीलाम हो गई, बीबी मर गई, बच्चों को 'कंगरेस' में, गाँधी बाबा की सेवा में सुपुर्द किया। एक आज तक 'कांग्रेस आश्रम' का बर्तन मांजता है, दूसरा पूरब कमाने के लिए भाग गया। जब तक 'सुराज न होगा' जटा और दाढ़ी नहीं कटवाएंगे। सो 15 अगस्त को साधु का धरम भ्रष्ट होते–होते बच गया, प्रतिज्ञा टूटते–टूटते रह गई। दुहाई गाँधी बाबा, जमीन पर जोतने वालों का हक नहीं, गरीबों के पेट में अन्न नहीं, देह पर बस्तर नहीं। लोगों ने झूठ–मूठ हल्ला मचाया कि सुराज हो गया। दुहाई गाँधी बाबा, चौदह बार फिर जाने को तैयार हैं।''[20]

रेणु नेपाल की क्रांति में मुक्तिसेना के साथ राणाशाही के अत्याचार से मुक्त कराने के लिए लड़ाई लड़े थे। मुक्तिसेना के सिपाहियों के मुखमंडल पर हमेशा ही अपूर्व आभा चमकती रहती है। मुक्तिसेना का प्रत्येक सिपाही प्रसन्न मुख है तथा अपने देश की मुक्ति के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने को तैयार है और बूढ़े लोग अपने युवाओं को देश के प्रति समर्पण को देखकर भावुक हो जाते हैं। राणाशाही से युद्ध की घोषणा होने पर नेपाली देशभक्त इस आंदोलन में कूद पड़ते हैं–

''मुक्तिसेना का एक–एक सिपाही–तैयार–प्रतीक्षा कर रहा है। और भी कई दिन प्रतीक्षा में बीते। झिलमिलाती हुई दीपावली की रात आई। विराटनगर के अधिकांश घरों में इस बार 'दीपावली' और भाईदूज का पर्व एक साथ ही मनाए जा रहे हैं। भाइयों ने जिद्द पकड़ी है– ''इस बार दो दिन पहले ही 'टीका' लगा दो दीदी।''

शंख ध्वनि हुई! दीपों की माला जगमगाई! 'भाई–टीका' देते समय स्नेहमयी बहनों ने अपने–अपने भाइयों की आँखों में कैसी चिंगारी देखी कि उनके मुंह से आशीर्वाद के ये दो शब्द स्वयं ही निकल पड़े–'जय नेपाल'।

नेपाली बधुओं ने अपने–अपने पतियों की 'खुकरी' को सिर से छुलाकर विदाई दी–जय नेपाल।''[21]

बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम में मुक्तिवाहिनी के जवान, किसान और विद्यार्थी जो पाकिस्तानी सेना से लड़ रहे थे, उनके पास पूरे साधन नहीं थे पर अपनी

मातृभूमि और अपने देश को आजाद कराने का प्रबल संकल्प था उनके पास। पाकिस्तानी सेना के पास चीन और अमेरिका के दिए हुए अस्त्र–शस्त्र थे किन्तु मुक्तिवाहिनी सेना के पास सच्चाई, इंसाफ और लगन के अलावा और कोई हथियार नहीं था। डॉ. धर्मवीर भारती इस मुक्ति संग्राम में पत्रकार की हैसियत से बांग्लादेश रिपोर्टिंग करने गए थे। धीरे–धीरे मुक्तिवाहिनी सेना, भारतीय सेना की मदद से पाकिस्तानी सेना को हराती जा रही थी। मुक्तिवाहिनी सेना के जवान अपनी जीत के प्रति एकदम आश्वस्त थे। धर्मवीर भारती के मन में एक छोटा–सा अटपटा सवाल गूंजता है– वह यह कि सैन्य शक्ति से पाई जाने वाली जीत एक अन्य प्रकार की तानाशाही का रूप ले लेती है। क्या बांग्लादेश का भविष्य तानाशाही शासन–प्रणाली से अभिशप्त होगा, क्या ये जाबांज मुक्ति सैनिक प्रजातंत्र और धर्मनिरेपक्षता के प्रति निष्ठावान रह सकेंगे? पाकिस्तान की राजनीतिक यात्रा को देखते हुए यह प्रश्न बांग्लादेश के संदर्भ में उचित ही था। डॉ. धर्मवीर भारती के प्रश्न का उत्तर कर्नल उस्मानी जिन शब्दों में देते हैं वह बांग्लादेशी सैनिकों की स्वतंत्रता की भावना का सर्वोत्तम रूप है। डॉ. भारती लिखते हैं–

''कतई नहीं, मैं आपको यकीन दिलाता हूँ। इसकी वजह भी जान लीजिए, अच्छी तरह समझ लीजिए। हमारे मुक्ति योद्धा वेतनभोगी सत्ताकामी सिपाही नहीं हैं। कुछ आदर्शों से प्रतिबद्ध हैं। भाड़े के टट्टू नहीं हैं। उन्हें वेतन तो दूर हम पहनने के लिए वर्दी और जंगल–बूट तक नहीं दे पाए हैं। गंजी और लुंगी में, नंगे पैर, घनघोर बारिश में जोकों और सांपों भरे दलदलों में, घनान्धकार में वे पुरानी राइफलें या हथगोले लिए निकल जाते हैं, क्यों? अपनी मातृभूमि की इज्जत बचाने के लिए। इसलिए कि उनकी मातृभूमि पर फिर से गुलामी की बेड़ियाँ न जकड़ दी जाए, इसलिए कि फिर दुश्मन लाखों का नरसंहार न करने पाए, बुनियादी मानव अधिकारों को न कुचलने पाए। वे जनता से कटे किसी हुक्मरान तानाशाह के तनख्वाहखोर सिपाही नहीं। वे उस विशाल जनशक्ति के अविभाज्य अंग हैं जिसे हम बांग्लादेश कहते हैं। उन्होंने इसीलिए तो हथियार उठाए हैं कि बांग्लादेश की समूची जनता की जो आशाएँ–आकांक्षाएँ हैं उनको वे अपने कार्य द्वारा वास्तविकता में परिणत कर सकें।''[22]

'गदर के फूल' रिपोर्ताज में स्वतंत्रता की भावना को केन्द्र में रखकर सन् 1857 की क्रांति के महान सपूतों, राजाओं, सैनिकों के विषय में जानकारी प्राप्त करना लेखक अमृतलाल नागर का अभीष्ट है। नागर जी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आदि बीज सन् सत्तावन की क्रांति में टूटती हुई परंपराओं को पहचानने की बात करते हैं। यह परंपरा है–वीरता की, देश के लिए प्राण न्यौछावर करने की, स्वतंत्रता की। अमृतलाल नागर लिखते हैं– ''मैं कोरी व्यक्ति पूजा या विगत वैभव की रोमांटिक परिपाटी का पुजारी नहीं। परपराओं को इसलिए पहचानना चाहता हूँ कि उनमें कौन सी ऐसी सशक्त हैं जो हमें आज भी अपने समय और परिस्थितियों से जूझने के लिए नया रूप धारण कर प्रेरणा दे सकती हैं। सौ वर्ष पहले के लोग भले ही देश को नक्शे के रूप में न जानते हों, मगर अपनी धरती की मिल्कियत अपने पास रखने की चेतना वह स्वाभिमान उनमें जरूर था और यह देशभक्ति का बीज नहीं तो फिर है क्या?''[23]

विष्णुकांत शास्त्री, शिवसागर मिश्र, मणि मधुकर, ललित शुक्ल आदि ऐसे अनेक रिपोर्ताजकार हैं जिन्होंने स्वतंत्रता को अपने रिपोर्ताजों का विषय बनाया और उसे एक मूल्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया।

4.3 जीवन के प्रति दृष्टिकोण

यह सर्वविदित है कि रिपोर्ताज मूलतः पत्रकारिता से जुड़ी हुई विधा हैं। इसकी शुरुआत द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में हुई थी। राजनीतिक रूप से यह काल भारत के स्वतंत्रता आंदोलनों का काल था। उस समय देश में रोज नयी–नयी घटनाएँ घटित हो रही थीं जो आगे चलकर देश की दशा और दिशा दोनों का निर्धारण करती। इन घटनाओं के माध्यम से हमारा बुद्धिजीवी वर्ग मंथन और आत्मचिंतन में संलग्न था। कभी कोई घटना देश एवं समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण नजर आती तो अगले पल वही घटना अपनी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता के लिए संघर्ष करती नजर आती। रोज नए–नए दृष्टिकोण जीवन और देश के प्रति बन और बिगड़ रहे थे। चूंकि रिपोर्ताज एक क्रांतिकारी विधा है ऐसे में इसके लेखकों को नए–नए जीवन मूल्यों को देखने और जानने तथा उन्हें अपनी रचना में वर्णित करने का अवसर प्राप्त हो रहा था। तलाश है तो उन शाश्वत मूल्यों की जिनकी वजह से एक दृष्टिकोण स्थापित किया जा सके।

रिपोर्ताज लेखक घटना को मानवीय प्रभाव के संदर्भ में देखता है और उसका मूल्यांकन करता है। रिपोर्ताजकार किसी भी घटना का तथ्यात्मक वर्णन इस प्रकार करता है कि वह पाठकों में संवदेना जागृत कर सके। विकासशील मानव समाज में अपने परिवेश के प्रति सजगता बढ़ती जा रही है क्योंकि मानव जीवन व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक है और यह सामाजिक जीवन समष्टि के जीवन का एक भाग है। दुनिया के किसी कोने में युद्ध हो, क्रांति हो, बाढ़ या कोई अन्य प्राकृतिक आपदा आए–उसका असर कम या ज्यादा हमारे ऊपर जरूरत पड़ता है। दुनियाँ में जहाँ भी दो पक्ष हो, किसी भी बौद्धिक प्राणी की संवेदना एक पक्ष की ओर जरूर रहेगी। जीवन का दृष्टिकोण जरूर पनपेगा। रिपोर्ताज लेखक इस तत्व के प्रति अत्यंत सजग रहता है। प्रो. हरिमोहन के अनुसार.... ''रिपोर्ताज कथेतर गद्य का वह विवरणात्मक घटना प्रधान साहित्यिक रूप है जिसमें किसी घटना का तथ्यपरक एवं मानवीय सरोकारों से युक्त प्रभावूपर्ण विवरण दिया जाता है। इस विवरण में लेखक का निजी दृष्टिकोण सक्रिय रहता है और जनता के प्रति सच्चा प्रेम भी।''[24]

प्रो. हरिमोहन के शब्दों पर ध्यान दें तो यह पता चलता है कि विवरण में लेखक का 'निजी दृष्टिकोण' सक्रिय रहता है। यह 'निजी दृष्टिकोण' ही रिपोर्ताज को अन्य विधाओं से अलग खड़ा करता है। यूँ तो प्रत्येक विधा में रचनाकार का निजी दृष्टिकोण अभिव्यक्ति पाता है किन्तु रिपोर्ताज द्रुतगामी विधा है ऐसी स्थिति में निजी दृष्टिकोण का बनाना भी बहुत जल्द ही होता हैं ऐसे में यदि निजी दृष्टिकोण घटना को सही तरह से नहीं पकड़ पाया तो उसके अनर्थकारी परिणाम होंगे और यह विधा अपनी अर्थवत्ता खो देगी। शिवदान सिंह के शब्दों में– ''ललित साहित्य सामाजिक प्रभाव और स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक तीव्र अस्त्र है। लेकिन वह आज की समस्या का आज ही हल पेश करने में असमर्थ हैं। इसका प्रभाव युगों तक चलता हैं दैनिक जीवन की विशिष्ट समस्याओं तक उसकी पहुँच नहीं होती। इसलिए आधुनिक जीवन की इस नयी द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नए साहित्यिक रूप–विधानों को जन्म देना पड़ा है। रिपोर्ताज उनमें से सबसे प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण रूप विधान है।''[25]

रिपोर्ताज तत्काल घटित यथार्थ घटनाओं का ऐसा क्रांतिकारी चलचित्र है, जिसमें लेखक अपनी अनुभूतियों एवं प्रतिक्रियाओं को अभिधात्मक, प्रभावपूर्ण साहित्यिक संवेदना को उभारने वाली भाषा में ध्यान, धारणा और भाव से समन्वित करके उपस्थित रहता है।

'धारणा' ही वस्तुतः दृष्टिकोण है जो मानव जीवन के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। जब सफल पत्रकार या साहित्यकार वास्तविक घटना को अपने भीतर निहित मूल्यों के अनुसार एक विशेष कोण से उपस्थित करके प्रभावपूर्ण बना देता है तो वह रिपोर्ताज की कला–सृष्टि करता है।

रिपोर्ताज में लेखक का निजी दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है। उसका यह दृष्टिकोण सही अर्थों में समाज और जीवन के प्रति धारणा ही है जिसे वह अपनी रचना में स्थान देता है। ऐसे रिपोर्ताजकारों में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', फणीश्वरनाथ 'रेणु', भगवतशरण उपाध्याय, ललित शुक्ल, धर्मवीर भारती, प्रकाशचंद्र गुप्त, लक्ष्मीचंद जैन आदि प्रमुख हैं।

भगवतशरण उपाध्याय के दो रिपोर्ताज संग्रह– 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर' और 'ठूँठा आम', में लेखक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुए हैं। 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर' रिपोर्ताज संग्रह आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए 'स्त्री', 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', 'वैश्य', 'शूद्र', 'अंत्यज' और 'लेखक' की कहानी कहते हैं। इन रिपोर्ताजों में लेखक ने जीवन के इतने पक्षों को उभारा है कि वह भारतीय संस्कृति के जीवंत दस्तावेजी इतिहास बन गए हैं। वस्तुतः इन रिपोर्ताजों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही व्यक्त किए गए हैं। 'नारी' रिपोर्ताज में लेखक नारी जीवन के शुरुआती दौर से लेकर अब तक के जीवन की छानबीन गहराई से करता है। नारी जीवन में आए महत्त्वपूर्ण बदलावों को लेखक नए दृष्टिकोण से देखने और समझने का प्रयास करता है। नारी जीवन के संदर्भ में, जहाँ पति की मृत्यु के बाद पत्नी को शव के साथ सोने की बजाए किसी और को चुनने की बात की गई है। भगवतशरण लिखते हैं कि– ''अब पति के मरने पर मुझे अपना बलिदान न करना होता, वरन दूसरे का ग्रहण। शव के साथ एक बार लेटना अवश्य होता परन्तु शीघ्र देवर–छोटा वर–जिसके लिए विवाह के समय ही मेरी संज्ञा 'देवृकामा'– देवर की कामना करने वाली– पड़ी, हाथ पकड़कर नव–संस्कृति की ओर संकेत करता और पुरोहित कहता, ''उठ नारी, वह मृतक है जिसके पार्श्व में तू पड़ी है। उठ, और इस नवोदित को वर, इसको जो तेरे विगत पति के धनुष के साथ ही तेरा पाणि–ग्रहण करता है। उठ, और जीवितों के जगत में प्रवेश कर।''[26]

'लेखक' रिपोर्ताज में सभ्यता के विकासकाल से चली आ रही लेखन परंपरा को रिपोर्ताजकार ने मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया। लेखक किन मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होकर अपनी लेखनी चलाता है, जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण क्या हैं, आदि बातों को वह बिना डरे या पक्षपात किए लिखता चला जाता है। बदले में उसे व्यवस्था का कोपभाजन बनना पड़ता है किन्तु उसके लेखन कला के केन्द्र में साधारण मनुष्य ही रहता है। वे लिखते हैं–

''आज मेरी अवस्था असाधारण है। ईमानदारी से जीवित रहना कठिन हो रहा है। सत्य के उद्‌घाटन में वस्तु–स्थिति लिखकर मैं औरों को कुपित करता हूँ, दुश्मन बनाता हूँ। चारों ओर दैत्यों का संघ खड़ा है, रात्रि जैसे अपनी उस काली

चादर से मुझको और मेरी लेखनी को लपेटे जा रही है जिसमें असुर साहसिक साधु दमन करते हैं, स्वच्छंद नागरिकता का गला घोंटते हैं परंतु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अपनी क्षुब्ध लेखनी की फौलादी नोक से मैं उसको तार–तार कर दूँगा– तमिस्रा के काले–कलेवर पर नए जीवन का बालारूण हँसेगा। आज मेरी शक्ति की परीक्षा है और साथ ही मेरी मानवता की भी, परन्तु मैं आश्वस्त हूँ क्योंकि सजग मानवता अपने पैरों पर खड़ी हो चली है और– 'तोड़कर बंधन युगों का आज मानव आ रहा है।''[27]

भगवतशरण उपाध्याय का दूसरा रिपोर्ताज संग्रह है– 'ठूँठा आम'। इस संग्रह में लेखक के अपने जीवन–दृष्टिकोण प्रबल रूप में व्यक्त हुए हैं। लेखक ने 'ठूँठा आम', 'संभवामि युगे–युगे', 'टूटे सूत', 'मैं मजदूर हूँ', 'दिल्ली की आपबीती', 'अभिसार का आकर्षण', 'कोलाहल में एकाकी', 'कबीर अमेरिका में' आदि रिपोर्ताजों में विषय को गंभीरता एवं मार्मिकता से विवेचित किया है। ये रिपोर्ताज संबंधित विषय के संबंध में एक धारणा बनाने के लिए पर्याप्त हैं। इस संबंध में अली मुहम्मद के विचार लेखक के दृष्टिकोण को पूर्णतया व्यक्त करते हैं। अली मुहम्मद लिखते हैं– ''श्री उपाध्याय का अभिव्यक्ति कौशल ही कुछ ऐसा है कि ये रिपोर्ताज जिनके विषय युगीन जीवन की समस्याओं से जुड़े हैं इस विधा के नवीन उदाहरण लगते हैं। यह नवीनता शैली–प्रयोग की ही नवीनता है। पौराणिक पुट इन रचनाओं की यथार्थता में अवश्य बट्टा लगाता है, फिर भी ये कल्पना की कोरी उड़ानें नहीं हैं, एक अनुभव्य सामाजिक सच्चाई की उपज हैं।''[28]

'संभवामि युगे–युगे' रिपोर्ताज में मानव के मानव बनने की कहानी कही गयी है। मानव जो कभी इस धरती पर अकिंचन था, कमजोर तथा साधनहीन था, सदियों के अथक परिश्रम और विकास–यात्रा ने उसे शिव, परशुराम, राम–कृष्ण, गाँधी, बुद्ध, मार्क्स और लेनिन बना दिया और उसकी विजय यात्रा प्रारंभ हुई। उसने जहर में अमृत घोला, वह नीलकंठ बन डमरू बजा काल को भी पछाड़ दिया। उसने सारे प्रतिबंधों को तोड़ा, सारी वर्जनाओं से स्वयं को मुक्त किया और जिंदगी की गिरहों से आजाद हुआ। यह थी मानव की जय–यात्रा। भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं– ''और मैं अपनी नजर जर्रे–जर्रे पर खाँ रखता हूँ, जैसे–जैसे युग–युग में रखता

आया हूँ। युग–युग मानवता के शत्रु, दंभ और अहंकार के उपासक इंसानियत का दलन करने का प्रयत्न करते आए हैं, युग–युग में जन्म लेकर उनका सामना किया है, मानवीय धर्म की प्रतिष्ठा की है। साधुओं का परित्राण, असाधुओं का नियंत्रण किया है। मैं स्वयं मूर्तिमान मानवीयता हूँ, अजर और अमर हूँ, मानवीय दाय की अघट निधि लिए मानव शृंखला की कड़ी–कड़ी के सामने उपस्थित होता हूँ। आमीन्!''[29]

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिन्दी रिपोर्ताज लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। प्रभाकर जी ने लगभग सभी विषयों पर रिपोर्ताज लिखें। उनके यहाँ विषय–वैविध्य है। उन्होंने सभी विषयों पर समान रूप से लेखन किया है। प्रभाकरजी की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदि विविध विषयों पर रिपोर्ताज लिखे हैं। उनमें जहाँ सामाजिक चेतना की गहराई है वहीं सांस्कृतिक जागरूकता भी उदात्त है। वे एक ओर तो ऐतिहासिक तथ्यों में अपनी रुचि दिखाते हैं तो दूसरी ओर उज्ज्वल भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था भी उनके व्यक्तित्व में झलकती है। उनका व्यक्तित्व विराट और बहुआयामी है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण उनके विराट व्यक्तित्व की देन है। अपने रिपोर्ताजों में उन्होंने जहाँ एक ओर बड़े–बड़े राजनेताओं, महान धार्मिक संतों, प्रसिद्ध त्यौहारों का वर्णन किया है तो वहीं भंगियों, हरिजनों एवं अन्य पिछड़ी जाति के गुमनाम व्यक्तियों, छोटे कस्बों आदि को अपने रिपोर्ताजों का विषय बनाया है। लफंगों, बंदरों तथा लुच्चों तक को उन्होंने अपने रिपोर्ताज का विषय बनाया है। वस्तुतः जितनी विविधता उनकी विषयवस्तु में है, उतनी हिन्दी के अन्य किसी रिपोर्ताज लेखक के साहित्य में नहीं। यह विविधता सिर्फ इसलिए आ सकी कि जीवन को देखने का उनका नजरिया अलग था। डॉ. वीरपाल वर्मा लिखते हैं– ''कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के रिपोर्ताजों में नवीन ऐतिहासिक चेतना के दर्शन होते हैं। इसी ऐतिहासिक चेतना के कारण उन्होंने तत्कालीन स्थितियों एवं परिस्थितियों को देखकर ही अपने रिपोर्ताजों में भविष्य के लिए कतिपय संभावनाएँ व्यक्त कीं जो कालांतर में सत्य सिद्ध हुई।''[30]

अपने रिपोर्ताज लेखन के पीछे कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर गहरे चिंतन को श्रेय देते हैं। उनका मानना है कि ''रिपोर्ताज घटना का हो, दृश्य का हो या उत्सव–मेले का हो उसे ज्ञान और आनंद का संगम होना चाहिए। मैं जो कुछ देखता हूँ उसे बहुत विस्तार से देखता हूँ, बहुत गहराई में देखता हूँ तब चिंतन में उस देखे हुए दृश्य के अर्थ फैलाता हूँ, फलितार्थ फैलाता हूँ और लिखते–लिखते उसे इतिहास की कड़ी और जीवन की लड़ी से इस तरह जोड़ देता हूँ कि एक संपूर्ण चित्र बन जाता है। लिखते समय मैं उस दृश्य के साथ इतना तल्लीन रहता हूँ कि मुझे यह भान ही नहीं होता कि मैं इस समय उस वर्णनीय यात्रा, उत्सव, घटना या दृश्य के बीच नहीं हूँ।''[31]

मार्च 1948, मसूरी का वुडस्टाक मेला। लेखक इस मेले में दर्शनार्थी की हैसियत से जाता हैं। वहाँ एक इंटरमीडिएट स्कूल के क्लासों में दुकानें लगी हैं और बाहर से आई चीजें बिक रही हैं। विक्रेता सब अंग्रेज हैं– स्कूल के अध्यापक, अध्यापिकाएँ और कार्यकर्ता। वहाँ और भी भारतीय मेला देखने गए हैं। लेखक उनके चेहरे को देखता है तो पाता है कि उनके चेहरे पर कहीं भी स्वतंत्र होने का भाव नहीं है। आखिर ऐसा क्या कारण है कि आज भारतीय आजाद होने के बाद भी उनमें आजादी का गर्व नहीं है।

मानव का स्वभाव होता है दूसरों की गलतियों पर हँसना, रस लेकर उसका मजाक उड़ाना। आदमी की आदत है कि दूसरे को बेवकूफ बनते देखता है तो उसके फेफड़े और होंठ खिल उठते हैं। शायद आदमी की इसी आदत ने नाटकों में जोकरों को जन्म दिया है। जोकर बेवकूफ न हो, तब भी बेवकूफ बनता है और हम हँसते हैं। लेखक सोचता है कि आखिर ऐसा क्यों होता है। आखिर एक सूत्र उसके हाथ आया। वह यह कि भूल हो जाए, बेवकूफ बन जाओ। तब भी झेंपों मत, उसमें रस लो। झेंप दूसरी ओर मुड़ जाएगी और आप उससे साफ बच जाओगे।

संस्कृति क्या है? यह प्रश्न अपने आप महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जितनी बहस संस्कृति पर होती है उतनी ही यह उलझती चली जाती है। मनुष्य युगों–युगों तक जंगल में रहा है, पशुओं में रहा है, पशुओं की तरह रहा है। उस काल की आदतें, प्रवृत्तियाँ आज भी उसके मानस में रची–बसी हैं। ये प्रवृत्तियाँ उसे पशुता की ओर

बहा ले जाती हैं। वह पशुता के कार्य करने पर उतारू हो जाता है। पर उसके भीतर पशु से भिन्न बतलाने वाली, अपने को पशु से श्रेष्ठ समझने वाली एक आत्मचेतना है और वह उसे सदा पशुता से रोकती।

जो आदमी अपने संगृहीत धन को महत्त्व दे वह धनपति, पर जो उसे मनुष्य की अपेक्षा भी महत्त्व दे, वह धनपशु, जिसके लिए संसार में धन ही सर्वोत्तम है। एक दिन हमारी ईमानदारी, देश की सामूहिक व्यवस्था में अपना भाग अर्पित करने की हमारी निष्ठा इस रूप में थी, पर आज एक खाता–पीता आदमी अपने स्वतंत्र देश की सरकार को कुछ पैसों का भी धोखा देने को तैयार है। कहने का आशय यह है कि जो जीवित मनुष्य की अपेक्षा अपने जड़ धन को अधिक महत्त्व दे वही नहीं, जो सत्य की अपेक्षा, न्याय की अपेक्षा धन को महत्त्व दे, वह भी धनपशु है। इस संदर्भ में लेखक निष्कर्ष पर पहुँचता है। 'जब हम सिर्फ एक इकन्नी बचाते हैं' रिपोर्ताज में प्रभाकर जी लिखते हैं– ''जीवन में हम क्या करें, क्या न करें? इस प्रश्न के समाधान और निर्णय का मापक तत्व है सत्य, न्याय, औचित्य और सौंदर्य। हमारा हर निर्णय सत्य से, न्याय से, औचित्य से और सौंदर्य से समर्थित हो पर इनकी उपेक्षा करके जब हम अपने निर्णय को धन के लाभ या बचत की दृष्टि से करते हैं तो धनपशु हो जाते हैं; भले ही यह लाभ या बचत एक आना हो या एक करोड़ रुपए, क्योंकि धनपशुता धनपतित्व का अनिवार्य अंग नहीं, यह एक वृत्ति है। कुछ पैसे के लिए एक शब्द कम करके जो मनुष्य तार की स्पष्टता, उसका सौंदर्य नष्ट करता है, वह भी निश्चय धनपशु है।''[32]

सीता और मीरा हमारे राष्ट्र के दो महान नारी चरित्र और हमारी नारी–संस्कृति की महत्त्वपूर्ण इकाई हैं। सीता सामाजिक मर्यादा का प्रतीक है और मीरा मर्यादा भंग का। क्या ये दोनों नारी के स्वतंत्र रूप हैं? दो होकर भी लगता है ये दोनों नारी चरित्र का आदि अंत हैं– एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं। सीता भी अपने में अपूर्ण और मीरा भी। ये दोनों मिलकर एक पूर्णता का रूप लेती हैं। सीता ने समाज व्यवस्था की रक्षा के लिए समाज की मर्यादाओं का पालन किया। यह जानकर भी कि राम का दिया दंड अन्यायपूर्ण है, नारी पर पुरुष का राक्षसी अत्याचार है। उसने राम के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया और राम, हमारी सभ्यता के

पाणिनि थे। राम ने समाज व्यवस्था की जो मर्यादा बाँधी उसमें हमारी सामाजिक विधान की कोमलता नष्ट हो गयी और वह पत्थर के स्तंभ की तरह नारी की बंधनशीला बनकर रह गयी। इधर मीरा समाज की मर्यादा के प्रति अथ से इति तक विद्रोही है। मीरा को न तो प्रलोभनों से बाँधा जा सकता है और न लोक निंदा के भय से और न ही मृत्यु और दंड के आतंक से। मीरा ने राणा के अत्याचारों के सम्मुख घुटने नहीं टेके। सीता और मीरा के इसी सम्मिलित जीवन दृष्टि को लेखक प्रभाकर आदर्श के रूप में रखते हैं। वे 'सीता और मीरा' रिपोर्ताज में लिखते हैं– ''सीता ने समाज–व्यवस्था की रक्षा के लिए जिस मर्यादा का कठोर पालन किया, मीरा ने सत्य की रक्षा के लिए उसके टुकड़े–टुकड़े कर दिए और दोनों ने मिलकर जैसे संसार से कहा– समाज की मर्यादा संकट सहकर भी पालन करने योग्य है, जब वह सत्य पर आश्रित हो, शिव पर संतुलित हो और सुंदर की विधायिका हो और समाज की मर्यादा संकट सहकर, प्राण देकर भी भंग करने योग्य है, जब वह सत्य के विरुद्ध हो, शिव की बाधक हो और सुंदर की नाशक हो।''[33]

कहने का आशय है कि मर्यादा साधन है साध्य नहीं। वह इसलिए है कि सत्य, शिव, सुंदर का पथ प्रशस्त करे। वह इसलिए नहीं कि सत्य, शिव, सुंदर के पथ में बाधक बनकर खड़ी हो।

ललित शुक्ल के रिपोर्ताजों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट ही परिलक्षित हो जाते हैं। 'पार्वती के कंगन' उनका रिपोर्ताज संग्रह है जिसमें प्रकृति, संस्कृति, साहित्य, आदि विषयों से संबंधित रिपोर्ताज संकलित है। इन रिपोर्ताजों में लेखक के दृष्टिकोण मौजूद हैं। वागातोर गोवा का एक समुद्र तट है। वागातोर का प्राकृतिक दृश्य, बदलता माहौल और झाग भरी लहरें देशी–विदेशी सैलानियों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। गोवा और खासकर वागातोर पहुँकर व्यक्ति मौज–मस्ती में डूब जाता है। स्वीडन, इटली, अमेरिका और फ्रांस आदि से आए हिप्पी कल्चर के प्रेमियों के झुंड रेत पर घूमते–फिरते, नंगे नहाते। लेखक को ये दृश्य, ये नंगापन अंदर तक व्यथित करता है। इस नंगी सभ्यता से लेखक दुखी है। वह कहता है–

''कुछ तो विदेशी के नाम पर और बहुत कुछ देशी वस्तुएँ विदेशी के भाव आती–जाती रहती हैं। विदेशी का क्रेज अभी भी अपने देशवासियों में है। अंजुना का

सागर तट वागातोर जैसा नहीं है। सभी तटों की अलग–अलग भंगिमाएँ हैं पर वागातोर जैसी नैसर्गिक कृति को विकृति के कीड़ों से बचाना चाहिए। सभ्यता का लंबा रास्ता पार करके हम जिस मंजिल तक पहुँचे हैं, कहीं उससे पीछे तो नहीं लौट रहे हैं।''[34]

विवेकीराय के रिपोर्ताज संग्रह 'जुलूस रुका है' में उनका बदलते परिवेश में जीवन जीने के लिए आवश्यक समझ एक गहरे अनुभव से बनती है, जैसे दृष्टिकोण मिलते हैं। विवेकी राय बिना लाग–लपेट के, बिना भाषा का आडंबर खड़ा किए अपनी बात कह डालते हैं। उनके रिपोर्ताज उनकी सोच एवं वैचारिक प्रतिबद्धता के वाहक हैं। लेखन के साथ–साथ ग्रामीण, सांस्कृतिक संदर्भों को जोड़कर किसी घटना के प्रति अपने दृष्टिकोण को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते चलते हैं। 'सावधान! गाँवों में शहर आ पहुँचा' रिपोर्ताज में गाँव के बदलते परिदृश्य को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। खलिहानों का खत्म होते जाना, नौकरी के लिए शहर की ओर पलायन, गाँव की गंदी राजनीति, अपने तीज–त्यौहारों से अरुचि, जालसाजी एवं मुकदमेबाजी, रंग–बिरंगी फिल्मी पत्रिकाएँ, गुप्त पत्रिकाएँ, रोमांच और सनसनी–भरा साहित्य, अधकचरा फैशन, सिनेमा, कोकाकोला आदि बदलावों ने गाँव की पहचान ही संकट में डाल दी है। इन सबसे लेखक दुखी हैं। वे इस रिपोर्ताज में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हैं– ''यह सब कैसा गड्डमड्ड है? क्या परिवर्तित गाँव संतुलन के लिए चुनौती नहीं हो गए हैं? नए मूल्य यहाँ सुविचारित साहस बनकर नहीं, अंधानुकरण, आलस, स्वार्थ और मनमानापन बनकर उभरे हैं। आर्थिक विकास पर सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य बलि चढ़ गए हैं। गाँव मर रहा है। बेचारा बहुत भला था। मगर क्या उसे बचाया जा सकता है! यह युग बहुत क्रूर है। इसके लोहे के हाथ–पैर हैं। यांत्रिक मन में कहा दया–माया? वह बात बहुत पहले कही गयी थी कि शहरों को शैतान बनाता, गाँवों को भगवान।''[35]

धर्मवीर भारती के रिपोर्ताज बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम से संबंधित है। मुक्तिवाहिनी के सैनिक युद्ध नहीं चाहते, हत्या या नरसंहार नहीं चाहते। पर पाकिस्तानी सेना ने जो नरसंहार ढाका में मचाया, बांग्लादेशी जनता पर अत्याचार किया, लड़कियों पर अमानुषिक अत्याचार किए, इन सबसे मुक्ति के लिए युद्ध

अनिवार्य हो गया। मुक्ति–शोषणवादी शक्तियों, अत्याचारी शासन व्यवस्था से। यह सच है कि युद्ध का बुनियादी आधार शांति है, प्यार हैं, 'भालोवाशा' है। बांग्लादेशी नागरिक एवं सैनिक न्याय और सत्य के लिए युद्ध लड़ रहे हैं और वे अपनी 'आजादी' के प्रति आश्वस्त भी हैं। बांग्लादेशी सैनिकों की जीवन दृष्टि उदात्त है। धर्मवीर भारती लिखते हैं–

''यह उनकी सहज, दृढ़, अपराजेय निष्ठा है। यह अपनी मिट्टी में जड़ें फेंकने वाली दूब–टैंक इसे कुचल दे, हवाई जहाज इस पर बम बरसाए, यह नन्ही दूब फिर मिट्टी से उगकर गौरव से अपना सर उठा देगी। कभी वेद की एक ऋचा पढ़ी हुई थी 'कांडात्कांड प्ररोहन्ती', कांडी–कांडी करके इंच–इंच बढ़ती हुई यह दूब सारी धरती छा लेती है। इसी जीवनधर्मी अपराजेयता के कारण दूब के द्वारा ही देवों की पूजा की जाती है। लेकिन अगर ईश्वर है तो इस बंकर पर जमाई गई दूब उसकी पूजा का उपकरण क्यों नहीं,? क्या इससे कोई पवित्र और कोई दूब हो सकती है?''[36]

जीवन की समस्त जरूरतों को पूरा करने वाला किसान है। किसान को युद्ध में सबसे ज्यादा क्षति उठानी पड़ती है। बर्बर, असंस्कृत और मानवीयता रहित लुटेरे अपेक्षाकृत सभ्य, सुसंस्कृत मानव पर आक्रमण किया है तो इस किसान ने सबसे ज्यादा दमन और यातना झेला है। रौंदे हुए खेत, जले हुए गाँव, पोखरों में लाशें, भालों की या बेयोनेट की नोकों पर टंगे बच्चे, बलात्कार से क्षत–विक्षत बधुएं और कन्याएँ और सामूहिक कत्लेआम, हर बार अपेक्षाकृत बर्बर हमलावरों ने इसी किसान की छाती पर यह रक्त गाथा लिखी है। राजसत्ता ने भी इन्हीं किसानों का शोषण किया। यह असंतुलन सिर्फ क्रांति के द्वारा संतुलित की जा सकती है, कभी समाज सुधार के द्वारा। नींव का निर्माता किसान इन क्रांतियों में महिमामंडित किया गया। उसे 'नहि मानुषात श्रेष्ठतम हि किंचित' कहा गया या जाति पांत पूछे नहिं कोई, 'हरि को भजै सो हरि का कोई' से व्यंजित किया गया या 'स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व' की शब्दावली से नवाजा गया हो। मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित करने का हर संघर्ष महाभारत है और युद्ध क्षेत्र, कुरुक्षेत्र है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताज संग्रह 'ऋणजल धनजल', 'नेपाली क्रांति कथा', एवं 'श्रुत–अश्रुत पूर्व' में उनके लेखकीय दृष्टिकोण उभरकर आए हैं। रेणु उन महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताजकारों में सम्मिलित हैं जिन्होंने रिपोर्ताज साहित्य को पल्लवित–पुष्पित ही नहीं किया अपितु महत्त्वपूर्ण गद्य विधाओं के बरक्स लाकर खड़ा कर दिया। रेणु ने रिपोर्ताज को क्रांतिकारी साहित्य बनाने में काफी योगदान दिया। 'श्रुत–अश्रुत पूर्व' रिपोर्ताज संग्रह उनके रिपोर्ताज लेखन का उत्कृष्ट नमूना है। रेणु वैचारिक बातें लिखने या करने से बराबर कतराते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने लेखन के संबंध में ढेर सारे फतवे नहीं दिए और न कभी बढ़–चढ़कर अपने को प्रदर्शित ही किया। रेणु का मानना है कि लेखकीय कर्म राष्ट्र निरपेक्ष नहीं होना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले देश को आजाद कराना हमारा प्रमुख उद्देश्य था। अतएव हमारा साहित्य इसी उद्देश्य के चारों ओर गतिशील था। पर स्वतंत्रता प्राप्ति के प्श्चात साहित्य का उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया। अब साहित्य का उद्देश्य–राष्ट्र निर्माण की समस्या होना चाहिए। रेणु को ऐसा लगता है कि गहन चिंतन की परंपरा देश की स्वाधीनता के वर्षों बाद तक नहीं बन पाई है। देश में प्रचलित अनेक वाद और विचारधाराएँ लेखकों को बाँट देती है। लेखक अपने–अपने वाद के प्रति सख्त हो जाते हैं और राष्ट्र–निर्माण की भावना पीछे हो जाती है। रेणु 'राष्ट्र–निर्माण में लेखक का सहयोग' रिपोर्ताज में लिखते हैं कि–

''यह सही है कि लेखक–वर्ग विभिन्न राजनीतिक मतवादों से प्रभावित हैं। जिन पर किसी राजनीति का प्रभाव नहीं, उनकी अपनी राजनीति है, उनका अपना दर्शन है। इनमें से अनेक ऐसे हैं, जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि प्राप्त कर ली है। इसलिए राष्ट्र–निर्माण को हम विभिन्न दृष्टि से देखते हैं। इसके बावजूद भारतीय लेखक–वर्ग राष्ट्र–निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है। यह हमारा विश्वास है क्योंकि भारतीय जन ने राष्ट्रीयता का पाठ अच्छी तरह पढ़ा है। फिर लेखक या कलाकार जिसका धरती से इतना लगाव हो, वह राष्ट्र–निर्माण के कामों को देख–सुनकर अनुप्राणित हुए बिना कैसे रह सकता है?''[37]

'बिदापत–नाच' रिपोर्ताज में रेणु ने हमारी सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर रहने वाले मुसहर, धांगड़, दुसाध के यहाँ विवाह, मुंडन तथा

अन्य अवसरों में आनंद एवं मनोरंजन हेतु आयोजित की जाने वाली नाच को जीवन के प्रति दृष्टिकोण से जोड़कर देखा है। यह नाच ओरिएंटल और शास्त्रीय नृत्य में दिलचस्पी रखने वाले पाठकों को पता भी नहीं होगा। रेणु जानते हैं कि मनोरंजन भी जातीय आधार पर बने हैं हमारे समाज में और तथाकथित भद्र समाज यह नाच देखने में अपनी तौहीनी मानता है। अतएव तथाकथित भ्रद समाज और ओरियंटल और शास्त्रीय नृत्य में रुचि रखने वाले पाठकों को यह रिपोर्ताज आनंदित नहीं कर पाएगा।

रिपोर्ताज लेखकों ने जीवन को बड़ी संजीदगी से अपने रिपोर्ताजों में पिरोया है। जीवन और उसकी धारणाओं के जितने भी रंग हो सकते हैं, साहित्य में वर्णित किए जाते हैं अपने पूर्णता के साथ रिपोर्ताजों में खिल उठे हैं।

4.4 मानवीय संवेदना

किसी भी साहित्य रूप विधान एवं कला के केन्द्र में मनुष्य है। मनुष्य के सुख–दुख, हर्ष–विषाद का वर्णन कर साहित्य आकार पाता है। जिस साहित्य में मनुष्य के सुख–दुख का वर्णन नहीं किया जाता, जिसका केन्द्र मनुष्य नहीं होता, वह साहित्य बहुत दिनों तक नहीं टिकता, जल्द ही भुला दिया जाता है। रिपोर्ताज का जो स्वरूप निखरकर आया उसमें मानवीय संवेदना को प्रमुख स्थान मिला। सभी लेखकों ने अपने रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना को प्रमुखता से वर्णित किया। जब साहित्यकार के शब्द पाठक के मन प्राण को अपनी दुखातिरेक की अभिव्यक्ति से आंदोलित कर देते हैं, तब उस रचना का वह अंश मार्मिक कहलाता है। मार्मिक स्थल की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि पाठक का मन रचना को पढ़ने से साधारणीकृत होकर गहन दुख की अनुभूति करने लगे। ये मार्मिक स्थल रचना की संप्रेषणीयता को बढ़ा देते हैं और पाठक, लेखक की ही भाँति उस दुख के सागर में डूबने लगता है जिसमें कि लेखक पहले डूब चुका होता है। यह मार्मिकता की विशेषता रिपोर्ताज के लिए आवश्यक है। यद्यपि मार्मिकता की भूमिका प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं में होती है, तथापि विशेष रूप से रिपोर्ताज के लिए इसकी भूमिका बढ़ जाती है क्योंकि इस विधा में घटना का यथा तथ्य चित्रण होता है। अतः वर्णित मार्मिकता भी कल्पनाजनित न होकर वास्तविक ही होती है, लेखक ही स्वयं की आँखों–देखी होती है।

मानवीय संवेदना ही वह मूल्य है जो किसी भी अति–व्याप्ति को या अमानवीय युद्ध–विवरणों को रोकता है। आदिकालीन कवि युद्ध क्षेत्र में तो गए एवं युद्धों का भयानक वर्णन भी किया। इन वर्णनों में उनके आश्रयदाताओं का यशोगान था। युद्ध में घायल सैनिकों एवं जनता के प्रति इन चारण कवियों की संवेदना लेश–मात्र भी न थी। रिपोर्ताज के प्रमुख तत्त्व–मानवीय संवेदना का यहाँ नितांत अभाव मिलता हैं यदि इन काव्यों में मानवीय संवेदना होती तो ये आदिकालीन काव्य रिपोर्ताज की पूर्व–पीठिका के रूप में स्वीकार किए जाते।

रिपोर्ताज लेखक का मुख्य उद्देश्य है घटना से प्रभावित लोगों के प्रति पाठक की संवेदना को जगाना। ऐसा करके लेखक मानवता के सबसे बड़े प्रश्न को लोगों

के सम्मुख यथातथ्य रूप में प्रस्तुत कर देता है और पाठकों की संवेदना को भोक्ता के साथ एकात्म कर देता है। डॉ. रामविलास शर्मा 'मानव के प्रति सच्चे प्रेम' को इस विधा का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। यदि 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास' है तो जन–समूह का दुख–दर्द व्यक्त करना रिपोर्ताज साहित्य की अनिवार्य विशेषता।

यद्यपि रिपोर्ताज वस्तु या घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया पर आधारित होता है इसलिए उसमें हर्षोल्लास, करुणा तथा अवसाद जैसे संवेदनों की अभिव्यक्ति पर्याप्त रूप में होती है। रिपोर्ताज वस्तुगत सत्य को प्रभावशाली बनाता है, उसका संबंध सिर्फ वर्तमान से होता है किन्तु उसका लेखक वर्तमान के उस बिन्दु पर होता है जिसमें भूतकालीन मूल्य और भावनाएँ रहती हैं और भविष्य के प्रति उत्कट लालसा भी।

प्रत्यक्ष तथा ताजा अनुभवों पर आधारित रिपोर्ताज विधा संवेदनशील मार्मिक वर्णन द्वारा मानवीय–मूल्यों का समर्थन करती है। रिपोर्ताज के आदि और अंत में मानवीय संवेदना ही महत्त्वपूर्ण हैं। संवेदना से ही इसकी उत्पत्ति और संवेदना की जागृति में इसका अंत है। रिपोर्ताज एक संवेदनशील कला है कहना सही होगा।

रिपोर्ताज विधा दृष्ट सत्य को दूसरों के अनुभव्य तथ्य में परिणत करने में अग्रणी है। मनुष्य के प्रति सहज सुलभ आकर्षण तथा पीड़ित मानवता के प्रति गहरी संवेदना का ज्ञापन रिपोर्ताज का प्रधान धर्म है। रिपोर्ताजकार गहरी अंतःदृष्टि, वर्णन कौशल और संवेदनशील स्वभाव के द्वारा पीड़ित जन–समूह के प्रति तीव्र संवेदना जगा देता है। इसका संबंध ताजी घटनाओं तथा अनुभूतियों से है, जिनके मार्मिक वर्णनों से जनमन में संवेदनाएँ जागृत की जा सकती हैं। रिपोर्ताज खासकर लेखक की संवेदनशीलता, गहरी अंतर्दृष्टि, वर्णन चातुरी तथा उपस्थापन की रीति या पद्धति पर निर्भर करता है। रिपोर्ताज–लेखक उस परिस्थिति या घटना में अपने को खो नहीं देता, वह दूसरों को कुछ देने में भी सक्षम नहीं हो पाता है। अतः रिपोर्ताज सत्य और तथ्य पर आधारित एक मार्मिक गद्य विधा है।

मानवीय मूल्य या मानवीय संवेदना रिपोर्ताज साहित्य का अभीष्ट है। रिपोर्ताज लेखकों ने मानवीय संवेदना को इस विधा की धुरी के रूप में चित्रित

किया है। जिन लेखकों ने मानवीय संवेदना को अभीष्ट मानकर रिपोर्ताजों की रचना की उनमें रांगेय राघव, मणिमधुकर, फणीश्वरनाथ 'रेणु', विवेकी राय, कुबेरनाथ राय, ललित शुक्ल, धर्मवीर भारती आदि प्रमुख हैं।

रांगेय राघव की प्रमुख कृति 'तूफानों के बीच' है जो सन् 1942 के बंगाल के अकाल का 'आँखों देखा' चित्रण है। यह रिपोर्ताज संग्रह मानवीय संवेदना का दस्तावेज है। रांगेय राघव मानवीय संस्पर्श' की बात स्वीका करते हुए ही इस अद्वितीय रचना को रच सके हैं। पुस्तक के 'प्रकाशकीय' में लिखा है–

''इतिहास के भयानकतम अकाल में जकड़े हुए बंगाल के लोगों को राहत पहुँचाने के उद्देश्य से संगठित जत्थे में साहित्यकार रांगेय राघव आगरा से बंगाल पहुँचे थे। वहाँ अकाल से जूझते लोगों के साथ सुबहें, शामें और रातें गुजारी थीं। उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओं को रांगेय राघव के साहित्यकार ने अपने मानवीय संस्पर्श से कुछ ऐसा तराशा कि सत्य को तथ्य के और तथ्य को सत्य के आमने–सामने ला खड़ा किया और दोनों के बीच संवाद का माध्यम रहा मानवीय–संवेग।''[38]

रांगेय राघव की मानवीय संवेदना अत्यंत उदात्त थी। यही कारण है कि वे शुष्क विवरण को सर्वश्रेष्ठ साहित्य की कोटि में ला सके हैं। रांगेय राघव के रिपोर्ताजों की अनिवार्य धुरी के रूप में मानवीय–मूल्यों को स्थान मिला है। लेखक के हृदय में उमड़ी–धुमड़ी मानवीयता ही अकाल पीड़ित बंगाली जनता के दुखों, मृत्यु के थपेड़ों, अमानवीय कृत्यों, अकाल के लिए जिम्मेदार व्यापारी, महाजन और सरकारी लोगों के काले कारनामों को उजागर कर सकी। रिपोर्ताज लेखक को मानवीय–मूल्यों का पुट अपनी रचना में अधिकाधिक देना चाहिए तभी पीड़ित व दमित मानवता के प्रति सच्ची आत्मीयता जागृत हो सकेगी।

रांगेय राघव ने जहाँ अकाल और महामारी से जूझती हुई जनता का चित्रण किया है, वहीं उनकी मजबूरी से फायदा उठाने वाले लोगों को भी कठघरे में खड़ा किया है। बंगाल के अकाल के समय, जब भारतीय अंग्रेज–शासक द्वितीय महायुद्ध में उलझे हुए थे और देश के साहुकार मनमाने दामों पर अन्न बेचकर मानवता के साथ खिलवाड़ कर रहे थे, ऐसी परिस्थितियों में कराहती, उनसे जूझती, भूख से

लड़ाई लड़ती बंगाल की जनता का मर्मस्पर्शी चित्रण कर मानवीय संवेदना को रांगेय राघव ने झकझोर दिया है। 'एक रात' रिपोर्ताज में वे लिखते हैं– ''मैं प्राणबाला को प्यार करता था और संसार ने गरीबी के कारण सदा यह समझा कि मेरा प्यार, प्यार नहीं, मेरा स्वार्थ था, एक नियम! सचमुच! किन्तु जिस दिन मैंने अपने हाथों से अपनी बहू और बच्चों का खून किया था उस दिन मैं रूपलाल नहीं था, उस दिन मेरा कोई नहीं था, मैं किसी का नहीं था, मैं रूपलाल की छाया भी न था। बाबू! उस दिन मैं भूखा था।

मैं पूछना चाहता हूँ कि खून करके क्या मैंने पाप किया है? तड़पते हुए पशु को गोली मारके उसकी यंत्रणा से उसे मुक्ति देना जिसके पास अपना दुख समझाने को शब्द नहीं उसे समाप्त कर देना क्या पाप है? हमारे लिए जीने और मरने में फर्क ही क्या था, बाबू...?

'प्राणबाला'? उसने बच्चों को भी न देकर खुद खा लिया था, वह उस दिन राक्षसी थी, मैं, महाराक्षस था उस दिन? बाबू, क्या दो दाने चावल में इतनी शक्ति है कि वह एक दिन में दुनिया पलट दे। मैंने बच्चों को नहीं बुड्ढों को भी अपना अंगूठा चबाते देखा है।''[39]

बंगाली जनता की इस दुर्दशा का जिम्मेदार कौन है? अपराधी कौन है– मुट्ठी भर भात के लिए अपनी ही पत्नी और बच्चों का कत्ल करने वाला रूपलाल या भूखे बच्चों को भात न देकर खुद खा जाने वाली प्राणबाला या कोई और जिनके अदृश्य हाथ मानव मात्र से वो सभी कुकृत्य करवाते हैं जो वह नहीं कर सकता। यह अपराध किसका है– रूपलाल का या प्रशासन का। भूख ने न सिर्फ हत्या करने, अपनों की हत्या करने का दुस्साहस दिया अपितु नैतिक और अनैतिकता के बीच के फर्क को भी मिटा दिया है। स्त्रियाँ, जो किसी के घर की सम्मान होती हैं, भूख से भरी सम्मानजनक जीवन को छोड़कर ऐसा जीवन चुनने के लिए बाध्य हो गयी कि समूची मानवता कलंकित हो उठी।

अकाल में चावल नहीं मिलता। गरीब और किसान के पास इतने पैसे नहीं थे कि वह 18 या 19 रुपए मन चावल खरीद सके और खरीदे भी तो कहाँ से। वहाँ से जहाँ मुनष्य को नंगा रखकर मनुष्य ने अपने मुनाफे के लिए सारी चीजें

ताले के अंदर बंदकर रख दिए हों चाहे वह बेशुमार कपड़ा हो या चावल। जहाँ वस्तु मनुष्य के लिए न होकर पैसे के लिए थी। बंगाल के लोग आज नंगे थे। कितना बड़ा व्यंग्य था कि कपड़ा बनाने वाले स्वयं नंगे थे। मृतकों को कफन भी नसीब न थे। 'अदम्य जीवन' रिपोर्ताज में राघव लिखते हैं कि– 'इतनी आमदनी नहीं, फिर बताओ' रहमत कहने लगा, 'कोई कैसे खरीदें? अकाल खत्म हुआ ही कब, जो दूसरा शुरू होगा? हमने कच्ची कब्रों में कई लाशों को बिना कफन में गाड़ दिया। आपको शायद मालूम न हो, हम मुसलमानों के यहाँ लाश को कफन में बांधकर गाड़ने का कायदा है। मगर कायदा क्या करे, जब जिन्दों के लिए भी कपड़ा नहीं है तो मरों की क्या कीमत है बाबू?''[40]

अकाल के कारण उपजी करुणा और महाजनों की मुनाफाखोरी के कारण उपजे आक्रोश ने रांगेय राघव के हृदय को मथकर रख दिया था। लेखक की करुणा आग के समान प्रतीत होने लगी थी साथ ही आँखों के आँसू भी पाठकों को द्रवित कर बंगाल की जनता के दुख में दुखी होने के लिए छोड़ दिए थे। रांगेय राघव के रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना के अनेक चित्र प्रस्तुत हैं। उन्होंने इस अकाल के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए जिनमें आशा–निराशा में झूलती, अदम्य उत्साह के साथ परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई जनता की भावनाओं का चित्रण है। उन्होंने वहाँ दुर्भिक्ष से आक्रांत मानवता की चीत्कार को सुना था, अपनी आँखों से उन आँखों को देखा था जो निरंतर निर्झर की भाँति बहने पर भी सूख गई थीं। अकाल के साथ पनपी हुई पशुता के उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन किए थे।

अकाल और महामारी में पिसती मानवता की करुण त्रासदी बंगाली जनता के आत्मविश्वास, जिजीविषा को संवेदना के स्तर पर रेखांकित करती है। बंगाली जनता इस दुर्भिक्ष से अपराजेय योद्धा की तरह लड़ी ही नहीं अपितु अविजित भी रही। यह अलग बात है कि मानव मात्र के स्वार्थ और असाम्य के कारण, गुलामी और साम्राज्यवादी शासन के कारण बंगाल जैसी शस्य–श्यामला भूमि में भी मनुष्य को भूख से दम तोड़ना पड़ा था। वहाँ के लोग पूरी शक्ति से इस प्राकृतिक आपदा को झेले क्योंकि कोई भी उन्हें मिटा नहीं सकता। महामरण का भीषण नृत्य भी

नहीं। 'तूफान के विजेता' रिपोर्ताज में डॉ. राघव ने बंगाली जनता की इसी जिजीविषा का अद्‌भुत वर्णन किया है :–

''मुझे क्षणभर मृत्यु का भय नहीं है। कौन बोल उठा, यह मृत्युंजय अभय रागिनी। युगांतर से बंगाल का दलित मानव पतित नहीं हुआ। अपराजित मानवता हुंकार उठी। चंडीदास की वह पुकार–सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाइ.... मांझी का धर्म है अपने उपर निर्भर रहने वालों को अपने से पहले बचाना। जब उसका जीवन खतरे में था किसी ने नहीं बचाया उसे, किन्तु आज वह जीवन की बाजी लगाए दाँव पर खेल रहा है। कौन है हम उसके? मा... पिता..... मेरे हैं– मांझी भी मेरा है। बंगाल की मानवता मेरी है।''[41]

अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाएँ अपने साथ ढेर सारी बीमारियां भी लाती हैं। अकाल की भयावहता जिन्हें मार नहीं पाती वे लोग मलेरिया और कालाजार जैसी बीमारियों से ग्रस्त होकर अकाल और उसके प्रभाव को और भी भयानक बना देते हैं लेखक बच्चों के अस्पताल में जाता है जहाँ सब दुधमुंहे दो–दो, तीन–तीन बरस के हड्डी के पुतले। ऐसा लगता है जैसे हड्डियों पर चमड़ी मढ़ दी गयी हो। ये बच्चे नर–पिशाच से प्रतीत होते हैं। खाने के लिए कुछ नहीं। चावल का दाम 22–23 रुपए मन है। कंपनी ने मजदूरी बढ़ाने के भारत रक्षा कानून के आदेश को ठुकरा दिया है। सरकार कुछ करना नहीं चाहती। बच्चे मलेरिया और कालाजार से मर रहे हैं। उनको बचाना बहुत मुश्किल हो गया है।

डॉ. रांगेय राघव बंगाल के अकाल को जीवंत कर सके तो यह उनकी मानवीय संवेदनाए एवं बंगाली जनता के प्रति प्रेम ही रहा होगा। डॉ. राघव अकाल के समय एक मैडिकल जत्थे के साथ बंगाली जनता की सेवा करने हेतु वहाँ गए थे। बंगाल के अकाल की भयावहता ने लोक की मानवीय संवेदना को इस तरह झकझोरा कि वह लेखक की ही नहीं मानवता की त्रासदी का महाकाव्य बन गया। रांगेय राघव के अकाल संबंधी संस्मरणों में केवल भूख से तड़फते बंगाल के व्यक्तियों का ही शब्द चित्र नहीं अपितु लाशों पर मंडराते गिद्धों, अन्न के लिए अस्मत बेचती नारियों, मुनाफाखोर धन्ना सेठों की लालचग्रस्त आँखों, अफसरों की लापरवाह मुख–मुद्राओं और सरकार के दंभों का भी जीता–जागता चित्रण किया

गया है और इन सारी घटनाओं को एक सूत्रता देने वाली दृष्टि है, लेखक की जनता के प्रति प्रीति। अकाल में रांगेय राघव का लेखक भूखे के साथ भूख की पीड़ा से तड़पता है, दो मुट्ठी अन्न पाकर वह उस भोजन के आनंद की कल्पना को अनुभव में बदलता है।

धर्मवीर भारती ने भी रिपोर्ताज में मानवीय संवेदना को विशिष्ट महत्त्व दिया है। 'मानुष सत्य' सर्वोपरि है। मानव का उद्देश्य मानव जाति से प्रेम होना चाहिए। मनुष्यता सीमा नहीं मानती। वह धर्म, भाषा, संस्कृति और भूगोल की सीमाओं का अतिक्रमण करना जानती है। यदि जीवन के अशुभ पक्ष सवत्र एक जैसे हैं तो शुभ पक्ष भी सर्वत्र एक जैसे ही हैं। बांग्लादेशी मुक्तिवाहिनी सेना हाथ में हथियार लेकर न्याय और शोषण मुक्त समाज के लिए पाकिस्तानी सेना से लड़ रही है और उनका साथ दे रही है भारतीय सेना। प्रेम की गहनतम अनुभूति सीमाओं का अतिक्रमण कर न्याय और सत्य के पक्ष में संवेदनशील लोगों को एक साथ खड़ा कर देता है। धर्मवीर भारती 'उघते कस्बे' रिपोर्ताज में लिखते हैं–

''पदमा के विशाल पाट पर तैरते बजरे पर जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'आमार सोनार बांगला आमी तोमाके भालोवाशी' लिखा होगा, तब क्या यह 'भालोवाशी' यही प्यार अपने एक दूसरे आयाम में मुखर नहीं हो रहा था? और एशिया के उस महानतम नेता शेख मुजीब ने जब इसी गीत को राष्ट्रगीत चुना तो क्या घृणा के खिलाफ प्यार, कुरूपता के खिलाफ सौंदर्य, शोषण के खिलाफ समता के उद्घोष केा वे मान्यता नहीं दे रहे थे? और आज जो मुक्तियोद्धा हाथ में राइफलें, स्टेनगन और मशीनगन लेकर याहियाशाही की पैशाचिक अमानवीयता के खिलाफ लड़ रहे हैं, वे क्या 'भालोवाशी' की लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं।''[42]

बांग्लादेश के मुक्तिसंग्राम में धर्मवीर भारती एक भारतीय पत्रकार की हैसियत से वहाँ गए थे। पाकिस्तानी सेना ने ढाका में खूब नरसंहार मचाया। कमजोर और निहत्थे बांग्लादेशियों का बड़ी बेरहमी से कत्ल किया गया। धर्मवीर भारती ने तथ्यों को अपनी रिपोर्टिंग के माध्यम से संसार के सम्मुख लाने का प्रयास किया। एक ओर आततायी पाकिस्तानी सेना जो निरीह बांग्लादेशियों का दमन कर रही थी तो दूसरी ओर बांग्लादेश का एक कैप्टन जो सिर्फ फैक्ट्स को संसार के सामने लाने

का आग्रह करता है। वह नहीं चाहता कि उसे कोई रियायत मिले, कोई अतिरिक्त ग्लोरिफिकेशन (प्रभामंडल) क्योंकि वह जानता है कि सत्य ही उसकी ताकत बनेगी। 'पुराने पुल' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती लिखते हैं– ''मैं बेहद भर आया हूँ, चुप हूँ। पता नहीं नाजियों के लिए भी अकल्पनीय ऐसी पैशाचिकता करने वाले हिंसकों के प्रति अदम्य घृणा से, पता नहीं इस ग्लानि से कि जब ये कीचड़–पानी में नितान्त साधनहीन, इंसानियत की यह लड़ाई लड़ रहे हैं तब हम अपने एयरकंडीशन कमरों में बैठे कुर्सी से चिपके इस क्रांति से अलग छिटके हैं। पता नहीं इस उबलते क्रोध से कि जिसे हम न्याय कहते हैं, अन्तरात्मा कहते हैं, मानव मूल्य कहते हैं, ईश्वर कहते हैं, वह कहाँ है? नहीं है, शायद नहीं।''[43]

बांग्लादेश के लोग सभ्य और विकसित कहे जाने वाले राष्ट्रों की अपेक्षा ज्यादा संवेदनशील हैं। लेखक भारती जहाँ–जहाँ भी युद्ध के मोर्चे पर रिपोर्टिंग के लिए जाते हैं वहीं उन्हें बेहद सम्मान और प्यार मिलता है। बांग्लादेशी लोग मित्र और शत्रु में फर्क करना जानते हैं। वहाँ के लोग शेख मुजीब को अपना नेता मानते हैं। सिर्फ नेता ही नहीं अपना भाग्यविधाता, पथप्रदर्शक भी। शेख मुजीब संसार के उन महान नेताओं में शामिल हैं जिनको अपने देश की जनता से बेशुमार प्रेम और सम्मान मिला। बांग्लादेशी क्रांति के अग्रदूत हैं शेख मुजीब। शेख मुजीब बांग्लादेश के महात्मा गाँधी हैं। क्रांति के दौरान पाकिस्तान ने शेख मुजीब को नजरबंद कर दिया था। उनके छूटने की चिंता प्रत्येक बांग्लादेशी के मानस में प्रश्न बनकर कौंध रही थी। रिपोर्टर भारती से हर कोई एक प्रश्न जरूर करता कि शेख मुजीब कब रिहा होंगे। शेख मुजीब के प्रति इतना प्यार देखकर भारती जी अंदर तक भावुक हो जाते हैं। 'वे ही बनते दीप' रिपोर्ताज में भारती जी लिखते हैं– ''साहब एक सवाल है'' मुजीब के चित्र की ओर इशारा करके पूछते हैं, ''ये हम लोगों को वापस मिलेंगे? आप को मालूम है मुजीब कहाँ हैं? हम इसका क्या जवाब दें? फिर भी कहते हैं, जरूर मिलेंगे! इनको तो वापस आना है।'' आएगा? ये आएगा साहब? हमारा परिवार गया, माँ–बाप गया, हमारा जमीन खेत गया और साहब हमारा जान भी खां को चाहेगा तो हम दे देगा, लेकिन मुजीब सलामत रहे, बस हम कुछ नहीं चाहते वो मिलेगा न साहब?''[44]

इतनी गहन मानवीय संवेदना और अपने राजनेता के प्रति अनन्य समर्पण अन्यत्र दुर्लभ एवं आधुनिक राजनीति के लिए प्रेरणादायी बिन्दु है। युद्ध अपने साथ सर्वनाश लाता है। युद्ध क्षेत्र की हवा भी बोझिल होती है लेकिन आदमी है कि मृत्यु के फ्रेम को तोड़–मरोड़कर जीवन को फिट करना जानता है। युद्ध क्षेत्र में भी जीवन अपने साधारण गति से चलता रहता है। युद्ध दो प्रकार की भावनाओं के वाहक होते हैं। एक, कोई राष्ट्र शक्ति के मद में पड़ोसी या अन्य राष्ट्र पर युद्ध थोप दे। दूसरा, स्वतंत्रता और शोषणवादी ताकतों का विरोध करने के लिए युद्ध किया जाए। बांग्लादेश का मुक्तिसंग्राम दूसरे कोटि का युद्ध था जो शक्ति के मद में चूर पाकिस्तान के विरुद्ध युद्ध का शंखनाद। घृणा भी स्वाति की बूँद की तरह होती है। जिस पात्र में पड़े वैसा रूप लेती है। चूंकि इन स्वातंत्र्य योद्धाओं का चरित्र और इनका लक्ष्य बर्बर पाक सैनिकों से अलग है, इसलिए अपनी सारी उत्तेजना के बावजूद ये मर्यादाएँ नहीं तोड़ते। कभी–कभी युद्ध के चरम तनाव भरे छड़ों में इन्होंने जिस चरित्र का परिचय दिया वह अद्‌भुत है। मुक्ति सैनिकों के इसी चारित्रिक सुदृढ़ता एवं मानवीय संवेदना को केन्द्र में रखकर धर्मवीर भारती लिखते हैं–

''लेकिन फिर क्या यह युद्ध घृणा का है, नकारात्मक है, केवल बदले का है? हाँ? हाँ वह भी है और 'प्यार' का, 'भालोबाशा' का भी है। क्या कैथोलिक चिंतकों ने यह नहीं कहा था कि ''घृणा प्यार का सबसे श्रेष्ठ अभ्यास (अप्रेंटिसशिप) है जो तहेदिल से घृणा कर सकता है वही तहेदिल से प्यार भी कर सकता है।'' बहादुर योद्धा मानस ही इसका सही एहसास कर सकता है। कायरों का प्रेम और अहिंसादर्शन छद्‌मदर्शन होता है। 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरम् ही किंचित' की घोषणा करने वाला युद्ध का सबसे बड़ा दार्शनिक, महाभारतकार, व्यास इसे खूब तरह समझता था और निखिल विश्व–साहित्य में मानव–मन का इतना गहरा अध्येता कोई और हुआ हो, मैं नहीं जानता। अगर वे काव्य न लिखकर दर्शन लिखते तो उनका पहला सूत्र होता, अथातो युद्ध जिज्ञासा।''[45]

बांग्लादेश की जमीन पर उगने वाला जूट का पौधा कम से कम 9 फीट का होता है। जूट की वजह से ही पाकिस्तान ने बांग्लादेश पर कब्जा रखने के लिए

जान लड़ा दी। इसी जूट पर बसी थी कराची, टिका था इस्लामाबाद और वो 22 उद्योगपति रईस परिवार के लोग। जूट पैदा करने वाली बांग्लादेश की जनता भूख से मरती थी और जब उसने भूख से मरना इंकार कर दिया तो पाकिस्तान ने गोली से मारना शुरू किया। ये वो बुनियादी बातें थी जो बांग्लादेश की क्रांति के मूल में थी इस क्रांति ने बांग्लादेश के छात्र, लेखक और बुद्धिजीवियों को बदलकर रख दिया था। क्रांति चाय के प्याले से नहीं आती और न ही आती है अर्थशास्त्र, संस्कृति, भाषा एवं राजनीति की बड़ी–बड़ी बातें करने से। क्रांति आती है, जनता की अपनी दैनिक जिंदगी के साथ एकात्म कायम कर जीवन के महानतम मूल्यों को सहजतम शब्दों में और प्रतीकों में पेश करने से। इसके लिए कुछ भी काम नहीं आता। न गोष्ठियाँ, न गोलियाँ, न धमकियाँ। क्रांति के लिए जो अनिवार्य चीज है वह है अपने देश, अपने लोग, अपने परिवेश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति में बहुत गहरी जड़ें, अपने इर्द–गिर्द व्याप्त संकट को आँखों में आँखें डालकर देखने का ईमानदार साहस। अपने व्यभिचारी कुंठाग्रस्त अहं की खोल में दुबके रहकर लोग शब्दों की कै करते रहते हैं और समझते हैं कि वे क्रांतिकारी साहित्य रच रहे हैं। बांग्लादेश की जनता एवं बुद्धिजीवी वर्ग अपने परिवेश, अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति पूरी तरह सचेत है। 'के बोले माँ' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती लिखते हैं– ''यार, हमारे यहाँ भी यही सब था। यह तो सन् 50–52 के बाद जब हमने पहचाना कि हमसे हमारा पूरा सांस्कृतिक व्यक्तित्व छीना जा रहा है, विदेशी भाषा लादने के नाम पर और फिर सर्वहारा बनने के बाद अपनी संस्कृति को हथियार बनाकर हमने लड़ाई शुरू की। तब सारे साहित्य का स्वर बदल गया बन्धुवर! अब याहिया हमें मार नहीं सकता। हमसे जूट छीन लो, धान छीन लो, राइफल छीन लो, हम अपनी संस्कृति लेकर फिर उठ खड़ होंगे और उसका कोई जवाब उनके पास नहीं, क्योंकि हर चंगेज, हर हिटलर, हर याहिया के पास सब होता है– दौलत, सेना, कूटनीति; उनके पास एक चीज नहीं होती : संस्कृति! और क्या समझते हो कि इसे वह जानता नहीं, इसीलिए उसने चुन–चुनकर हमारे लेखक, हमारे अध्यापक, हमारे छात्र का खून किया, क्योंकि वह जानता था कि क्रांति का उद्‌गम स्रोत कहाँ है? खोट्टा जानवर! बंगाली लड़कियों को पकड़कर छावनी में ले गया। बोलता है

एक–एक के साथ दस–दस फौजी बलात्कार करके नई पाकिस्तानी नस्ल बनाएगा। भारती! हम लोग उन्हें कभी माफ नहीं करेंगे! कभी नहीं।''[46]

युद्ध में सबसे अधिक दुष्प्रभावित बच्चे एवं स्त्रियाँ होती हैं। बच्चों को बेरहमीपूर्वक मार दिया जाता है और यदि बच जाते हैं तो गठरी–मुठरी पर शरणार्थी कैंपों में पड़े रहते हैं। युद्ध की विनाश लीला देखकर गुमसुम हो जाते हैं ये बच्चे। उनके सामने ही उनके पिता को मार दिया जाता है और माँ को पकड़कर ले जाया जाता है। कुछ बच्चे तो दहशत में गूंगे हो जाते हैं। युद्ध में मरने वाला सिपाही किसी स्त्री का भाई होता है या पति होता है या पुत्र। पाकिस्तानी सैनिकों ने बांग्लादेश में पैशाचिक कृत्यों को अंजाम दिया था। धर्मवीर भारती लिखते हैं– ''कैसे उन्होंने गोद से बच्चों को छीनकर फेंक दिया और असहाय चीखती माँ पर बलात्कार किया और चलते–चलते दोनों को संगीन भोंक दीं? कैसे उनके बंकरों में स्त्रियाँ मिलीं जिन्हें वे पकड़कर लाए थे? उन्हें हफ्तों निर्वस्त्र रखकर उन्हीं से सफाई और पकाने का काम भी लेते थे और उन्हीं से अपनी जघन्य लिप्सा भी तृप्त करते थे। ऐसी अनेक स्त्रियों को जब भारतीय सेना ने मुक्त कराया तो पाया कि न केवल उनके शरीर पर स्थान–स्थान पर संगीनें भोंकने या जलाने के दाग हैं वरन उनकी संज्ञा शक्ति भी जाती रही है। वे विक्षिप्त हो चुकी हैं। ये भयानक हादसे इतने अमानुषिक एवं भयानक थे कि लिखना तो दूर उन्हें याद करके मन काँप जाता है।''[47]

डॉ. धर्मवीर भारती के रिपोर्ताजों में दानवता के विरुद्ध मानवता के अदम्य संघर्ष और अंततोगत्वा उसकी विजय की गाथा है। समस्त घटनाओं का क्रमबद्ध रूप में उल्लेख किया हैं ओज और प्रवाह से पूरित डॉ. धर्मवीर भारती की विषयानुरूप भाषा और शैली ने रिपोर्ताज में एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। जब वे मुक्तिवाहिनी के सैनिकों का उत्साह व्यक्त करते हैं तो पाठक भी स्वयं को रणभूमि में ही खड़ा हुआ अनुभव करता है। जहाँ वह दानवता की शिकार होती हुई जनता का वर्णन करते हैं तो स्वयं पाठक उस अत्याचार की पीड़ा को अपने ऊपर अनुभव–सी करता है।

मणि मधुकर के रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना का चित्रण गहन रूप में मिलता है। मणि मधुकर ने अकाल को आधार बनाकर रिपोर्ताजों की रचना की है। 'सूखे सरोवर का भूगोल' रिपोर्ताज संग्रह में गाड़िया लोहारों से संबंधित रिपोर्ताज है– 'न देश न बाड़ी'। इस रिपोर्ताज में मधुकर ने गाड़िया लोहारों के घुमंतू जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। गाड़िया लोहारों के जीवन में कहीं कोई दुराव–छिपाव नहीं है। आज के रहन–सहन, पहनावे–ओढ़ावे से एकदम बेखबर हैं गाड़िया लोहार। खान–पान में मोटा बाजरा, दलिया आदि ही प्रचलित है। मांस और दारू से परहेज नहीं पर इसका इस्तेमाल अक्सर दशहरे के दिनों में होता है। ये घर बनाना पाप मानते हैं। इनका मानना है कि 'ऊंघी खाट घालज्यो अर फिरता ई मरज्यो' उलटी खाट रखना और भटकते हुए ही मरना। लेखक इनके जीवन के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहता है– ''तमाम दुनिया से करीब–करीब कटे हुए और अपने इतिहास की धुंधली गति में बेवजह भटकते हुए ये बेजमीन लोग। गाड़ियों पर कैवे उड़ रहे हैं, गिद्ध मंडरा रहे हैं, धुंआ उठ रहा है और बैल रम्भा रहे हैं। 'सिपाईजी' जिनके लिए सबसे बड़ा हाकिम है, राशनकार्ड जिन्होंने कभी छुआ नहीं और भरपेट भोजन जिनका एक सपना है– ऐसे ये उखड़े हुए, उजड़े हुए, जुझारू जन क्या कभी आबाद हो सकेंगे। कब वह दिन आएगा, जब ये किसी बस्ती के बाशिन्दों के संसार की गति में हिस्सा लेंगे। अभी तो बैलगाड़ी पर ही घरबार है और ताड़ी में ही सारा सुख–संसार है।''[48]

मणि मधुकर के अन्य रिपोर्ताज जैसे 'भूख का अंधेरा', 'शेष सन्नाटा, पानी सिर्फ आँखों में', 'होंठों में पिवणा' का जहर' आदि रिपोर्ताजों में उनके मानवीय संवेदना के दर्शन होते हैं।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना को ऐतिहासिक संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। लार्ड कर्जन और अंग्रेजों के बड़े–बड़े अधिकारियों एवं रानी विक्टोरिया के स्टैच्यू के माध्यम से 'प्रभाकर' जी ने मानवीय संवेदना को प्रखरता से व्यक्त किया हैं आदमी के चेहरे पर एक मुख है, मुख में वाणी है जो हृदय और मस्तिष्क के भावों को भाषा प्रदान करती है। किन्तु इसके अलावा भी मनुष्य के चेहरे की एक वाणी है जो बिना भाषा के बोलती है। 'प्रभाकर' जी स्टैच्यू

की भाषा समझ जाने वाले पारखी रचनाकार है। अपनी गहन मानवीय संवेदना को विषय से जोड़कर उसे अर्थगम्य बना देना 'प्रभाकर' जी के रचना कौशल का एक श्रेष्ठ नमूना है।

'पहाड़ी रिक्शा' नामक रिपोर्ताज में प्रभाकर जी ने रिक्शा चालकों की दयनीय दशा एवं उसमें बैठने वालों की मानसिक स्थिति का वर्ण चित्रण बड़ा ही मार्मिक ढंग से किया है। रिक्शाचालकों को देखकर उनके मन में एक हूँक सी उठती हैं और ह्रदय में करुणा और विद्रोह का भाव जगता है। वे लिखते हैं– ''रिक्शा को देखते ही आँखों की राह दिल में उतर जाते है ये रिक्शाकुली, जो पेट के लिए मनुष्य होकर भी बैलों या घोड़ों की तरह मनुष्य को ही ढोते हैं। पिछले वर्षों में जब–जब पहाड़ पर आया हूँ, रिक्शाएं देखी है और तभी तब सोचा है कितने दयनीय हैं ये जन, जो पेट के लिए रिक्शा खींचते हैं।''[49]

'मेरे मकान के आसपास', 'अपने भंगी भाइयों के साथ', 'महान सांस्कृतिक महोत्सव में', 'कुंभ महान', 'धर्म और ईश्वर ने क्या दिया' आदि रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना का चित्रण प्रभाकर जी ने मार्मिक रूप से किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु ऐसे रचनाकार हैं जिनकी रचनाएँ मानवीय संवेदना का ऐसा ताना–बाना बुनती है कि पाठक अपने आप को उन लोगों के बीच में पाता है। रेणु के रिपोर्ताज संग्रह 'ऋणजल धनजल' और रेणु रचनावली में संग्रहित रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना का चित्रण अत्यंत मार्मिक रूप से किया गया है। 'ऋणजल–धनजल' सूखा और बाढ़ को आधार बनाकर लिखे गए रिपोर्ताज हैं। रेणु की मानवीय संवेदना मानवेतर प्राणियों के साथ भी दिखती है। 'बाढ़' से बचने के लिए जब कुत्ता नाव पर चढ़ जाता है तो उसे उतारा जाने लगता है। कुत्ते के साथ उसका मालिक भी उतर जाता है। मलिक अपने कुत्ते को छोड़कर जाना नहीं चाहता। 'कुत्ते की आवाज' रिपोर्ताज में रेणु विचित्र मानवीय संवेदना का परिचय देते हुए लिखते हैं– ''गाँव के कई बीमारों को नाव पर चढ़ाकर कैंप में ले जाया जाता है। एक बीमार नौजवान के साथ उसका कुत्ता भी कुईं–कुईं करता हुआ नाव पर चढ़ आया। डॉक्टर साहब कुत्ते को देखकर 'भीषण भयभीत' हो गए और चिल्लाने लगे– ''आ रे! कुकुर नहीं, कुकुर नहीं.... कुकुर को भगाओ! बीमार नौजवान छप–से

पानी में उतर गया– ''हमार कुकुर नहीं जाएगा तो हम हूँ नहीं जाएगा।'' फिर कुत्ता भी छपाक पानी में गिरा– हमारा आदमी नहीं जाएगा तो हम हूँ नहीं जाएगा।''[50]

रेणु व्यंग्य के माध्यम से मानवीय संवेदना जागृत करते हैं। बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा दुख और विनाश का कारण बनती है। किन्तु शहरों में कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए बाढ़ एक आत्मप्रदर्शन एवं आनन्द का स्रोत है। ऐसे लोग अमानवीय होते हैं और मानव मूल्यों से इनका कोई सरोकार नहीं होता। रेणु बाढ़ के समय प्रकृति की सत्ता को ईश्वरीय सत्ता के रूप में देखते हैं। बाढ़ और उसके विनाश से उपजी डर की भावना समाप्त हो जाती है। वह जानवरों के बच्चों की तरह डूबकर मरने को भी तैयार हैं।

रेणु ने बाढ़ के अतिरिक्त अकाल पर भी उत्कृष्ट रिपोर्ताज लिखे हैं। अकाल में पूरी मानवता त्रस्त हो जाती है। लोग भूखों मरने लगते हैं। सरकार एवं अन्य लोगों की लापरवाही से अकाल और भी भयावह हो जाता है। रेणु की मानवीय संवेदना भूखों की भूख से एकात्म हो जाती है।

कुबेरनाथ राय, विवेकी राय, अमृतलाल नागर, भगवतशरण उपाध्याय आदि अनेक रिपोर्ताज लेखक हैं जिनके रिपोर्ताजों में मानवीय संवेदना का मार्मिक चित्रण मिलता है। इन लेखकों का उद्देश्य पाठकों के मन में संवेदना जागृत कर उन्हें मानवीय मूल्यों के प्रति जागरुक कर सकें।

4.5 जीवनानुभव

दिन–प्रतिदिन परिवर्तनशील समाज की सच्चाई को पकड़ने के लिए ललित साहित्य एवं अन्य साहित्यिक रूप विधान पर्याप्त नहीं हैं। किसी समस्या के कारण, प्रभाव और समाधान को शीघ्रातिशीघ्र पकड़ने में सिर्फ रिपोर्ताज साहित्य ही उपयुक्त विधा है क्योंकि रिपोर्ताज साहित्य न सिर्फ युग की सच्चाई से कदम मिलाकर चलता है अपितु जीवन और साहित्य की महत्त्वपूर्ण समस्याओं से जूझता भी हैं। 'मानव–मूल्य' इस विधा की अनिवार्य विशेषता है इसलिए यह विधा सामयिक होते हुए भी शाश्वत होती है। रिपोर्ताज में वर्णित समस्याएँ लेखक की जीवनानुभव होती हैं। यह अनुभव बंद कमरे में बैठे हुए का नहीं अपितु घटनास्थल पर सक्रिय उपस्थिति का है। समाजवादी आलोचक शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं–

''रिपोर्ताज में वर्ण्य–घटना अपने परिवेश की संपूर्ण चित्रात्मकता के साथ अंकित की जाती है और उसमें भाग लेने वाली शक्तियों के आंतरिक इरादों, उनके कार्यक्रमों, गतिविधि, रीति–नीति और उनके संघर्ष के परिणाम पर निर्भर भविष्य की दिशाओं का मूल्यांकन इस कलात्मक रीति से होता है कि संपूर्ण घटना एक यथार्थ अनुभव बन जाती है। रिपोर्ताज गद्यात्मक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्मय है।''[51]

उपरोक्त कथन में संपूर्ण घटना को एक यथार्थ अनुभव के रूप में बताया गया है। यही अनुभव रिपोर्ताज लेखक का जीवनानुभव बनकर प्रस्तुत हुआ है क्योंकि लेखक उस घटना का प्रत्यक्ष द्रष्टा, भोक्ता एवं स्रष्टा होता है। रिपोर्ताज में घटना अपने सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि पक्षों के साथ अति संवेदनशील ढंग से अभिव्यक्त होती है। रिपोर्ताज लेखक घटना का द्रष्टा या स्रोता मात्र नहीं होता अपितु वह भोक्ता भी हो सकता है। यही प्रत्यक्ष अनुभव उसकी रचना में समाहित होकर घटना को जीवंतता प्रदान करती है।

रिपोर्ताज का लेखक किसी घटना का सिंहावलोकन मात्र नहीं करता अपितु घटना का प्रत्यक्ष दृष्टा होने के नाते वास्तविक सत्य के उद्‌घाटन में सर्वथा समर्थ होता है। वह घटना विशेष से संबद्ध विभिन्न जटिलताओं को ही नहीं अपितु उस

घटनाचक्र को परिचालित करने वाली नानाविध शक्तियों और उनके भीतरी इरादों का पर्दाफाश करने का सफल एवं स्तुत्य प्रयत्न करता है।

रिपोर्ताज में वर्णित घटनाएँ या तो लेखक की अनुभूतिजन्य सत्य होती हैं, या तो लेखक उन घटनाओं का भोक्ता भी होता है। दोनों ही स्थितियों में घटनाएँ रिपोर्ताजकार के जीवनानुभव का अनिवार्य अंग होती हैं जिसे वह रिपोर्ताजों में वर्णित करता है, जहाँ ढेर सारे रिपोर्ताज अनुभूतिजन्य सत्य पर आधारित हैं वहीं धर्मवीर भारती, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ 'रेणु', विष्णुकांत शास्त्री जैसे रिपोर्ताजकार घटना का अंग बनकर भोक्ता की दृष्टि से अपने अनुभव को साहित्यिक कला में बाँधने की कोशिश की है। लेखक द्रष्टा हो या भोक्ता, उसकी रचनाएँ उसके जीवनानुभव को ही व्यक्त करती हैं।

जिन रिपोर्ताजकारों ने जीवनानुभव को अपनी रचना में इस भाँति पिरोया है कि वे पाठकों के भी जीवनानुभव बन जाते हैं उनमें कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवसागर मिश्र, धर्मवीर भारती आदि प्रमुख रिपोर्ताज लेखक हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'आधी रात से सुबह तक' में आपातकाल के पूर्व तथा उसकी घोषणा के पश्चात तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में हुए उथल–पुथल को बड़ी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। देश की जनता और विपक्षी नेताओं ने लोकतांत्रिक जीवन–मूल्यों की रक्षा के लिए सरकार के अत्याचारों एवं दमनपूर्ण नीतियों का सामना किया। इस संग्रह के संग्रहीत रिपोर्ताजों में एक ओर विपक्षी नेताओं की विवशता, क्षोभ, प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति चिंता दर्शायी गई है, वहीं दूसरी ओर इंदिरा समर्थकों के दरबारीपन, चापलूसी एवं अंधभक्ति का भी चित्रण किया गया है। ये सभी तथ्यात्मक विवरण लेखक की आँखों देखी है। पुस्तक की भूमिका में श्री लाल लिखते हैं– ''यह मैंने देखा है, यह मैंने नहीं लिखा, किन्हीं अज्ञात हाथों ने मुझसे लिखवाया है यह मैंने भोगा है। यह मैंने कल्पना से नहीं, केवल सच्चाइयों से लिखा है। केवल सच्चाईयों से सच्चाई को लिखना कितना विकट कार्य है, पहली बार अनुभूत हुआ।''[52]

'पार्वती के कंगन' रिपोर्ताज संग्रह में लेखक ललित शुक्ल जीवन की उन विरल–सघन छवियों के दर्शन करवाते हैं जहाँ अन्य विधाओं की पहुँच नहीं हो पाती। इनके इस संग्रह में जीवन्त दुनिया की रंगीन झाँकी है तथा देशकाल अपने पूर्ण रूप में विस्तार पाया है। इनमें वर्णित जीवनानुभव सिर्फ ललित शुक्ल का ही नहीं है, सच्चे मायने में हम सबका है जिसको लेखक ने देखा–परखा, जाना–पहचाना, जिया और भोगा है।

पश्चिमी दिल्ली में गंदे नाले के किनारे जे.जे. कालोनी बसी है। गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारी आदि का केन्द्र यह जे.जे. कालोनी। एक परिवार पच्चीस गज के मकान में सिमटा और यहाँ के निवासी निम्न स्तरीय जीवन जीने के लिए अभिसप्त हैं और सपना मध्यवर्ग का वह देखते हैं। सड़े–गले फलों एवं सब्जियों की खपत यहीं होती हैं। सारी बीमारियाँ भी यहीं हैं।

जे. जे. कॉलोनी एक नगर है। एक पूरी दुनिया है यह बस्ती। यह महानगर की नब्ज है। कितना ही कहा, पर यहाँ के लोग नहीं सुनते। अपनी मस्ती और मुफलिसी में जिंदा और बेचैन हैं। अपने एक और रिपोर्ताज 'यादों में जागता शहर' में रिपोर्ताजकार ने कानपुर शहर का बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है। कानपुर बड़े से बड़े लोगों का तो छोटे से छोटे लोगों का भी शहर है। लोग कहते हैं कि यह शहर बहुत गंदा है पर लेखक इस गंदगी में भी सफाई ढूंढ लेता है। सन् सत्तावन में इस शहर ने अपने पौरुष का परिचय दिया था तो अब चापलूसी और चाटुकारिता भी कम नहीं है। सेठ लोग अपने झकझक कुर्ते में चुन्नट डलवाए गावतकिए के सहारे टिके हैं तो झोपड़ी की धुआंई छाजन के नीचे अधलेटे भूखे बूढ़े की रात नहीं बीत रही है। यह नगर एक ओर कट्टों एवं बोरों का है तो दूसरी ओर विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', प्रताप नारायण मिश्र, गणेश शंकर विद्यार्थी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही', भगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव और शील जी का भी शहर है। इस शहर में भारत के कानून–कायदे चलते हैं तो इस शहर के भी अपने अलग कानून–कायदे हैं। दारोगा ने कहा– ''बंद करो बत्ती रात को बत्ती जलाना मना है।'' कोई तनाव नहीं, कर्फ्यू की रात नहीं, ब्लैक आउट नहीं, फिर यह घुड़की क्यों? मैंने कहा– मैं कुछ लिखने का काम कर रहा था और वहाँ

बत्ती जलने से किसी का नुकसान तो नहीं हो रहा है।'' ''जुबान लड़ाता है, कहता हूँ बत्ती बंद करो और सो जाओ।'' मैंने पुलिस से हील–हुज्जत ठीक नहीं समझी। ताजीरात हिन्द के अलावा उत्तर प्रदेश का एक अलग ताजीरात है। उसी के आधार पर गरीबों और अनपढ़ों को ढोरों की भाँति हाँका जाता है। डंडे की चोट, गालियों की बौछार और बंदूकों के छर्रों की भाषा में रहम के निशान नहीं होते। पुलिस यही भाषा जानती है। वह अधिकारियों, अमीरों और नेताओं की सुरक्षा का ध्यान रखती है। ईश्वर ही मालिक है बाकी लोगों का।''[53]

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के रिपोर्ताज उनके गंभीर चिंतन एवं गहरे अनुभव के प्रतिफलन हैं। वे घटना और जीवन को एक साथ जोड़कर अपनी रचना को चित्रित करते हैं। उनके रिपोर्ताजों में घटनाओं के चित्रण के साथ एक निर्णय की स्थिति में पहुँचने का सफल प्रयास समाहित रहता है। 'लोहे के स्टैच्यू बोल उठे', 'राबर्ट नर्सिंग होम में', 'राष्ट्रपति वी.वी. गिरि की सन्निधि में' आदि रिपोर्ताजों में उनके जीवनानुभव बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित हैं। मनुष्य के चेहरे में एक मुख होता है और मुख में वाणी। मनुष्य वाणी के माध्यम से अपने भाव प्रकट करता है। चेहरे से भी भाव प्रकट होते रहते हैं। रिपोर्ताजकार प्रभाकर जी का मानना है कि कुछ विशिष्ट भवन एवं मकान के पास अपने भाव और अपनी जुबान होती है। दिल्ली का लाल किला हो या संसद भवन, इनकी अपनी एक जुबान है, संवेदनाएँ हैं। वैसे ही आगरा का ताजमहल और कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल। ताजमहल की ही तरह सफेद संगमरमर से निर्मित। उपनिवेशकालीन भारत में अंग्रेजी शासन–व्यवस्था और अंग्रेजों के दर्प का प्रतीक–विक्टोरिया मेमोरियल। आजादी से पूर्व विक्टोरिया मेमोरियल का भवन एवं लार्ड कर्जन का स्टैच्यू अंग्रेजी शासन के आत्मगौरव एवं राष्ट्रीय गर्व के चित्र थे तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ये ही वस्तुएँ अपने आत्मगौरव और राष्ट्रीय गर्व के व्यंग्य चित्र में बदल जाते हैं। प्रभाकर जी भारतीय मानस के सौंदर्य और विशालता का प्रतीक ताजमहल और विक्टोरिया मेमोरियल के संबंध में लिखते हैं– ''ताजमहल बारह दिन में बना हो या बारह वर्ष में, क्षण–क्षण उसके निर्माता की भावना रही कि ऐसा बने यह ताज कि युगों–युगों तक मेरी प्रियतमा की आत्मा को शांति मिले। इसके विरुद्ध मेमोरियल बारह दिन में

बना हो या बारह वर्षों में, इसके निर्माता की क्षण–क्षण यह भावना रही कि ऐसा बने यह मेमोरियल कि दासता के दिनों भी भारतीयों के आत्मगौरव को दीप्ति देने वाले उस ताजमहल का पानी उतर जाए– कम से कम सौंदर्य और स्थापत्य के क्षेत्र में उसका एकत्व, उसकी मोनोपली तो टूट ही जाए।

पीढ़ियों का मतभेद आज आम होता जा रहा है। ऐसा नहीं है कि अतीत में यह समस्या नहीं थी। उस समय जीवन–मूल्यों से समाज बंधा था, बंधन कठोर थे, मर्यादाएँ प्रबल थीं किन्तु आज के समय में जैसे–जैसे हम सभ्य होते जा रहे हैं, सभ्यता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर उन जीवन–मूल्यों और मर्यादाओं को तोड़ते जा रहे हैं। फलस्वरूप पीढ़ीगत मतभेद जैसी सामाजिक समस्याएँ उभरती जा रही हैं। पुरानी पीढ़ी जहाँ नई पीढ़ी को उच्च–श्रृंखल समझती है वहीं नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को पिछड़ा मानने लगती है। स्वस्थ समाज का निर्माण स्वस्थ परंपराओं और नवीन सभ्यताओं के मेल से ही संभव है। कैसे भी हो, पुरानी एवं नई पीढ़ी में सामंजस्य बैठाना ही होगा अन्यथा यह पीढ़ीगत अंतराल सामाजिक संघर्ष में परिवर्तित होकर अमानवीय समाज और संघर्षपूर्ण जीवन मूल्यों का समाज बनता जाएगा। किन्तु इस संघर्षपूर्ण स्थिति को रोकने का एक उपाय है दोनों की मनोवृत्तियों का अध्ययन कर दोनों के बीच मर्यादा की रेखा खींचना। वृद्ध में अनुभव है, युवक में साहस। वृद्ध सोचता है कि इसे अभी क्या पता संसार का और युवा सोचता है कि मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। दोनों केवल अपनी मनमानी करना चाहते हैं। वृद्धत्व की सबसे बड़ी आकांक्षा है नत–सिर और विनत–स्कंध और वे केवल एक वाक्य सुनना चाहते हैं– जैसी आप की आज्ञा फिर वृद्धों के पास कोई भी जिद नहीं रहती। प्रभाकर जी लिखते हैं– ''मैंने सीखा कि वृद्धों का यदि हम मान रखें तो वे हमें कर्म की स्वतंत्रता दे देते हैं। वृद्धों के अहंकार पर कभी आक्रमण मत करो, यह समाज सुधार का पहला मंत्र मैंने याद कर लिया और फिर तो वृद्धों का मान मेरा स्वभाव हो गया। अब तो मुझे बड़ों के सामने उनका आदेश पाकर भी ऊपर बैठते संकोच होता है। मेरे लिए अब यह कोई टैक्ट नहीं, संस्कार हो गया है और मैं तो चाहता हूँ कि हरेक युवक में यह संस्कार हो।''[54]

जीवन में 'ऐक्जेक्ट' होना अति अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण है। 'ऐक्जेक्ट' होने का अर्थ है– बातचीत, अध्ययन, एवं जीवन के अन्य किसी भी क्षेत्र में अत्यंत गहराई और स्थिरता। थोड़ा सा भी इधर–उधर नहीं। घड़ी के मिनट और सेकेंड की सुई की तरह एकदम ऐक्जेक्ट। जीवन में जिन–जिन चीजों को अपनाने के बाद हम एकदम 'ऐक्जेक्ट' हो सकते हैं उनके संदर्भ में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं– ''तो जीवन का नाश करने वाले दोष प्रमाद से बचिए, हौलूपन और लूलूपन दोनों से दूर रहिए, व्यवस्था और नियमितता के नियमों का पालन कीजिए और संक्षेप में, ठीक तरह काम कीजिए, ठीक समय काम कीजिए, ठीक काम कीजिए; यानी ऐक्जेक्ट रहिए।''[55]

जीवन गतिशील होना चाहिए किन्तु हम अपनी कूप–मंडूकता, अपरिवर्तन और अपने वातावरण में इतने संलग्न हो जाते हैं कि जीवन को जीने की बजाए उसे बिताने में लगा देते हैं। यह हमारी अज्ञानता है। हम अपने जीवन में पाप और कल्मष से बचने के लिए सभी द्वारा बंद कर देते हैं पर इस कार्य के परिणामस्वरूप शुभ, सत्य और पुण्य भी हमारे बंद द्वार से वापस लौट जाते हैं। यह वातावरण एवं सोच का ताला होता है और हम इससे बाहर झाँकना नहीं चाहते क्योंकि ऐसा करने की न तो हमारी इच्छा है और न ही शक्ति। वस्तुतः इस वातावरणरूपी ताले के निर्माता हम स्वयं ही हैं। उदात्त जीवन जीने के लिए इस ताले से बाहर निकलना, स्वयं को स्वतंत्र करना अनिवार्य है नहीं तो हम जीवन का आनन्द नहीं ले सकते।

सीखना एक प्रक्रिया है जिसमें सीखने वाले और सिखाने वाले दोनों को एक–दूसरे से, एक–दूसरे की समस्याओं से परिचित होना अनिवार्य है। जब तक ऐसा नहीं हो पाता तब तक सीखने–सिखाने का काम सुचारू ढंग से नहीं हो सकता। शुरू–शुरू में हममें बड़ी उत्तेजना रहती है। जी चाहता है सारा काम खुद कर डालें पर नौसिखिया समझ कर हमें काम करने नहीं दिया जाता। कुछ ऐसे भी होते हैं तो प्रोत्साहित करते हैं, हमारा, आत्मविश्वास बढ़ाते हैं क्योंकि कार्य करने से गलतियाँ अवश्य होती हैं, पर गलतियों से ही तो मनुष्य सीखता है। 'ड्रेजिंग! आखिर यह है क्या बला' रिपोर्ताज में आशुतोष शर्मा लिखते हैं– ''मैं तो यही समझता हूँ कि ट्रेनिंग चाहे जहाज की हो या घर में खाना बनाने की, जब तक

सीखने और सिखाने वाले एक दूसरे की मुश्किलों को समझ न सकें तथा सिखाने वाला सीखने वाले में एक Sense of responsbility विकसित न कर सके, तब तक सीखना व सिखाना दोनों ही कठिन हैं।''[56]

धर्मवीर भारती उन रिपोर्ताज लेखकों में से हैं जिन्होंने युद्ध क्षेत्र में जाकर रिपोर्टिंग की। 1971 के बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में बांग्लादेश की ओर से भारतीय सेना पाकिस्तानी सेना से लोहा ली थी। इसी स्वतंत्रता संग्राम में धर्मवीर भारती युद्ध क्षेत्र के यथार्थ अनुभव को उन्होंने बड़ी ही सजीवता एवं मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। 'प्रभु इस रस को, नए रस को क्या कहते हैं' रिपोर्ताज में युद्ध क्षेत्र का वर्णन करते हुए धर्मवीर भारती लिखते हैं– ''बंकर पर से गुजरते गोले की सीटी, विस्फोट का धुँआ और गोला फटने की आवाजें हमें रोमांचित ही नहीं करतीं, हम पर जैसे एक युद्ध का नशा–सा छा जाता है। कैप्टन मुस्कराकर हमें देखते हैं फिर टेलीफोन पर आदेश देते हैं, इस बार लक्ष्य थोड़ा बाएँ खिसका देते हैं। फिर तोप का छूटना, उड़ते गोले की सीटी, विस्फोट का धुआँ और अंत में गोला फूटने की आवाज। इस बंकर में बैठना जिसके ऊपर से गोले गुजर रहे हों और हर क्षण की यह आशंका कि कब जवाबी गोले इस बंकर पर आ गिरें और हमारी हड्डी–पसली का पता न चले, आह! क्या जिया है हमने उन क्षणों में? की पूछेसि अनुभव मोय।''[57]

युद्ध क्षेत्र में अपनी जान बचाना कितना कठिन होता है, इस विषय में विश्वास के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हर क्षण मृत्यु का भय। कब कौन सा गोला आकर गिरे, कब किस गोली का शिकार हो जाएँ कहा नहीं जा सकता। सामान्य समय में जो दूरी, दूरी ही नहीं प्रतीत होती, असमान्य दिनों में उसी दूरी को तय करना मृत्यु और जीवन के फासले को तय करना होता है। 'ब्रह्मपुत्र की मोर्चेबंदी' रिपोर्ताज में पाकिस्तानी सेना के मारक सीमा में फंसे लेखक एवं अन्य लोग किस तरह अपने जीवन की रक्षा करते हैं, इसका रोमांचक वर्णन धर्मवीर भारती ने किया है। वे लिखते हैं–

''साँस चढ़ गयी थी, मुँह पर खून झलकने लगा था। आँखों में धुंधला दिख रहा था। कुछ तो खून का दबाव, कुछ पलकों में भरी रेत, थोड़ी देर में यह भी होश

नहीं रहा कि फायरिंग कब आई, किस ओर आई, बस अंधाधुंध गिरते–पड़ते, लेटते–उठते भागना और वह भी रेत में, ऊँचे–नीचे खेतों में– गाँव अभी कितनी दूर है? देखने में वह रहा, पहुँचने में हर खेत पार करने में चार–चार फायरिंग।''[58]

युद्ध अपने साथ विस्थापन की समस्या को जन्म देता है। जान बचाने के लिए जो अपने घर, जगह और जमीन को छोड़कर चले जाते हैं और पीछे छूट जाती है जमे–जमाए घर–आंगन की उष्ण–आत्मीयता और ऐसे लोगों का नाम अखबार में छपता है– शरणार्थी या विस्थापित। किन्तु यह शब्द उनके दर्द को नहीं बता पाता जो अचानक बूढ़े माँ–बाप, पत्नी और बच्चों के साथ कंधे पर दो गठरियाँ लादकर अपना घर छोड़कर चला जाता है। घर के सूने आंगन एवं गलियों को देखकर उनके दर्द का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। 'भरी दोपहर अंधियारा' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती एक उजड़े हुए गाँव का मार्मिक वर्णन करते हैं। वे लिखते हैं कि– ''बदकिस्मत हूँ मैं, जिसने अपनी आँखों से एक दूसरा उजाड़ नगर देखा, एक विचित्र प्रेतनगर–नितांत जनशून्य सूनी गलियाँ, उजड़े घर, बरबाद दुकानें– पूरा शहर साबितो–सालिम अच्छा–खासा लेकिन एक बाशिन्दा देहरी का दीप या मस्जिद पर चिराग जलाने के लिए बाकी नहीं। चूल्हों में अधजली लकड़ियाँ, अधखुले संदूकों से बाहर, बिखरे कपड़े, दुकानों में आधे भरे, आधे खाली डब्बे और बोरिया, दीवारों पर फड़फड़ाते कैलेंडर पूरे का पूरा शहर उजड़ेपन का एक खौफनाक मंजर और यह भी कि भगदड़ कोई हजार सौ साल पहले की नहीं, सिर्फ चंद हफ्ते पहले। अकस्मात एकाएक कुछ हुआ और लोग, जो जहाँ थे, भाग खड़े हुए।''[59]

धर्मवीर भारती स्वभावतः एक सैनिक पत्रकार हैं और साहित्यकार भी। उन्हें सैनिकों का जीवन बहुत ही आकृष्ट करता है। वे उनके जीवन पद्धति में एक अजीब कशिश पाते हैं। घर–परिवार से सैकड़ों मील दूर कीचड़, खाई, रेगिस्तान, तपती चट्टानों, बर्फानी ठंडक में पड़े हुए इन जवानों के बीच लेखक को शांति मिलती है। इसकी वजह सिर्फ यही कि इन्हीं जवानों में मानवीय शौर्य का चरम–उत्कर्ष भी है तो आदिम भय का गहरा अंधेरा भी है, जीवन जीने की अदम्य लालसा भी है तो एक ललकार पर हँसते–हँसते जीवन की आहुति भी यहीं है।

लेखक उन साहित्यिकों पर व्यंग्य करता है जो 'भोगे हुए यथार्थ' का नारा बुलन्द तो करते हैं पर यह नारा टी–हाउस में सिर्फ गूंजता है। 'पश्चिमी सरहदों पर उनकी जिंदगी' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती लिखते हैं कि ''भाषण वगैरह के बाद उनसे बात हुई, तो मालूम हुआ उन जाबांज सैनिकों में एक कवि भी हैं– चैन सिंह। लड़ाई के तुरंत बाद उसने अपनी बोली में कविता जोड़ी थी, उस भयानक मौत भरे अनुभव के बाद जिसकी कलम जाग उठे, उससे हाथ मिलाकर मुझे जो सुख मिला, वह क्या शब्दों में बँध सकता है। कितने टूटू–फूटे शब्द हों, कितनी कच्ची शैली हो, लेकिन 'भोगे हुए यथार्थ' का दावा करने वाले टी–हाउसी साहित्यिक काश एक दिन इस यथार्थ में जी पाते? और अजब था कि चैन सिंह इससे अवगत ही नहीं था, मुझे एक बहुत बड़ा आदमी समझकर जिस तरह साधारण सिपाही की तरह अटेंशन में खड़ा था, उस पर हूँस या रोऊँ– समझ नहीं पाया।''[60]

फणीश्वरनाथ 'रेणु' रिपोर्ताज लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। रेणु ने बाढ़, सूखा, क्रांति व अन्य विषयों को अपने रिपोर्ताजों का विषय बनाया। रेणु ने अपने जीवनानुभव को अपने रिपोर्ताजों में पिरोया है। वर्णन शैली भिन्न है। 'विदापत नाच' रिपोर्ताज सामाजिक व्यवस्था में अति निम्न स्तर पर जीवन जीने वाली जातियों जैसे–मुसहर, धांगड़ एवं दुसाध के यहाँ विवाह, मुंडन तथा अन्य संस्कारों के अवसर पर धूम मचाने वाली एक नाच है। इस नाच को सभ्य समाज देखना अपनी तौहीन समझता है। ये गरीब और मेहनतकश जातियाँ दिन भर की थकान मिआने के लिए मनोरंजन हेतु इस नाच का आयोजन करती हैं। इस नाच के संवाद एवं विषय कुछ भी हो सकते हैं– धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, भक्तिपरक कुछ भी। रेणु लिखते हैं– ''दुखी–दीन अभावग्रस्तों ने घड़ी भर हँस–गाकर जी बहला लिया, अपनी जिंदगी पर दो–चार व्यंग्य बाण चला दिए, जी हल्का हो गया। अर्धमृत वासनाएँ थोड़ी देर के लिए जगीं, अतृप्त जिन्दगी के कुछ क्षण सुख से बीते। मेहनत की कमाई मुट्ठी भर अन्न के साथ–साथ आज इन्हें थोड़ा सा 'मोहक प्यार' भी मिलेगा। इसमें संदेह नहीं।..... आप खोज रहे हैं– आर्ट, टेक्नीक और न जाने क्या–क्या और मैं आपसे चलते–चलाते फिर भी अर्ज करता हूँ कि यह महज विदापत नाच था।''[61]

'सूखा' पर रेणु ने 'भूमि दर्शन की भूमिका' रिपोर्ताज लिखी। ये रिपोर्ताज जीवंत दस्तावेज हैं– प्राकृतिक आपदाओं को मानवजनित समस्या में बदलने वाली व्यवस्था का प्राकृतिक आपदाएँ मनुष्यों को तोड़ती ही नहीं हैं, व्यवस्था के सत्य को उजागर भी करती हैं। 'इंसपेक्शन बंगलों नंबर वन' में एक ओर रात गुजारने वाले मेहमानों की आवगत जहाँ 'फस्ट क्लास' की जाती है तो दूसरी ओर भूख की पीड़ा से बिलबिलाते और मरते लोग। रेणु ने बंगलों में नाश्ता करते समय भूख से बेहाल लोगों की याद करके जीवन की त्रासदी को और भी गंभीर बना दिया है। 'भूमिदर्शन की भूमिका (5)' में रेणु लिखते हैं– ''रात्रि भोज के समय मुँह में पहला कौर डालते समय–विनोदवा और जसोदा की याद आई। नर्म–नर्म फुलके की तारीफ नहीं कर सका। मुझे लगा अज्ञेय की आँखों के सामने भी उन्हीं की मूर्तियां प्रकट हुईं। 'वेजिटेबल–स्टिउ' के बारे में कुछ कहना चाहते थे। नहीं कह सके।.... हम कुछ क्षण तक हाथ में रोटी के टुकड़े लेकर बैठे रहे।

....मंडुआ की आधी रोटी और खेसारी का घाठा खाकर बच्चे चिरकुट–कथरी के नीचे घुटने से ठुड्डी लगाकर सो गए होंगे। खैर साहब ने कहा है, शीघ्रतिशीघ्र उन इलाकों में रेड कार्ड बंट जाएँगे।.... विदेशों से मिल्क पाउडर, विटामिन की गोलियाँ और जैम–जेली के हजारों–हजार डिब्बे आ रहे हैं।..... कोई भूख से नहीं मरेगा।''[62]

रेणु ने नेपाल के मुक्ति संग्राम में सिपाही की भाँति हिस्सा लिया था। क्रांतिकारियों और राणाशाही के सैनिकों के बीच हुए युद्ध को रेणु ने अपने वर्णन कौशल से जीवंत कर दिया। युद्ध का जीवंत अनुभव रेणु के जीवन–अनुभव का एक विशेष हिस्सा जिसे उन्होंने 'भोगा हुआ यथार्थ' के रूप में जिया हैं नेपाल रेणु के लिए सानोआमा यानि मौसी के समान था। युद्ध का वर्णन करते हुए रेणु लिखते हैं– ''डेढ़ इंच की गोली–थ्री–नाट–थ्री सनसनाती हुई गिरिजा की कनपटी के पास से गुजर गई थी। मौसेरा भाई चिल्लाया– गिरिजा सिर धरती पर'.... किन्तु दूसरी गोली वीकू की जांघ को चीरती हुई धरती में धंस गई। सामने की पंक्ति में लेटकर राइफल चलाने वाले बहादुर साथी बलबहादुर की निष्प्राण देह लुढ़ककर गिरिजा को ढँक लेती है।''[63]

रेणु एक सजग रचनाकार थे। वे एक ओर तो नेपाली मुक्ति संग्राम में सिपाही की हैसियत से लड़ रहे थे तो दूसरी ओर इस क्रांति के भविष्य के प्रति सहज भी थे, क्रांति की नियति को समझने वाले रचनाकार थे। क्रांति समाप्ति के पश्चात् भारतीय राजनयिकों का नेपाली जनता के प्रति घटिया व्यवहार देखकर रेणु विचलित हो उठते हैं। वे इस बात को समझते हैं कि ये 'किंगमेकर' राजनयिक सारे श्रेय को हथियाना चाहते हैं जबकि सत्य यह है कि 'किंगमेकर' तो नेपाल के सिपाही और वहाँ की जनता थी। रेणु भारत–नेपाल के रिश्ते की नाजुकता को देखते हुए प्रधानमंत्री को पत्र लिखना चाहते हैं। रेणु व्यथित हैं कि कहीं भारत–नेपाल का रिश्ता ही खराब न हो जाए। वे प्रधानमंत्री को लिखना चाहते हैं कि– ''अपने को 'किंग मेकर' और 'किंग्स केयरटेकर' मानने वाले इस महानुभाव के तेवर कुटिल और बोली कर्कश सुनाई पड़ने लगी है। भारतीय राजदूत के रूप में नेपाल की सीमा से सटे हुए इलाके के इस 'सर' की सारी बिरादरी और भाई–भतीजे नेपाली जनता के भाग्यविधाता बन बैठे हैं। यह फटी हुई आवाज बहुत शीघ्र ही नेपाल में भारत–विरोधी स्वर को तीव्र कर देगी। महाराजाधिराज को सकुशल देश से बाहर भगा ले जाने और वापस लाने के बाद हमारे राजदूत महोदय अपने को ही 'महाराजाधिराज' मान बैठे हैं। वह नेपाल की जनता और नेपाल की नेताओं का पग–पग पर अपमान करने को प्रस्तुत है। उनको गलतफहमी हो गयी है कि नेपाल बिहार का एक जिला मात्र है.... क्या आप भी यही समझते हैं? महोदय, किसी नौकरशाह अथवा 'सर' या 'रायबहादुर' को नहीं– किसी विशाल हृदय उदार व्यक्तित्व को नेपाल के राजदूत पद पर..... लेकिन मैं किसी को पत्र नहीं लिखूँगा। सिर्फ नेपाल को संबोधित कर नमस्कार कर लूँ– ''नेपाल मेरी सानोआमा..... नेपाल मेरी मौसी अम्मा, मेरा नमस्कार ग्रहण करो।''[64]

इसके अलावा शिवसागर मिश्र, विष्णुकांत शास्त्री, विवेकी राय आदि रिपोर्ताज लेखकों ने अपने रिपोर्ताजों में अपने जीवनानुभव को व्यक्त किया है क्योंकि जीवन–जगत से अलग होकर रिपोर्ताज की रचना नहीं की जा सकती।

संदर्भ सूची

[1] साहित्यानुशीन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 52–53
[2] हिन्दी रिपोर्ताज : वीरपाल वर्मा, भूमिका
[3] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ.5
[4] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली–3, संपादक– डॉ. ओम प्रकाश सिंह, पृ. 133–34
[5] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 185
[6] धर्मवीर भारती ग्रंथावली, भाग–7 : संपादक चंद्रकांत बादिवडेकर, पृ. 126–27
[7] वही, पृ. 145
[8] वही, पृ. 173
[9] जहाज और तूफान : सं.– रामविलास शर्मा, पृ. 69
[10] आम रास्ता नहीं है : विवेकी राय, पृ. 162
[11] वही, पृ. 169
[12] गदर के फूल : अमृतलाल नागर, पृ. 16
[13] वही, पृ. 39
[14] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 56
[15] वही, पृ. 57
[16] क्षण बोले कण कुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 24
[17] लाल धरती : अमृतराय, पृ. 36
[18] वही, पृ. 74
[19] क्षण बोले कण मुसकाएः कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 30
[20] रेणु रचनावली, भाग 4ः सं.– भारत यायावर, पृ. 39
[21] वही, पृ. 191
[22] धर्मवीर भारती ग्रंथावली, खंड–7ः सं.– चंद्रकांत बादिवडेकर, पृ. 189
[23] गदर के फूलः अमृतलाल नागर, पृ. 30
[24] हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल (नव्यतर गद्य विधाएँ)ः प्रो. हरिमोहन, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृ. 159
[25] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 52–53
[26] खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 10
[27] वही, पृ. 144
[28] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन : अली मुहम्मद, फस्ट एडिशन, पृ. 128
[29] ठूंठा आमः भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 42–43
[30] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 80
[31] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 13
[32] बाजे पायलिया के घुंघरू : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 97
[33] वही, पृ. 178
[34] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, पृ. 37
[35] जुलूस रुका हैः विवेकी राय, पृ. 11
[36] धर्मवीर भारती ग्रंथावली : सं.– चंद्रकांत बादिवडेकर, पृ. 141
[37] श्रुत–अश्रुत पूर्व : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 32
[38] तूफानों के बीच : रांगेय राघव, शब्दकार, प्रकाशकीय, पृ. 8
[39] रांगेय राघव ग्रंथावली, भाग–8 : सं.– डॉ. सुलोचना रांगेय, राघव, पृ. 199
[40] वही, पृ. 211
[41] रांगेय राघव ग्रंथावली : सं.– डॉ. सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 220
[42] धर्मवीर भरती ग्रंथावली : सं.– चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ. 125
[43] वही, पृ. 138

[44] वही, पृ. 147
[45] वही, पृ. 155
[46] वही, पृ. 170
[47] वही, पृ. 263
[48] सूखे सरोवर का भूगोल : मणि मधुकर, पृ. 34
[49] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 103
[50] ऋणजल–धनजल : फणीश्वरनाथ 'रेणु' पृ. 30
[51] हंस, संपादकीय, जून 1944
[52] आधी रात से सुबह तक : शीर्षक–'स्वीकार– : लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 7
[53] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, पृ. 7
[54] बाजे पायलिया के घुंघरू : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', पृ. 75
[55] वही, पृ. 107
[56] जहाज और तूफान : सं.– रामविलास शर्मा, पृ. 37
[57] धर्मवीर भारती ग्रंथावली रु सं.– चंद्रकांत बादिवडेकर, पृ. 166
[58] वही, पृ. 233
[59] वही, पृ. 288
[60] वही, पृ. 295
[61] रेणु रचनावली, 4ः सं.– भारत यायावर, पृ .27
[62] ऋणजल–धनजल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 115
[63] रेणु रचनावली : सं.– भारत यायावर, पृ. 194
[64] वही, पृ. 250

अध्याय – पाँच

रिपोर्ताज विधा का शिल्पगत वैशिष्ट्य

5.1 कथ्य की नवीनता

5.2 शब्द योजना

5.3 बिम्ब और प्रतीक विधान

5.4 भाषा

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अनेक दृष्टियों से सजग एवं क्रांतिकारी काल है। इस युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नित नए अन्वेषण किए गए। ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली उपलब्धियों, देश एवं वैश्विक स्तर पर घटने वाली प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं ने मानव जाति में नया संस्कार भरने की भूमिका अदा की। मानव–मानसिकता को परिवर्तित करने का कार्य किया। साहित्य भी इन नवीन अन्वेषणों, प्रभावशाली घटनाओं एवं परिवर्तित मानसिकता से अछूता नहीं रहा। साहित्य में ये घटनाएँ और भी गहराई से घटीं। जिन्दगी और भावबोध जटिल होते चले गए। परिणामतः रचना की अभिव्यक्ति भी जटिलतर होती चली गई। रचनाकार को अभिव्यक्ति के प्रचलित तौर–तरीके घिसे और अक्षम नजर आने लगे। रचनाकार की मूल समस्या अपने–आप को सही ढंग से संप्रेषित करने की रही हैं। संप्रेषण की समस्या के अनुपात में ही अभिव्यक्ति के माध्यमों की खोज बढ़ती गई। गद्य हो या पद्य, अभिव्यक्ति के नए आयामों का उद्‌घाटन हुआ। रिपोर्ताज विधा के संबंध में यह और भी अनिवार्य हो गया। ललित साहित्य सामाजिक, वैश्विक, राजनीतिक आदि अनेक प्रभावों को पकड़ने में समर्थ तो है लेकिन इन प्रभावों से उपजी समस्याओं का समाधान तत्काल प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं है। आधुनिक जीवन की वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए रचनाकारों को नए साहित्यिक रूप–विधानों का अन्वेषण करना पड़ा है। कहना न होगा कि रिपोर्ताज उनमें सबसे प्रभावशाली रूपविधान है। डॉ. वीरपाल वर्मा के अनुसार– ''किसी भी साहित्यिक विधा को सौंदर्य प्रदान करने में उसके शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कोई शिल्पी जिस प्रकार ठोक–पीटकर किसी अनगढ़ वस्तु से एक सुघड़ सुंदर वस्तु का निर्माण करता है, उसी भाँति लेखक और कवि विशेष तल्लीनता के साथ अपनी विषय वस्तु को विशेष सौंदर्य से अभिमंडित कर देते हैं। रिपोर्ताज लेखक भी एक शुष्क–अनगढ़ रिपोर्ट में अपनी सहज संवेदना, कलात्मक अनुभूति एवं समर्पित तल्लीनता से नव्य सौंदर्य का निर्माण करता है। यह सौंदर्य उतना ही अधिक होगा जितनी की लेखक में सहनशीलता, कलात्मक अनुभूति और तल्लीनता अधिक होगी।''[1]

5.1 कथ्य की नवीनता

रचना में कथ्य क्या है? साहित्य संसार में कथ्य के लिए कई शब्द प्रचलित हैं, मसलन मन्तव्य, वस्तु, भाव, विषय आदि। बिना कथ्य के कोई भी रचना संभव नहीं है। रिपोर्ताज विधा में घटना का 'आँखों देखा' हाल प्रस्तुत किया जाता है। यहां वर्ण्य विषय अन्य विधाओं की अपेक्षा गहरी संवेदनात्मक अनुभूति एवं उत्कृष्ट रूप विधान की माँग करती है। रिपोर्ताज में लेखक को कथ्य का चित्रण करते समय उसके सहज मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं वर्ण्य घटना का प्रत्यक्ष ज्ञान अवश्य होना चाहिए। काल्पनिकता रिपोर्ताज के रूप विधान को नष्ट करती है। रिपोर्ताज 'आँखों देखी' प्रस्तुति है इसलिए 'कथ्य की नवीनता' अनिवार्य है। यदि रिपोर्ताज में कथ्य की नवीनता और प्रामाणिकता का अभाव होगा तो रिपोर्ताजकार की रचना रिपोर्ट मात्र बनकर रह जाएगी।

आधुनिक युग के सभी रिपोर्ताजकारों ने अपनी रचनाओं में कथ्य को प्रमुखता दी है। उनकी रचना अपनी प्रभावशीलता में उत्कृष्ट साहित्य का उदाहरण बन गई है। रिपोर्ताजकार अपनी लेखनी में नाटकीयता का समावेश करता है। घटना और परिवेश को सजीव बनाने के लिए वह 'स्टोरी' को इस प्रकार रचता है कि कथा पाठक के सम्मुख अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत हो सके। प्रत्यक्षीकरण का बोध यथार्थ का आभास देने वाली गतिविधि का चित्रण करके जगाया जाता है जिससे वातावरण सजीव हो उठता है। कथ्य में रोचकता एवं सरसता आ जाती है। रिपोर्ताज में किसी स्थान या घटना का यथार्थ, सजीव, मर्मस्पर्शी और संवेदना को जगाने वाला वर्णन किया जाता है। उसमें घटना, दृश्य या वातावरण प्रधान होता है, चरित्र अथवा व्यक्ति नहीं।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, मणि मधुकर, भगवतशरण उपाध्याय, कुबेरनाथ राय, निर्मल वर्मा, विवेकी राय आदि रिपोर्ताजकारों ने अपने रिपोर्ताजों को नए कलेवर में प्रस्तुत किया है।

रिपोर्ताज विधा के आदि लेखक कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि विविध विषयों पर रिपोर्ताज लिखे हैं। उनमें

एक तरफ सामाजिक चेतना है तो दूसरी तरफ सांस्कृतिक जागरुकता भी। एक ओर इतिहास के प्रति लगाव है तो वहीं दूसरी ओर उज्ज्वल भविष्य के प्रति आशा भी। जिस विषय को भी चुना है, उसमें कथ्य का नवीन प्रयोग है। विषय विविधता, नवीनता का पर्याय है इनके यहाँ। किसी बात को कहने का ढंग परंपरा से अलग है। 'मेरे मकान के आस–पास' रिपोर्ताज में लोक संस्कृति के जिस उज्ज्वल पक्ष का स्पर्श पाकर लेखक गद्‌गद् हो उठता है वह नगरीय संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से आज कम होता जा रहा है। संपन्न वर्ग पश्चिम का अनुयायी होता जा रहा है। ऐसे में वह अपनी लोक संस्कृति से उदासीन होता जा रहा है। निम्नवर्ग आज भी अपनी मजबूरी और दीनता के बीच अपने सांस्कृतिक पक्ष को बचाए हुए है। इस रिपोर्ताज में प्रभाकर जी लिखते हैं– ''मैं अपने पलंग पर पड़ा सोच रहा हूँ। सावन की यह मस्ती क्या इसी दीन परिवार पर बरसी है? यह सबमें गरीब है, हीन है, अभावग्रस्त है, दुखिया है, फिर भी सावन की इस फुहार–भरी बदरिया के तले, यही क्यों गीतमय है? जिनके घर में धन भरा है, कोई अभाव नहीं, जो शिक्षित हैं, 'कल्चर्ड' हैं, जिन्हें संगीत का ज्ञान है, 'टेस्ट' है, जिनके यहाँ रेडियो है, ग्रामोफोन है, सिनेमा जिनके जीवन की एक जरूरत है, उनके महलों के दीप्तिमान बल्ब बुझे पड़े हैं और इस गरीब की झोपड़ी का यह टिमटिमाता दीपक अभी तक प्रकाश–दान करता जा रहा है। क्या सावन इसी झोपड़ी का अतिथि है? उन ऊँची अट्टालिकाओं से वह रूठ गया है?[2]

रिपोर्ताज क्रांतिकारी विधा है। रिपोर्ताज लेखन के लिए केवल तीक्ष्ण निरीक्षण शक्ति की ही नहीं, जो कुछ हम देखते–सुनते एवं अनुभव करते हैं उसे स्मृति के सहारे क्षणभर सहेजने की अवधारणा, अवधान बुद्धि पुनः कागज पर उतारने, उकेरने, शब्दों में व्यक्त करके पुनः निर्मित करने की असाधारण प्रतिभा भी आवश्यक है। विषयानुकूल भाषा–शैली और शब्द–चयन का उत्तम अधिकार जब एक साथ शामिल होते हैं तो कथन में नवीनता का पुट भरता है। 1950 'कुंभ महान' के पृष्ठभूमि में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने राष्ट्रीयता, समानता एवं बंधुत्व को नए आयाम से परिभाषित करने का प्रयास किया है। धर्म प्रधान इस देश में एक ओर जगदगुरू शंकराचार्य हैं जिन्होंने धर्म के आधार पर मनुष्यता में भेद बनाकर परंपरा के

पुनर्जीवन को जीवित रखा है तो दूसरी ओर हमारी शासन व्यवस्था है जो अब 'महाराजाधिराज', बादशाहे–आलम' या 'गवर्नर जनरल' के लिए न होकर सामान्य नागरिकों के लिए है। इस रिपोर्ताज में प्रभाकर जी ने अलग नजरिए से धार्मिक उत्सव को देखा है एवं व्यक्त किया है। वे लिखते हैं– ''लम्बी शताब्दियों तक जिस शासन की चारदीवारी में यह राष्ट्र रहा वह राजाधिराज का था, बादशाहे–आलम का था या गवर्नर जनरल का। इस बात में समान था कि उसकी दृष्टि में जनता का कोई सम्मान न था– वह उनके उपयोग की वस्तु थी या उपभोग की। इस कुंभ में हमारे इतिहास ने पहली बार देखा कि शासन हर दिशा में जनता की सेवा के लिए, उसके सम्मान की रक्षा के लिए सतर्क है। जनता ही राष्ट्र की मूल शक्ति है, वन्दनीय है, स्वामिनी है और शासन का कार्य उसकी वन्दना है, यह कुंभ में पहली बार, पर प्रत्यक्ष रूप में, हमने देखा और मैं इसे 1950 के कुंभ का महान उपहार मानता हूँ।''[3]

रिपोर्ताज विधा का प्रारंभिक विकास स्वतंत्रता पूर्व हो चुका था। रिपोर्ताजकारों ने भारतीय स्वतंत्रता को अपनी लेखनी का प्रिय विषय बनाया। अन्य साहित्य विधाओं की भाँति रिपोर्ताजकारों ने समय की नब्ज को पहचाना। रिपोर्ताजों में स्वतंत्रता आंदोलन, आजादी के समय देश में हुए सांप्रदायिक दंगों को हिन्दू एवं मुसलमान आपस में खूब लड़े–कटे। अंग्रेजों की 'फूट डालो एवं राज करो' नीति सफल रही। इन सांप्रदायिक दंगों में, हिन्दू सोचता है, मैं मुसलमान को मार रहा हूँ और मुसलमान सोचता है मैं हिन्दू को मार रहा हूँ पर असल में दोनों की लाठी पड़ती रहती है भारतमाता के भाल पर। सिर फूटता है भारतमाता का। कत्ल होती है भारतमाता और दोनों संप्रदायों में एक खाई बन जाती है, कभी न पटने वाली खाई। 'आपबीती या जगबीती' रिपोर्ताज में प्रभाकर लिखते हैं– ''ऐं? यह क्या? मेरी कलम की दोनों जिह्वाओं के बीच एक खाली जगह हो गई है, जिसने उन्हें अलग–अलग कर दिया है। एक दिन मैंने यह देखा तो भौंचक रह गया। दोनों जिह्वाएँ ही अलग न हुई थीं, उनके शब्द और स्वर भी बदल गए थे और सच कहूँ आपसे, कलम ही बदल गई थी और इससे भी बड़ा सच यह कि मेरे फेफड़े अलग–अलग हो गए थे, मेरा हृदय बँट गया था और यह सब जादूगर की उसी

डुगडुगी का नतीजा था! यों ही कई साल बीत गए। ज्वालामुखियाँ फटती रहीं, धड़ाके होते रहे, कलम की जिह्वाओं के बीच की खाई चौड़ी होती रही।''[4]

रिपोर्ताजकारों ने अपनी संप्रेषणीयता को निखारा है, नए अंदाज में परिस्थितियों को देखा है फिर व्यक्त किया है। सामान्य सी बात को भी अपनी अभिव्यक्ति क्षमता के बल पर विशेष अंदाज दे दिया है। रिपोर्ताजकारों ने अपनी रचनाओं में नाटकीयता एवं व्यंग्य के माध्यम से अपने कथ्य को विशेष प्रभावी बना दिया है। व्यंग्य इनके यहाँ सिर्फ ऊपरी सतह पर दिखने वाला तत्त्व नहीं है, अपितु यह हमारी आत्मा में प्रवेश कर संप्रेषण के सभी आयामों को खोल देता है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने संप्रेषण के ढंग को अत्यंत ही प्रभावशाली बना दिया है। बिहार में 1966 में भयानक सूखा पड़ा। इस प्राकृतिक आपदा ने पूरे बिहार को अपनी चपेट में ले लिया। इस प्राकृतिक आपदा के साथ–साथ प्रशासन की अनदेखी ने इस भयावहता को और भी तीव्र कर दिया। फणीश्वरनाथ रेणु और साहित्यकार अज्ञेय सूखाग्रस्त इलाके के दौरे पर है। पूर्णिया के 'इंसपेक्शन बँगलों' में ठहरे हैं। सूखा एवं इसके दुष्प्रभावों को हृदय में समेटे भारी मन से भोजन का आर्डर दिया, जहाँ सब कुछ 'फस्टक्ला–स' है। रेणु लिखते हैं– ''बावर्ची से जिस चीज के बारे में पूछा, एक ही जवाब मिला– ''फस्टक्ला–स''!'' आटा बढ़िया होगा न? फस्टक्ला–स! फुलके यानी चपाती बनाना जानते हो न? – फस्टक्ला–स बगैर मिर्च–मसाले की सब्जी?– बेजिटेबल–स्टू? फस्टक्ला–स!...

बावर्ची से इस इलाके के सूखा और अकाल के बारे में पूछने का साहस नहीं हुआ। एक ही जवाब मिलेगा– फस्टक्ला–स।''[5]

मार्मिक घटना एवं दृश्य का वर्णन करते समय लेखक की अतिशय संवेदनशीलता दृष्टिगोचर होती है। शोषित–दमित, अछूत वर्ग की पीड़ा को उभारने वाले, युद्ध, बाढ़, सूखा, अकालजन्य विभिषिकाओं को स्पष्ट करने वाले रिपोर्ताजों में लेखकों की संवेदना, अतिशय संवेदनशीलता के रूप में व्यक्त हुई है। यही भावाभिव्यक्ति रिपोर्ताज साहित्य को अन्य साहित्य विधाओं से अलग करती है, क्रांतिकारी विधा बनाती हैं, प्रतिक्रियावादी नहीं। 'एक रात' रिपोर्ताज में रांगेय राघव लिखते हैं– ''आज मैं रोऊँगा नहीं, क्योंकि रोकर नहीं बचेगा बंगाल। बनानी होगी,

यह नमी हमें उन खूनियों के प्रति, नफरत की आग में भाप, तहस–नहस कर दे डाकुओं और ठगों का वह गिरोह जो खून से भीगे दाँत लेकर हँस रहा है और जिसकी कड़ी उँगलियों में फँसी माँ की गर्दन अभी छटपटा रही है।''[6]

यूँ तो रिपोर्ताज गद्य विधा है किन्तु इसमें पद्यात्मक अभिव्यक्ति भी मिलती है जो रिपोर्ताज की कथ्य–वैविध्यता को न सिर्फ समृद्ध करती है अपितु ज्यादा संप्रेषणीय बनाती है। रांगेय राघव ने बंगाल के अकाल की घोर यथार्थवादी अभिव्यक्ति की है। उनकी अतिशय भावुकता एवं बंगाल की जनता के दुख से घनिष्ठ संपृक्तता ने उन्हें गहरे तक झकझोर दिया है और इसकी अभिव्यक्ति काव्यमय हो उठी है। बंगाल में भयानक अकाल पड़ा है। लोग भूखों मर रहे हैं। अपनी भूख मिटाने के लिए लोग अपनी संतानों की न सिर्फ हत्या कर रहे हैं अपितु अपनी जवान बेटियों को भी बेच रहे हैं। बेटियाँ, वेश्यालयों में अपना तन बेंचकर जीवन बचाने को मजबूर हो रही हैं। यह मानव जाति के लिए एक दारुण त्रासदी है जिसे कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर रांगेय राघव ने और भी त्रासद बना दिया है। 'एक प्रेम–पत्र' रिपोर्ताज में लिखते हैं–

''मर गए दो लाख
इक्कीस लाख में से
डेढ़ लाख हुए भयानक
मर भुखे हैं
और नारी हो गई आज
निर्मलदास की कन्या सुहागिन
आह, ईश्वर करे उसका
अमर हो यह सबल यौवन!
और यदि यह भी न होगा
शीघ्र ही सड़ जाएगी वह
और फिर मर जाएगी वह।''[7]

रांगेय राघव के अभिनव काव्यमय प्रयोग के संदर्भ में डॉ. वीरपाल वर्मा का कहना है– ''कविता लिखने से पूर्व लेखक के मन–मस्तिष्क में एक बवंडर मचा होगा और तभी वैसी साफगोई उसकी लेखनी से फूट पड़ी। जिसके पढ़ने में भी तथाकथित शुद्धतावादियों की साहित्यिक जमात नाक–भौं सिकोड़ेगी। उसको उन्होंने कागज के पन्नों पर उतारकर अमर कर दिया। यह कविता काव्य–जगत का फोड़ा कही जा सकती है, किन्तु वैसे बंगाल का अकाल संपूर्ण मानवता के शरीर पर एक फोड़ा था।''[8]

रिपोर्ताज की गद्यमय विधा में काव्यमय प्रयोग करने वाले डॉ. रांगेय राघव एकमात्र रिपोर्ताजकार नहीं हैं। रिपोर्ताज विधा में काव्य का प्रयोग पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल एवं अमृतलाल नागर ने भी किया है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर द्वारा रिपोर्ताजों में 'शेरों' का प्रयोग किया है। 'आपबीती या जगबीती'? रिपोर्ताज में लिखते हैं–

''जुबा को बंद करें या मुझे असीर करें
मेरे ख्याल को बेड़ी पिन्हाँ नहीं सकते।

तथा

अल्लाह रे, उसका हाले–जबूँ अल्लाह रे, खामोशी
जो दिल में समन्दर रखता हो और आँखों में आँसू
ना ला सके।''[9]

रिपोर्ताज में समसामयिक घटनाओं का वर्णन होता है। अतएव इसमें यथार्थता एवं सामयिकता अधिक होती है। अन्य विधाओं का रचनाकार अपनी रुचि की सामग्री के लिए इधर–उधर भटकता है जबकि रिपोर्ताज लेखक मानव जीवन के किसी भी पक्ष से जुड़ी घटना महत्त्वपूर्ण हो जाती है। रिपोर्ताजकार के सामने एक स्पष्ट उद्देश्य और सतर्कता रहती है और सतर्कता है–तथ्यों की परख और छानबीन। रिपोर्ताज लेखक पीड़ित, शोषित, दमित मानव जीवन के कुँहासों में अंतरदृष्टि के सहारे संभावनाओं को तलाशता है। रिपोर्ताजकार के लिए किसी घटना का उस समय तक कोई मूल्य नहीं है जब तक वह समाज, राष्ट्र अथवा

विश्व के जीवन के किसी पक्ष से संबद्ध न हो। रिपोर्ताजकार घटनाओं के समन्वित प्रभाव और मानव–मूल्यों को केन्द्र में रखकर सृजन करता है।

रिपोर्ताज घटना प्रधान होने के कारण तात्कालिक अभिव्यक्ति की माँग करता है। रिपोर्ताज एक क्रांतिकारी कला है। क्रांतिकारी कला कलाकार से सौंदर्य–दृष्टि, भावनात्मक चेतनता, अनुभव और शैली के सामंजस्य की अपेक्षा कर कलाकार की क्षमता पर एक जबरदस्त भार डाल देती है। इतने महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह निसंदेह बँधे–बधाए कथ्य के माध्यम से नहीं हो सकता। शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''आज के क्रांति युग में रिपोर्ताज एक ऐसा रूप–विधान है जिसके द्वारा वर्तमान जीवन की संघर्षमयी वास्तविकता का अनुभव पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है। रिपोर्ताज में कहानी और उपन्यास के भी कई गुण रहते हैं। लेकिन उसके अंदर तैयार किए गए परिवेश, चरित्र और घटना में यथार्थता और सत्यता अधिक मात्रा में रहती है। उपन्यासों और कहानियों के अनुभवी लेखक कह सकते हैं कि उनके वे इतनी गतिशील वास्तविकता की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बना सकते। उनके अंदर तो वे उसकी तह में अधिक से अधिक शक्तियों के विराट संयोजन, संघटन और संघर्ष को ही चित्रित कर सकते हैं। किन्तु ज्वार की ऊपरी सामयिक लहरों को अंकित नहीं कर सकते। रिपोर्ताज की विशेषता यही है कि वह उन्हें ही अंकित कर सकता है : क्योंकि वह लेखक से एक नए प्रकार के अनुभव की अपेक्षा करता है अर्थात वह लेखक को घटना–स्थल पर मौजूद रहकर उसे जानने–समझने को बाध्य करता है और इस तरह लेखक का समाज के प्रति क्रांतिकारी संघर्ष से सीधा संबंध स्थापित कर देना है, और यह महत्वपूर्ण बात है।''[10]

5.2 शब्द योजना

शब्द विचार की दृष्टि से रिपोर्ताज साहित्य का क्षेत्र बहुआयामी है। रिपोर्ताज द्रुत विधा है। अभिव्यक्ति में तीव्रता अनिवार्य है। ऐसे में रिपोर्ताजकार को यह भान नहीं रहता कि उसकी लेखनी से देशज शब्द निःसृत हो रहे हैं या विदेशज,संस्कृतनिष्ठ या अरबी–फारसी। यही कारण है रिपोर्ताज साहित्य में भाषा वैविध्य के साथ–साथ शब्द चयन का आयाम विस्तृत है। एक ही रिपोर्ताजकार के एक ही रचना में जहाँ एक स्थान पर अंग्रेजी–अरबी–फारसी के शब्द मिलते हैं तो उसी रचना में अन्य स्थान पर संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी दर्शनीय है। कथ्य की अतिशय तीव्रता को लेखकीय मानस शब्दों के माध्यम से पकड़ने का प्रयास करता है। लेखक की प्रतिभा शब्द चयन के मूल में होती है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय लेखक की शब्द चयन तथा शब्द प्रयोग संबंधी मनस्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– ''ऐसी सक्रिय विधा में शब्द उसी प्रकार त्वरा पड़ते हैं जैसे स्वचालित बंदूक से निकलने वाली गोली। यह स्वयंचालित रचना–प्रक्रिया रिपोर्ताज लेखन के समय उपयुक्त शब्दों को स्वतः चेतना में अवतरित कर देती है, क्योंकि शब्द–शिल्प के लिए वरण या चयन का समय रेखाचित्र–संस्मरण आदि में मिल सकता है, रिपोर्ताज में नहीं। अतः यहाँ सरस्वती जैसे विद्युत आघात पा जाती है और लेखक के मुख या लेखनी से बाह्य प्रत्यक्ष घटना विद्युत की तरह झटके दे–देकर उसका श्रेष्ठ रचनात्मक तत्व खींचकर बाहर निकाल लेती है।''[11]

रिपोर्ताजकारों ने प्रमुख रूप से अपने रिपोर्ताजों में साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग किया है। अतः रिपोर्ताजों में शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है। वैसे तो शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है किन्तु इससे भाषा की संप्रेषणीयता घटी नहीं, बढ़ी ही है। ऐसे प्रयुक्त शब्दों में 'शरणार्थी बंधुओं', 'भामिनी', 'केलिकुंजिका, 'सांस्कृतिक महोत्सव', 'सर्वनाश', 'कर्णधारों', 'मृतक', 'नरमेध', 'अभिसृष्टि', 'दिग्विजय', 'निरालम्ब', 'निर्जीव', 'चिरन्तन', 'असीम', 'कक्ष', 'ध्वनि', 'अवगुंठन', 'विनोद–विलास', 'पाषाण', 'समवेत, गीत नृत्य', 'सामर्थ्य', 'प्रतिष्ठित', 'वयोवृद्ध', 'निहत्थी', 'वृक्षावलियों', 'हृष्ट–पुष्ट', 'अन्तर्मुखी', 'सतत प्रवाही' आदि। शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर',

भगवतशरण उपाध्याय, लक्ष्मीचंद्र जैन, रांगेय राघव, ललित शुक्ल आदि ने अपने रिपोर्ताजों में खूब किया है। संस्कृनिष्ठ शब्दों के प्रयोग के संबंध में अली मुहम्मद का कहना है– ''इन तत्सम शब्दों के प्रयोग से भाषा की संप्रेषणीयता बढ़ी है। शब्दार्थ और भावार्थ ग्रहण में कोई बाधा नहीं पड़ी। भाषा की सरसता में भी अभिवृद्धि हुई है।''[12]

रिपोर्ताज साहित्य में देशज शब्दों का प्रयोग उसकी संप्रेषणीयता एवं घटना की प्रामाणिकता को और भी प्रभावशाली बना दिया है। इसके पीछे कारण यह है कि रिपोर्ताज का कथ्य जनसाधारण से जुड़ा होता है और यह क्रांतिकारी विधा है। अतः पात्रानुकूल भाषा का चयन रिपोर्ताज साहित्य का अनिवार्य गुण हो जाता है। जनसाधारण की शब्दावली का प्रयोग रिपोर्ताज साहित्य में पर्याप्त मात्रा में मिलता है और यह रिपोर्तज साहित्य की सार्थकता है। फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, मणि मधुकर, विवेकी राय, कुबेरनाथ राय के रिपोर्ताज साहित्य में देशज शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से हुआ है। देशज शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं– 'पाड़ा', 'शोशान', 'घरघराते', 'सानोआमा', 'धन–कुट्टा', 'छोरो', 'लोम्ने', 'घुघुनी', 'बासा', 'घुप्प', 'छैल–छबीले' 'बिदापत', 'सिवान', 'हिलकोरा', 'पलानी', 'देवल', 'धणी', 'ब्याण', 'अकूत', 'मिनखा जूण', डोकरे', 'डिबरियो' 'औंधा', 'रींट', 'बँहगी', 'साँझ', 'लगल', 'सुखाड़', 'हथिया', 'नछत्तर', आदि। देशज शब्दों के प्रयोग के संबंध में अली मुहम्मद का कहना है– ''आम जनता की इस शब्दावली को किसी प्रकार से अनुचित नहीं कहा जा सकता। जिन लेखकों ने यह भाषा–नीति अपनायी है, उनके रिपोर्ताज प्रसिद्ध भी हुए हैं।''[13]

अंग्रेजी आदि पाश्चात्य भाषाओं के शब्दों को भी रिपोर्ताजकारों ने उदारतापूर्वक अपने रिपोर्ताजों में प्रयुक्त किया है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', फणीश्वरनाथ रेणु, रामकुमार वर्मा, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, भीमसेन त्यागी, लक्ष्मीनारायण लाल आदि रिपोर्ताजकारों ने पाश्चात्य शब्दों का प्रयोग किया है। 'फायर ब्रिगेड', 'मिनट', 'प्रोग्राम', 'सरकस', 'डिस्ट्रिक्ट' 'सेक्रेटरी', 'एडमिनिस्ट्रेटर', 'मजिस्ट्रेट, 'मार्शल', 'दि आनरेबल', 'प्रेसीडेंट', 'स्पीकर', 'हाल', 'पार्टी' 'सीट', 'पार्लामेन्टरी', 'मेम्बर', 'गैलरी', 'प्रेस', 'जज', 'टिकट चेकर', 'डिक्टेटरी', 'वोट',

'फाइल', 'लीडर', 'पाइन्ट', 'ऑफ', 'मडर्र', 'माइक', 'रूलिंग', 'एवररेडी','एवरहैप्पी', 'हिट', 'टूलेट', 'माई', 'डियर', 'वाकआउट', 'डेपुटेशन', 'चांस', 'पास', 'फेल', 'प्लाट', 'पिकनिक', 'स्पेशल', 'ट्रेन', 'मोटर', 'रिसैप्सन', 'कमैटी', 'पेन्सिल', 'हाई कमांड', 'डॉक्टर', 'रिक्शा', 'कुली', 'आपरेशन', 'बास्केट', 'स्ट्रेचर', कौन्सिल', 'कन्वेंशन', 'डिप्टी', 'डाइरेक्टर', 'इन्टैलीजेंस', 'ड्राइवर', 'सिन्सयरटी', 'सरकुलर', 'प्लेटफार्म', 'एसोशिएट', 'फोटोग्राफर', 'सिनेमा', 'बल्ब', 'एग्रीमेंट', 'सिस्टम', डिविडेन्ड', 'इमर्जेन्सी' 'वायसराय', 'कैबिनेट'', 'स्टेशन' आदि अंग्रेजी के शब्द अनायास ही रिपोर्ताज साहित्य में आ गए हैं। अंग्रेजी के तद्भव शब्दों का प्रयोग भी इस विधा में यत्र–तत्र मिल जाते हैं। जैसे– 'लीडरी', 'टेम', 'किरासन', 'कियसन' आदि। अली मुहम्मद का मानना है– ''अंग्रेजी शब्द रिपोर्ताज साहित्य में ऐसे घुलमिल गए हैं कि नहीं लगते बाहर से आये हैं। जहाँ इनके प्रयोग किए गए हैं वहाँ भाषा की सार्थकता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई है।''[14]

अरबी–फारसी के शब्दों का भी रिपोर्ताज साहित्य में खूब प्रयोग हुआ है। अमृतराय, रांगेय राघव, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', अमृतलाल नागर, आदि के रिपोर्ताजों में अरबी–फारसी के शब्दों की बहुलता स्पष्ट ही परिलक्षित होती है। ऐसे शब्दों में रोज, यार–दोस्त, फकीर, कद, हद, चीज, कीमत, लापरवाह, औरत, खुद, मुहरें, बेकार, आफत, नक्शे, सादगी, आखिरी, खूब, फिजूल, कायदा, खुश, मेहनत, वसूल, बाकी, कचहरी, शहर, मुफ्त, बहस, मुंशी, खजांची, मुकदमे, मिसल, वकील, मक्कारी, अजायबघर, आँधी, तूफान, बीमारी, कमजोर, कागज, तनखाह, वापस, परेशान, दरेग, विदा, तमीज, होशियार, खत्म, नकली, जानवर, शऊर, अफसोस, तकलीफ, नाराज, तकल्लुफ, बेगाना, अक्ल, जमींदार, साहूकार, नालिश, तहकीकात, जानकारी, कर्जदार, बदमाश, दस्तखत, जरूरी, अजीब, फौरन, हुक्म, तामील, डाक, इन्तजार, मेहमान, नागवार, गुजर, साहब, खून, खामोशी, खुमार, रोशनी, आदि शब्द अनायास ही आ गए हैं। अरबी–फारसी के शब्दों की संप्रेषणीयता असंदिग्ध है। इनकी जगह पर शायद कोई और शब्द का प्रयोग किया जाता तो रिपोर्ताजकार को अपनी अभिव्यक्ति अधूरी प्रतीत होती। इन शब्दों की सार्थकता के संबंध में अली मुहम्मद का कहना है– ''अरबी–फारसी के शब्द विन्यास से रिपोर्ताज साहित्य की

भाषा में ताजगी और चुस्ती आई है। इन शब्दों के प्रयोग बिलकुल भी नहीं अखरते। सामान्य पाठक के लिए भी सहज बोधगम्य होते हैं। हिन्दी भाषा परिवार में आकर वे गैर नहीं लगते। यदि इनके स्थान पर अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग किया जाता तो संभवतः भाषा दुरुह हो जाती और अपना भावार्थ खो बैठती।''[15]

रिपोर्ताज साहित्य जनता की भाषा है अतः रिपोर्ताजों की रचना जनसाधारण की भाषा में ही रचा जाए तो अपनी संप्रेषणीयता एवं अर्थवत्ता को सजीव रख पाता है। रिपोर्ताजकार को भाषा के मामले में अनुदार नहीं होना चाहिए। यदि रिपोर्ताज लेखक भाषा के प्रति दुराग्रही हुआ तो श्रेष्ठ रिपोर्ताज की रचना नहीं कर सकता। जिन रिपोर्ताजकारों ने भाषा के प्रति उदारता दिखलाई, वे उच्चकोटि के रिपोर्ताजकार हुए। इस संबंध में डॉ. वीरपाल वर्मा की उक्ति सत्य प्रतीत होती है। उनका मानना है– ''रिपोर्ताजों में शुद्ध साहित्यिक एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग, जिसमें अरबी–फारसी एवं अंग्रेजी के शब्द न हों कम ही दिखाई पड़ता है। इसका कारण संभवतः यह है कि रिपोर्ताज की विषय–वस्तु जनसाधारण के सर्वाधिक निकट की विषय–वस्तु है जो साहित्यकारों की जमात द्वारा जनता को भेंट स्वरूप दी जाती है। इसके अतिरिक्त रिपोर्ताज साहित्य पत्र–पत्रिकाओं, उनसे भी अधिकांश समाचार पत्रों में प्रकाशित होता आया है। अतः उसमें भाषा के प्रति यह उदारता का कुछ अधिक मात्रा में पाया जाना स्वाभाविक ही है। जनता में अपनी भाषा की संप्रेषणीयता एवं सार्थकता को और अधिक सक्षम बनाने हेतु जनता की ही शब्दावली का प्रयोग किया जाना अनुचित नहीं कहा जा सकता। जन–साधारण की भाषा में अरबी–फारसी एवं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग चूँकि पर्याप्त मात्रा में होता है अतएव रिपोर्ताजकारों द्वारा वैसी ही शब्दावली का प्रयोग करना तर्क एवं न्यायसंगत है। कदाचित इसी प्रकार की उदार भाषा–नीति अपनाने वाले रिपोर्ताजकार अपेक्षाकृत विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। पं. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', डॉ. रांगेय राघव इसी कारण उच्चकोटि के रिपोर्ताजकार समझे जाते हैं।''[16]

रिपोर्ताज साहित्य न सिर्फ भाषा अपितु लोकोक्ति और मुहावरों के प्रयोग की दृष्टि से भी समृद्ध साहित्य है। लगभग सभी रिपोर्ताज लेखकों ने अपनी रचनाओं में आवश्यकतानुसार लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग किया है। कन्हैयालाल मिश्र

'प्रभाकर', रांगेय राघव, मणिमधुकर, फणीश्वरनाथ रेणु, विवेकी राय, ललित शुक्ल आदि लेखकों ने लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा कस उठी है, बोधगम्य हो उठी है।

रांगेय राघव ने आस्तीन का साँप, हड्डी डालकर कुत्ते का मुँह बंद करना, घुटने टेक देना, सिर झुका देना, दाँत खट्टे कर देना, चाँदी का टुकड़ा, पिंजड़े की चिड़िया, फन पटकना, ताबड़ तोड़ हाड़तोड़ मेहनत, पहाड़ का पत्थर तोड़ना, खाट के पाए में साँप लिपटा होना, रक्त से सींचा होना आदि लोकोक्ति एवं मुहावरे का प्रयोग किया है।

रिपोर्ताज के आदि लेखक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने भी अपनी रचनाओं में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग खूब किया है। पाप कट जाना, हवा से बातें करना, कोढ़ में खाज का काम करना, जान को रोना, विष चिकित्सा, आदि लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग प्रभाकर जी ने किया है।

अमृतराय लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग से कथ्य की सूक्ष्म संवेदनाओं को उजागर करने में सफल रहे हैं। पोल खुलवाना, सर के बल खड़े होना, फूटी आँख न सुहाना, गरीबी में आटा गीला, भरे पेट के चोचले इत्यादि मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है।

विवेकी राय ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना दिया है। जब कंवार फूटे तब गँवार बूझे, टूटे तवा और फूटी कठौती, जहाँ सौ कसाई तहाँ एक की क्या बसाई, कलेजा काँप गया, नापे जोखे थाहे लड़के डूबे काहे, चढ़ते बरसे आद्रा उतरते बरसे हस्त, ईस्सर पइसे दलिद्दर निकसे, पढ़े फारसी बेचे तेल, आदि मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग विवेकीराय ने किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने कलेजा धड़क उठा, कमर दुलिए–दुलिए, रोम–रोम पुलकित हो उठा, बेसिर पैर की, नैनों के तारे हमारे पधारे आदि मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है।

इनके अलावा ललित शुक्ल ने भी तांता लगा दिया, प्रकृति की पिटारी, सूखे होंठों की कथा, दूध का धोया, बाबा के मोल, दुख का हिमालय, भीष्म प्रतिज्ञा, आदि मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया।

लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग जहाँ वाक्य को कस देता है, वहीं भाषा में सौंदर्य की सृष्टि करता है। अली मुहम्मद के शब्दों में कहा जा सकता है कि– ''इस साहित्य की भाषा का वाक्य–गठन व्याकरण सम्मत होते हुए भी परम्परा से हटकर है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा बोझिल नहीं हुई है और ना ही वाक्यार्थ बोध में किसी प्रकार की रुकावट आई है।''[17]

5.3 बिंब और प्रतीक विधान

बिंब विधान

ललित कला के प्रमुख तत्त्वों में बिंब विधान महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। बिंब की अनिवार्यता इस बात से पता चलती है कि रचना–निर्माण के समय कलाकार की अमूर्त सहानुभूतियों को बिंबों के द्वारा ही आकार और, इन्द्रियग्राह्यता मिल पाती है। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में– ''काव्य के प्रसंग में किसी भाव या विचार को तथा किसी वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ की विशेषताओं या रूपगुणों को इंद्रियगोचर एवं हृदयंगम बनाने हेतु जो संप्रेषक अप्रस्तुत रूप योजना की प्रणाली अपनाई जाती है वह बिंबवाद है। बिंब योजना काव्य का प्रधान व्यापार होने से, काव्य की कसौटी इसी के आधार पर बननी चाहिए, यह बिंबवाद का आग्रह है। बिंब योजना की सफलता ही कवि की सफलता का मानदंड है।''[18] हम कह सकते हैं कि बिंब रचना काव्य का मुख्य व्यापार है। बिंबों के द्वारा ही रचनाकार वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विशेषता, विचार आदि साकार तथा निराकार पदार्थों और मानस क्रियाओं को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियग्राह्य बनाता है।

बिंब, किसी भाव, विचार, वस्तु, घटना आदि का इन्द्रिय संवेद्य काल्पनिक शब्दबद्ध संमूर्तन है। बिंब का ऐन्द्रिय संवेद्य होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में रचनात्मक होना संभव नहीं। रूप, रस, गंध, स्पर्श और स्वाद के बिंब काव्य बिंबों में समाहित हैं।

यूँ तो बिंब विधान काव्य का विषय है किन्तु रिपोर्ताज साहित्य में बिंब की अनिवार्यता अनायास ही प्रासंगिक है। रिपोर्ताजकार देखी हुई घटना, दुर्घटना या अन्य किसी सांस्कृतिक महत्त्व के दृश्य को अपनी रचना में यथार्थ रूप से प्रकट करता है। वह बिंबों के माध्यम से अपनी रचना में रूप, रस, गंध, स्पर्श एवं स्वाद का भाव समाहित कर देता है। पाठक इस रचना को पढ़कर स्वयं को भोक्ता महसूस करने लगता है। अपने को उस दृश्य के बीच पाता है जिसे वह पढ़ रहा है। यह मात्र बिंब विधान के कारण ही संभव हो पाता है। जिस रिपोर्ताजकार की

रचनात्मक ऊर्जा बिंब विधान को अपनी प्रतिभा से समाहित कर पायेगा उसका रिपोर्ताज साहित्य उतना ही उच्चकोटि का होगा।

किसी बात को समझने के लिए प्रथमतः उसे अपनी चेतना का अंग बनाना होता है, अपनी कल्पना में प्रत्यक्ष करना होता है। कोई भी गूढ़, दुरुह विचार हमें समझ में कठिनाई से ही आता है, पर यदि उसे रूपायित कर दिया जाए अर्थात उसकी मुख्य विशेषता को स्पष्ट करने वाली अप्रस्तुत वस्तुओं को उसके माध्यम से समझाया जाए तो वह शीघ्र ही भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। ऐसा केवल बिंब के माध्यम से ही संभव है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' रिपोर्ताज साहित्य के प्रमुख रिपोर्ताजकारों में से हैं जिन्होंने अपने रिपोर्ताजों में बिंब–विधान को रचा है। लोक–संस्कृतियों के दिन–प्रतिदिन छिजते जाने का खतरा 'प्रभाकर' जी को बहुत ही व्यथित करता है। हमारी लोक संस्कृति जो हमारे जीवन का अनिवार्य अंग थी, आज जीवन से अलग होती जा रही है। 'मेरे मकान के आस–पास' रिपोर्ताज में 'प्रभाकर' जी ने मानस बिंब के माध्यम से पाठकों के सम्मुख लोक संस्कृति के छिजते चले जाने का बिंब उपस्थित किया है। वे लिखते हैं– ''गीत की रसधारा में बहते–बहते मेरी पलकें अब भारी हो गई हैं और नींद उन पर अपना डोरा डाल रही है। कानों की ग्रहण शक्ति कम हो चली है, मस्तिष्क में तंद्रा है और गीत का स्वर इससे और भी भीना, मधुर हो गया है– प्रकृति जैसे थिरकती–थिरकती, धीरे से नृत्य की विशेष मुद्रा में आकर स्थिर हो गयी है। मन वर्तमान की धारा से फिसलकर भावी की चिंता में रम चला है– निंदियाया मन, मेरा मन।''[19]

बिंब एक ओर अर्थ को स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर भाव को सम्प्रेषित एवं उत्तेजित करने का प्रमुख साधन भी है। वास्तव में रचनाकार अपने अन्तस की तीव्र भावानुभूति को उसी तीव्रता के सथ दूसरों तक भी पहुँचाने के लिए बेचैन हो उठता है। इसी छटपटाहट की स्थिति में वह बिंब की सृष्टि करता है। उसकी सफलता इसी में है कि वह दूसरों के हृदयों में अपने विचार प्रत्यारोपित कर दे। सन् 1942 में बंगाल में पड़े भीषण अकाल में बंगाल की जनता सिर्फ इस प्राकृतिक आपदा से ही नहीं मरी, जमाखोरों, शोषकों एवं अत्याचारी शासन के शोषण का शिकार होने से भी मरी। वहाँ के लोगों में या यह कहें कि समूचे भारतीयों में तत्कालीन अंग्रेजी

शासन के प्रति आक्रोश था। इसी आक्रोश को व्यक्त करते हुए रांगेय राघव अपने एक रिपोर्ताज 'एक रात' में बिंब की सृष्टि करते हैं– ''आज मैं रोऊँगा नहीं, क्योंकि रोकर नहीं बचेगा बंगाल। बनानी होगी यह नमी हमें उन खूनियों के प्रति, नफरत की आग में भाप, तहस–नहस कर दे डाकुओं और ठगों का वह गिरोह जो खून से भीगे दाँत लेकर हँस रहा है, और जिसकी कड़ी उंगलियों में फँसी माँ की गर्दन अभी छटपटा रही है।''[20]

बिंब विधान, वस्तु या घटना को प्रत्यक्ष कर देता है। इससे हमारे कल्पना या मन पर तुरंत प्रभाव पड़ता है और वह वस्तु या घटना हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जाती है। ठीक उसी रूप में, जिस रूप में रचनाकार प्रस्तुत करना चाहता है। बिंब विधान का यह एक सहज गुण है। फणीश्वरनाथ रेणु ने शब्दों के माध्यम से बाढ़ का अद्‌भुत बिंब खींचा है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाढ़ पाठक के सम्मुख अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ मौजूद है। 'कुत्ते की आवाज' रिपोर्ताज में रेणु ने बाढ़ के आने का बिंब खींचा है– ''अब, तुमुल तरंगिनी के तरल नृत्य और वाद्य की ध्वनियों को शब्दों में बाँधना असंभव है! अब...अब...सिर्फ....हिल्लोल–कल्लोल–कलकल कुलकुल–छहर–छहर– झहर–झहर–झहर–झरझर–अर, र–र–र– है– ए–ए धिग्रा–धिंग्र–धातिन–धा तिनधा–आ–आ है– मैया–गे–झाँय–झारय, झध–झध–झाँय झिझिना–झिझिना कललकुलल–कुल कुल– बाँ–आँ–य–बाँ–आ–म–भौ–ऊँ–ऊँ.... चेंई–चेंई छछना–छछना–हा–हा–हा ततथा–ततथा–कलकल–कुलकुल...!!''[21]

रूप, गुण और सौंदर्य का चित्रण साहित्य में सर्वाधिक मिलता है। इनके चित्रण में बिंब विधान अत्यंत सहायक होता है। काव्य हो या रिपोर्ताज बिंब योजना रूप, गुण और सौंदर्य के चित्रण में अग्रणी रही है। रिपोर्ताजकार बिंब के माध्यम से जगह या वस्तु को उसकी संपूर्णता में चित्रित कर हमारे मानस में उसकी छवि उपस्थित कर देता है। ललित शुक्ल ने अपने रिपोर्ताज 'सौंदर्य का पर्याय है चित्रकूट' में चित्रकूट के सौंदर्य को बिंबित किया है। वे लिखते हैं– ''राम ने अपनी प्रिया को सूचना दी थी। यही कि चित्रकूट पर अनेक छायादार वृक्ष हैं। आम, महुआ, जामुन, बेर, कटहल, बेल, सिन्दुक, बाँस, आँवला, कदम्ब, बेंत, अनार और अरिष्ट (नीम) के वृक्ष चतुर्दिक हरियाली बाँट रहे हैं। कहा था राम ने कि ''सीते,

ध्यान से देखो।'' किन्नरों के जोड़े प्रीतिपूर्वक यहाँ घूम रहे हें। इनके खड्ग वृक्षों की डालियों से लटक कर चित्रोपम सौंदर्य रच रहे हैं। विद्याधरों की अंगनाएँ अपनी क्रीड़ा की सुविधा के लिए वस्त्रों को डालों पर लटका रखा है।''[22]

बिंब के जितने भी प्रकार हो सकते हैं, रिपोर्ताजों में सभी को स्थान मिला है। रिपोर्ताजकारों ने अपनी रचनाओं में बिंबधर्मिता का निर्वाह अनायास ही किया है जिसके मूल में रिपोर्ताज का घटना प्रधान विधा होना है। रिपोर्ताजों में वर्णित घटनाएँ मात्र निर्जीव रिपोर्ट नहीं होती। ये घटनाएँ अपने परिवेश की संपूर्ण चित्रात्मकता के साथ, भावों और संवेदना के ज्वार–भाटे की तरंगों से एक सजीव अनुभव बन जाती हैं और पाठक को सवाक् चित्रपट की भाँति किंतु यथार्थ और विश्वस्त रूप से, उनका अनुभव प्रदान करती हैं। अतः बिंब रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श आधारित होते हैं। इस संबंध में डॉ. कुमार विमल लिखते हैं– ''इंद्रियाँ ही पंचभूतों एवं तन्मात्राओं तक हमारे उपनयन का माध्यम हुआ करती हैं। ये तन्मात्राएँ पाँच हैं– रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गंधतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रा और स्पर्शतन्मात्रा। इन सभी तन्मात्राओं का प्रत्यक्ष हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों–दर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय अथवा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा करते हैं। इन सभी प्रत्यक्षों के क्रम में हमारा अंतकरण (मन, अहंकार और बुद्धि) जागरुक रहता है तथा इस पर देश, काल, परिस्थिति और विद्या का प्रभाव पड़ता है। ये इन्द्रियाँ तभी सार्थक हो पाती हैं जबकि इन्हें सन्निकर्ष के लिए कोई वस्तुनिष्ठ आधार मिले।''[23]

रिपोर्ताजकारों ने दृश्य बिंबों का विधान अपने रिपोर्ताजों में खूब किया है–दृश्य चाहे, घटना का हो या वस्तु का। दृश्य बिंब विधान द्वारा रिपोर्ताजकार हमें किसी दृश्य को सिर्फ साक्षात ही नहीं कराता अपितु उस दृश्य को हमारे अंतःकरण से जोड़ देता है। 'समय की शिला पर : सिलाव का खाजा' रिपोर्ताज में रेणु ने बौद्धकालीन इतिहास को बिंबित कर दिया है। वे लिखते हैं– ''उसी समय गाइड बुक में मैंने जो कुछ पढ़ा–उसे क्या कहें? काकतालीय? यहीं, पास ही गृद्धकूट की तलहटी में 'मर्दकुक्षि' नामक स्थान है, जहाँ बुद्ध अपने आत्मीय देवदत्त के द्वारा लुढ़काए गए पत्थर से घायल हुए थे।.... 'मर्दकुक्षि' नाम के पीछे एक ऐतिहासिक 'किस्सा' है। कहते हैं जब बिंबिसार की रानी को यह पता चला कि उसके पेट में

पितृहंता (अजातशत्रु) पल रहा है तब इसी स्थान पर 'कोखमर्दन' करवाकर अजन्मे बालक से पिंड छुड़ाने की चेष्टा की थी।''[24]

रिपोर्ताजकारों ने दृश्य व्यापार बिंबों की भी योजना की है जिसमें व्यापार बिंब का विधान किया जाता है। ये दृश्य जीवन के किसी अंग का सजीव वर्णन होते हैं जिनमें पशुचारण, कृषि, वाणिज्य आदि प्रधान रूप हमारे सामने आते हैं। भगवतशरण उपाध्याय ने 'वैश्य' रिपोर्ताज में गतिमय दृश्य का बिंब रचा है। वे लिखते हैं– ''मेरा इतिहास उतना पुराना है जितना बचे आहार का संचय, पशुपालन की व्यवस्था, कृषि का उदय, वस्तुओं का विनिमय। भारतीय इतिहास के आरंभ में मैं मोहनजोदड़ो और सिन्धु सभ्यता के अन्य नगरों का संबंध एक ओर सुमेर–बाबुल से करता, दूसरी ओर मिश्र–इथिओप से। फायूम और काहिरा के शवों के अवलेप के अनेक द्रव्य और उनके आवरण–वस्त्र मैंने ही वहाँ पहुँचाए थे। इस्रायल के वंशधरों की इब्रानी बाइबिल का शिन्तो (सिन्धु प्रदेश की मलमल) मैंने ही उस दूर देश को भेजा था। सुमेर के उन समाधि–भवनों में जो मल्का–शुबाद और अन्य राजकीय व्यक्तियों के शव–परिधान, उनके रत्नाभूषण, स्वर्ण–रजत एकत्रित हैं, मैंने ही प्रस्तुत किए थे।''[25]

रिपोर्ताजों में सांस्कृतिक बिंबों कीयोजना भी रिपोर्ताजकारों ने की है। सांस्कृतिक बिंब सांस्कृतिक क्रियाविधियों का सजीव चित्रण उपस्थित करते हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', ललित शुक्ल, भगवतशरण उपाध्याय आदि रिपोर्ताजकारों ने सांस्कृतिक बिंबों की योजना की है। 'कुंभ महान' रिपोर्ताज में भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं– ''राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति है– राष्ट्र चेतना। इसी का लोकप्रिय नाम है भारतीय संस्कृति। संस्कृति ही मूल जीवन स्रोत है। राष्ट्र के ह्रासकाल में जब जनजीवन का संपर्क इस मूल स्रोत से टूट चला और यों जाति के सर्वनाश का भय चारों ओर छाया, तो राष्ट्र के कर्णधारों, संतों ने जनजीवन को उसे मूल–स्रोत के साथ अंधश्रद्धा के सूत्र से बाँध दिया। यह अंध श्रद्धा अंधी–श्रद्धा भी रही है और अंधों की श्रद्धा भी। यह एक प्रकार की विष–चिकित्सा थी– इसमें खतरा था, पर यह अनिवार्य थी, क्योंकि और कोई औषध उस दिन हमारे पास ही न थी, जो प्रभावशाली हो।''[26]

स्पर्श बिंबों की योजना भी रिपोर्ताज में यत्र–तत्र मिलती है। ये बिंब पाठक की अनुभूति को वस्तु से संपृक्त कर देते हैं। पाठक वर्णित वस्तु के स्पर्श की अनुभूति प्राप्त करता है। 'सर्पिका ही सई है' रिपोर्ताज में ललित शुक्ल ने 'सई' नदी की स्मृतियों को बिंबित किया है। ये स्मृतियाँ इतनी सजीव है कि हाथ बढ़ाकर छू लेने का एहसास होने लगता है। ललित शुक्ल को 'सई' नहीं प्रिय है। वे लिखते हैं– ''यही नहीं मुझे प्रिय है। बचपन की संगिनी है। स्मृतियों के पंख लगाकर मन उड़ता है। सई के रेतीले तट पर धीरे–धीरे चलते हुए सारस के जोड़ों में कहीं खो जाता है। केवल एक ही दृश्य नही है। आँख खोलिए और दृश्य छवियों का ताँता लग जाता है। पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पतियाँ, आसमान की नीलिमा और आदमी की करतबी दुनिया के कई दृश्य सई के साथ चलते रहते हैं। इसकी स्थिरता भी गतिशील है। इसके मौन में वाचालता है।''[27]

रिपोर्ताज गतिशील विधा है, प्रत्येक क्षण मानस में नई–नई छवि–दृश्य बनते रहते हैं। रिपोर्ताजों में बहुत से ऐसे बिंबों की योजना की गई है जिनका प्रभाव इन्द्रियगत न होकर मन या चित्त पर अधिक होता है। ऐसी स्थिति में इन्हें मानस बिंब कहना ज्यादा उचित होगा। इस प्रकार के बिंबों में वैचारिक या भावात्मक अनुभूति प्रमुख रहती है। नारी के जीवन इतिहास को केन्द्र में रखकर भगवतशरण उपाध्याय ने 'नारी' रिपोर्ताज में मानस बिंब को रूपायित किया है। वे लिखते हैं– ''हाँ उसकी क्या कहूँ– वह मेरा रहस्य है, गोप्य। और ये मन्दोदरी, तारा, अहिल्या, कुंती, द्रोपदी प्रातः स्मरणीय पंचकन्याएँ हुईं। प्रातः स्मरणीया, क्योंकि उन्होंने समर्थों के कार्य साधे थे– समाज के छिपे रूस्तम सूर्य, इन्द्र, वायु, अश्वनीकुमार समर्थों के– जिन्हें दुष्कृत्यों का दोष नहीं लगता।''[28]

श्रवण बिंब की योजना रिपोर्ताज साहित्य में पर्याप्त मिलती है। यह बिंब श्रवणेन्द्रिय आधारित है। फणीश्वरनाथ रेणु ने शब्दों को ध्वनि प्रदान कर उन्हें श्रवण बिंबों में बाँध दिया है। 'पुरानी कहानी : नया पाठ' रिपोर्ताज में रेणु कोसी नदी में आए बाढ़ को बिंबित करते हुए लिखते हैं कि– ''मृदंग–झाँझ के ताल पर फटे कंठों के भयोत्पादक सुर...कि आहे–मैया–कोसका–आ–आ–हैय–मैया–तोहरो–चरनवाँ–गै मैया अड़हूल–फूलवा कि हैय–मैया–हमहु–चढ़ायब–हैय...!

... धिन–तक–धिन्ना, धिन–तक–धिन्ना

छम्मक–कट–छम, छम्मक–कट–छम।''[29]

प्रतीक विधान

'प्रतीक' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में हुआ है। 'प्रतीक' (प्रतिः + इक) का अर्थ है– 'प्रतिः' अपनी ओर 'इक' झुका हुआ। कहने का अर्थ यह है कि जब किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले गोचर हो, और फिर आगे वस्तु का ज्ञान हो, तब उसको प्रतीक कहते हैं। प्रतीक काव्य का सौंदर्य विधायक तत्व है। नये कवियों ने प्रयोग के स्तर पर प्रतीक की प्राचीनता स्वीकार की है। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के अनुसार– ''जन साहित्य सदा से और सबसे अधिक प्रतीकों और अन्योक्तियों के सहारे ही अपना प्रभाव उत्पन्न करता है। यह बीज हम संस्कृत में पाते हैं– वेदों से लेकर वाल्मीकि तक और वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक भी।.... संस्कृत से वह शक्ति अपभ्रंशों में और फिर लोक साहित्यों में चली गई।''[30]

डॉ. भगीरथ मिश्र का मानना है– ''अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।''[31]

वास्तव में यह प्रतीक पद्धति सामान्य जीवन और व्यापक व्यवहार क्षेत्र में भी प्रयुक्त होती है। राष्ट्रीय या धार्मिक झंडा, सिक्का, लिपि, वृक्ष, फल, व्यक्ति, आदि प्रतीक अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं। समस्त प्रतीकों की सृष्टि साहित्यकार मानव अपनी प्रतिभा द्वारा करता है। वह अपनी रचना के लिए संसार से उपादान अवश्य ग्रहण करता है पर उसे रूपांतरित कर देता है। बच्चन सिंह का मानना है– ''मनुष्य को पशु से अलगाने के लिए उसे 'होमोसेपिएंस', 'एनीमल रैशनेल', या विवेकी कहा गया है। पर कैसिरर मनुष्य को 'एनिमल सिंबालिकम्' कहता है, यानी मनुष्य प्रतीक–स्रष्टा प्राणी है। वह अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों की तलाश करता रहता है। प्रतीकों की तलाश एक सर्जनात्मक व्यापार है। मानव होने की सार्थकता इसी में है।''[32]

जिस तरह कविता के क्षेत्र में नवीन प्रयोगों के अंतर्गत प्रतीकों की सृष्टि की गई उसी तरह रिपोर्ताज विधा में भी नए–नए प्रयोग किए गए जिनमें प्रतीक विधान भी एक है। बिंब विधान की भाँति ही प्रतीक योजना ने भी रिपोर्ताज विधा को समृद्ध किया।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रतीकों के विभिन्न प्रकार गिनाए जा सकते हैं– प्राकृतिक प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, जीवन व्यापार संबंधी प्रतीक, शास्त्रीय या वैज्ञानिक प्रतीक। यद्यपि रिपोर्ताजों में काव्य की भाँति प्रतीकों का समावेश सर्वत्र नहीं दिखता तथापि फणीश्वरनाथ रेणु, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, ललित शुक्ल, अमृतराय, विवेकी राय, निर्मल वर्मा आदि अनेक रिपोर्ताजकारों ने प्रतीकों का प्रयोग किया है।

जब प्रकृति के पदार्थ या प्राणी जब किसी भावना या विचार का प्रतिनिधित्व करते हुए चित्रित किए जाते हैं तो वे प्राकृतिक प्रतीक की श्रेणी में आते हैं। रिपोर्ताजकारों ने भी प्राकृतिक प्रतीकों का विधान किया है। पटना शहर में आई बाढ़ (1975) के पानी को रेणु महामत्ता रहस्यमयी प्रकृति का प्रतीक मानते हैं। बाढ़ उनके यहाँ प्रलय या विनाश नहीं है, अपितु महामत्ता प्रकृति का नृत्य है। वे लिखते हैं– ''अरे दुर साला! काँदछिस केन?... रोता क्यों है? बाहर देख साले! तुम लोग थोड़ी–सी मस्ती में जब चाहो तब राह चलते कमरदुलिए– दुलिए (कमर लचकाकर, कूल्हे मटकाकर) ट्वीस्ट नाच सकते हो। रम्बा–सम्बा–हीरा–टीरा और उलंग नृत्य कर सकते हो और वृहत सर्वग्रासी महामत्ता रहस्यमई प्रकृति कभी नहीं नाचेगी?.... ए–बार नाच देख! भयंकरी नाच रही है– ताता–थेई–थेई, ताता–थेई–थेई। तीब्रा तीब्रवेगा शिवनर्त्तकी, गीतप्रिया, वाद्यरत्ता प्रेतनृत्यपरायणा नाच रही है। जा, तू भी नाच।''[33]

कुबेरनाथ राय ने भी नदियों को जो प्रकृति की उपादान हैं, त्रिपुर सुंदरी, काल आदि के प्रतीक के रूप में वर्णित किया है। 'दृष्टि–अभिषेक' रिपोर्ताज में वे ब्रह्मपुत्र नदी के संदर्भ में लिखते हैं– ''पानी का बहाव ही ऐसा है कि जाओ एक रास्ते, तो लौटो दूसरे रास्ते से। नदी का रास्ता तो नदी ही देती है बाबू! यह आदमी के मन की बात नहीं। नदी में ब्रह्मपुत्र का हुक्म चलता है! माँझी कुछ

दार्शनिक की तरह बात कर रहा है। वह असमिया बोल रहा है, जिसका तात्पर्य कमोबेश यही होगा : नदी में नदी ही कर्णधार है, नदी ही सारथि है, नदी ही मृत्यु है, नदी ही काल है, जल में नदी ही सब कुछ है।''[34]

इतिहास के व्यक्ति, स्थान या घटनाएँ जब किसी विशिष्ट भाव विचारादि का प्रतिनिधित्व करती हुई वर्णित की जाती हैं, तब हमें वहाँ ऐतिहासिक प्रतीक प्राप्त होते हैं। 'दिल्ली' शक्ति और सत्ता का प्रतीक है। भारत पर शासन करने वाली शक्तियाँ दिल्ली पर अपना अधिकार जमाना चाहती थी। 'दिल्ली की आपबीती' रिपोर्ताज में भगवतशरण उपाध्याय ऐतिहासिक प्रतीक की योजना करते हुए लिखते हैं– ''अपने धुँधले इतिहास पर जब नजर डालती हूँ तब उसके पन्नों से चिपके उन नजारों को देखती हूँ जिनसे रोएँ एकाएक खडे हो जाते हैं, खुशी से भी डर से भी। पिछले हजार सालों के दौरान किस्मत के कितने धनी कितने कम्बख्त मेरी राह गुजरे हैं, शुमार नहीं कर पाती। प्रतीहार और गहड़वाल, तोमर और चौहान, पठान और तुर्क, खिलजी और तुगलक, सूर और सैयद, लोधी और मुगल, मराठे और अंग्रेज मैंने सबको देखा, एक–एक को देखा और उनके बीच–बीच देखी दर्दनाक खूरेंजी, चंगेज, तैमूर, नादिरशाह और अब्दाली के करिश्मे। जमाने ने जो दिखाया सब देखा, पर अपनी पेशानी पर बल न आने दिया, नए साज दिनोंदिन साजती गयी।''[35]

रिपोर्ताजकारों ने जीवन–व्यापार संबंधी प्रतीकों की योजना अपने रिपोर्ताजों में की है। ये ऐसे प्रतीक होते हैं जिनमें जीवन से संबंधित क्रिया–कलापों और दैनिक घटनाओं को प्रतीक बनाकर प्रयुक्त किया जाता है। भगवतशरण उपाध्याय ने अपने रिपोर्ताज 'लेखक' में जीवन–व्यापार संबंधी प्रतीक योजना का निरूपण किया है– ''मैं लेखक हूँ, और सदियों से नहीं, सहस्राब्दियों से लिखता आ रहा हूँ। फिनीशी से पहले, मिकीनी, आसूरी और बाबूली से भी पहले, सुमेरी और मिस्री लेख मैंने लिखे और चित्र की लिखावट में लिपि को वर्तमान वर्णमाला का रूप भी मैंने ही दिया।''[36]

रिपोर्ताजों में सांस्कृतिक प्रतीकों की योजना दृष्टिगत होती है। वे प्रतीक जिसमें संस्कृति से संबंधित प्रतीकों का विधान किया गया हो वे सांस्कृतिक प्रतीक

कहलाते हैं। रामायण, महाभारत, पुराण, कुंभ बौद्ध,–जैन–इस्लाम–ईसाई संस्कृति के प्रतीक इसके अंतर्गत आते हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'कुंभ महान' रिपोर्ताज में सांस्कृतिक प्रतीक की योजना की है। 'कुंभ उनके लिए भारतीय राष्ट्र की सामूहिकता का प्रतीक है। वे लिखते हैं– ''कुंभ : भारतीय राष्ट्र की मानसिक सामूहिकता का एक प्रतीक है, यह सामूहिकता कितनी गहरी, कितनी महान और कितनी आंतरिक कि शताब्दियों के परिस्थिति–चक्रों में पड़कर भी अजेय और आज भी विश्व में अनुपमेय।''[37]

ललित शुक्ल, धर्मवीर भारती, विवेकीराय ने अपने रिपोर्ताजों में प्रतीक विधान को स्थान दिया है। रिपोर्ताजों में बिंब एवं प्रतीक विधानों की योजना कर रचनाकारों ने जहाँ काव्यात्मक प्रयोग किए हैं वहीं रिपोर्ताजों को जन–जीवन के साथ रागात्मक रूप से जोड़ दिया है। रिपोर्ताजकारों ने अपनी रचनात्मक कल्पनाशक्ति द्वारा बिंबों एवं प्रतीकों की योजना का विधान अपनी रचनाओं में किया है।

5.4 भाषा

भावों, विचारों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम भाषा है। भाषा के द्वारा ही हम अपने मन के विचारों और भावों को दूसरों तक एवं दूसरों के भावों एवं विचारों को स्वयं जान–समझ पाते हैं। भाषा प्रकृति प्रदत्त साधन है एवं साहित्यिक विधाओं के लिए तो और भी महत्वपूर्ण है। जिस रचनाकार की भाषा जितनी ही सशक्त होगी, उसकी रचना उतनी ही श्रेष्ठ होगी। रिपोर्ताज विधा के लिए भाषा की संप्रेषणीयता और भी मायने रखती है क्योंकि यह विधा घटनाप्रधान होने के साथ–साथ अपने यथार्थ रूप में वर्णित की जाती है। अतः रिपोर्ताज लेखक को भाषा प्रयोग में अत्यंत सावधान होना चाहिए क्योंकि पाठक उसकी रचना को पढ़कर वही अनुभूति करें जो अनुभूति रिपोर्ताजकार को प्रत्यक्ष घटना देखकर हुई थी। अली मुहम्मद के अनुसार– ''भाषा–प्रयोग में लेखक की थोड़ी सी असावधानी, साधारण को असाधारण और असाधारण को साधारण रूप में पाठक तक पहुँचा सकती है और इस तरह साहित्य की संप्रेषणीयता को आघात पहुँचता है।''[38]

यदि कथ्य रचना की आत्मा है तो भाषा उसका शरीर। कथ्य सत्य होते हुए भी प्रभावशाली तभी हो सकता है जब भाषा सशक्त हो। यही कारण है कि रिपोर्ताज लेखन के समय शब्द तेजी के साथ विद्युतधारा के समान प्रवाहित होते रहते हैं। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रिपोर्ताज के भाषा–विन्यास एवं शब्द चयन के संबंध में लिखते हैं– ''ऐसी सक्रिय विधा में शब्द उसी प्रकार त्वरा पकड़ते हैं जैसे स्वचालित बंदूक से निकलने वाली गोली। यह स्वचालित रचना–प्रक्रिया रिपोर्ताज लेखन के समय उपयुक्त शब्दों को स्वतः चेतना में अवतरित कर देती है, क्योंकि शब्द–शिल्प के लिए वरण और चयन का समय रेखाचित्र–संस्मरण आदि में मिल सकता है, रिपोर्ताज में नहीं। अतः यहाँ सरस्वती जैसे विद्युत आघात पा जाती है और लेखक के मुख या लेखनी से बाहर प्रत्यक्ष घटना विद्युत की तरह झटके दे–देकर उसका श्रेष्ठ रचनात्मक तत्व खींचकर बाहर निकाल लेती है।''[39]

रिपोर्ताज लेखक घटना का प्रत्यक्षदर्शी होता है। घटनाएँ उसके हृदय को अंदर तक झकझोर देती हैं, तब रिपोर्ताज विधा की सृष्टि होती है। भावनाओं के प्रबल वेग में विचार अंधड़ की तरह आते हैं और उन्हें उसी क्षण व्यक्त करना होता

है। ऐसे में भावाभिव्यक्ति सद्य प्रस्फुटित होती है जहाँ भाषा अपूर्ण होती हुई भी अपनी संप्रेषणीयता में पूर्ण होती है। वाक्य अपनी उत्तेजना से त्वरित होकर आगे बढ़ते जाते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''अरे दुर साला। काँदछिस केन?... रोता क्यों है? बाहर देख! साले तुम लोग थोड़ी सी मस्ती में जब चाहो तब राह चलते 'कमर दुलिये–दुलिये' (कमर लचकाकर, कूल्हे मटकाकर) ट्वीस्ट नाच सकते हो। रम्बा–सम्बा–हीरा–टीरा और उलंग नृत्य कर सकते हो और वृहत सर्वग्रासी महामत्ता रहस्यमयी प्रकृति कभी नहीं नाचेगी?... ए–बार नाच देख! भयंकरी नाच रही है– ता–ता–थेई–थेई, ता–ता–थेई–थेई। तीब्रा, तीब्रवेगा, शिवनर्तकी, गीतप्रिया, वाद्यरता प्रेतनृत्यपरायणा नाच रही है। जा, तू भी नाच।''[40]

भाषा के सद्य प्रस्फुटन का एक अन्य उदाहरण धर्मवीर भारती के रिपोर्ताज 'धनुष सी नदी' से उद्धृत है– ''धनुष जैसी नदी महानन्दा ने यहीं पर बाँग्लादेश के शत्रुओं को परास्त किया है। माँ हैं ये नदियाँ। दुर्गारूपिणी माँ हैं। पद्मा, मेघना, जमना और माँ है महानन्दा। आगे भी इनकी रक्षा करना माँ ये जीवन–मरण के संग्राम में लगे हैं। या देवी सर्वभूतेषू क्रांतिरूपेण संस्थिता। 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै...' मेरा नास्तिक मन चुपचाप दोहराता है।''[41]

साहित्य की भाषा गुण संपन्न होती है। उसमें प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण का समावेश हो तो अति उत्तम। रिपोर्ताज साहित्य की भाषा में ये तीनों गुण विद्यमान हैं। रिपोर्ताज घटना का 'आँखों देखा' विवरण होता है अतएव इसकी भाषा में बेबाकीपन होना चाहिए जिससे पाठकों तक यह भाषा सुग्राह्य हो सके। रिपोर्ताज विधा की भाषा में यह गुण सर्वत्र देखने को मिलता है– ''संभवतः यह कलाकृति काले पत्थर पर बनाई गई है। यही क्या कम था कि पुजारी ने आवरण उठाकर मूर्ति दिखाने की कृपा की। उससे अधिक पूछताछ की भी नहीं जा सकती थी। पार्वती का दाहिना हाथ शिव के कंधे से होता हुआ उंगलियों के सहारे भुजाओं पर टिका है। इसी हाथ के कंगन से मोती झरे थे।''[42]

ओज गुण साहित्य में उत्साह, जोश पैदा करने के लिए किया जाता है। रिपोर्ताज यद्यपि क्रांतिकारी रूपविधान है, अतः ओज गुण प्रधान भाषा रिपोर्ताज में मुख्य रूप से पायी जाती है। लगभग सभी रिपोर्ताजकारों ने ओजगुण प्रधान भाषा में

रिपोर्ताजों की रचना की है। डॉ. अली मुहम्मद के शब्दों में– ''इस प्रकार की भाषा का प्रयोग इस साहित्य में अधिकांशतः मिलता है। स्वतंत्रता–संघर्ष को तेज करने वाली कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रांगेय राघव आदि की लेखनी ने और नेपाली स्वतंत्रता संघर्ष को गति देने वाली 'रेणु' की कलम ने ओज गुण युक्त भाषा का खुलकर प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त लक्ष्मीनारायण लाल, अमृतराय, शिवसागर मिश्र, धर्मवीर भारती, विष्णुकांत शास्त्री, भदन्त आनंद कौसल्यायन, शंकर दयाल सिंह आदि ने भी इस भाषा के सफल प्रयोग किए हैं।''[43]

भाषा हृदय के भावों की वाहक तो है ही, हृदय की गहराइयों में जाकर सुख–दुख, करुणाजन्य स्थितियों एवं मनोभावों को उभारती भी है। भाषा का यह गुण माधुर्य गुण होता है। रिपोर्ताजों में माधुर्य गुण की भी प्रधानता है। रेणु, भीमसेन त्यागी, रांगेय राघव, सत्यनारायण, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आदि के रिपोर्ताजों में माधुर्य गुण से ओत–प्रोत हैं।

यह कहना आसान नहीं है कि अमुक रिपोर्ताजकार या अमुक रिपोर्ताज, इस–इस गुण की परिधि में आते हैं। हाँ, यह निविर्वाद कहा जा सकता है कि इन गुणों का प्रयोग रिपोर्ताज साहित्य में खूब हुआ है।

रिपोर्ताज, घनीभूत भावों का प्रबल प्रवाह है। अभिव्यक्ति के लिए छटपटाती अनुभूतियाँ बिना प्रवाहमान भाषा के संप्रेषणीय नहीं हो सकती। अतः हम कह सकते हैं कि प्रवाहमयता रिपोर्ताज की भाषा का प्रमुख गुण है। प्रवाहमान भाषा ही सामयिक घटना या दृश्य से उत्पन्न संवेदना की तीव्रता को वहन करने में समर्थ होती है। भाषा की इस प्रवृत्ति का उदाहरण द्रष्टव्य है– ''मगध में वीरों की कमी न थी। समुद्रगुप्त की सेना जिसने आर्यावर्त से पड़ोसी राजाओं को उखाड़ फेंका था, आटविक राज्यों को आत्म–निवेदन करने पर मजबूर किया था, दक्षिणापथ के राजाओं को 'गृहीत–प्रतिमुक्त' कर यश–विस्तार किया था, प्रचंड गणराज्यों को संत्रस्त कर दिया था, प्रत्यन्तों का 'कन्योपायन' आदि से बिजेता को संतुष्ट करने को बाध्य किया था, शक–मुरुण्डशाहि–शाहानुशाहियों को विकल कर दिया था, वह विजयवाहिनी अभी गरुड़ध्वज की छाया में खड़ी ही थी, परन्तु क्लीव और कायर रामगुप्त ने पीठ दिखा दी।''[44]

रिपोर्ताज विधा की भाषा मार्मिक होनी चाहिए। चूंकि रिपोर्ताज दमित, शोषित मानवता की गाथा है अतः मार्मिकता इसकी भाषा का अनिवार्य गुण होना चाहिए ताकि पाठकों में संवेदना जागृत कर घटना से जोड़ा जा सके। अकाल, महामारी, युद्ध, बाढ़, सूखा, शोषण, दमन और अत्याचार जन्य स्थितियों पर लिखे गए रिपोर्ताजों में इस भाषा–प्रवृत्ति के अनेकशः उदाहरण भरे पड़े हैं। 'तूफानों के बीच' रिपोर्ताज संग्रह से एक द्रष्टव्य प्रस्तुत है–

''मैं बच्चों के अस्पताल में खड़ा हूँ। सब दुध–मुँहें, दो–दो, तीन–तीन बरस के हड्डी के पुतले। मन नहीं होता कि किसी को गोद में लिया जाए। हड्डियों पर चमड़ी मढ़ी है। एक भारतीय लड़की नर्स है। कैसा भी दुख हो, उसका स्नेह ही उसका जीवन है। मैंने देखा, वह पिशाचों से बालक मुस्कराते थे। भावहीन हो गया हूँ। इलिया एहरनबुर्ग नात्सी बर्बरता के खिलाफ बहुत चिल्लाता है। पर मैं चिल्लाना नहीं चाहता, क्योंकि तुम दूर से शायद नहीं समझोगी कि मेरे सामने क्या है? लौटने पर एक दिन तुम मेरे साथ श्मशान चलना। मैं हड्डियों को एक दूसरी पर टिका दूँगा और तुम विश्वास से देखना, वह ढाँचा मुस्करा देगा।''[45]

भाषा के 'मार्मिक' पक्ष को सभी आलोचकों ने मान्यता दी है। रिपोर्ताज के संबंध में यह बात और भी प्रासंगिक हो जाती है। डॉ. अली–मुहम्मद लिखते हैं कि– ''रिपोर्ताज साहित्य में भाषा का यह गुण अतिशय भावुकता की सृष्टि करता है। इस साहित्य का कथ्य ही वह संवेदना है जिसे लेखक जीवन से अनुभव करता है और उसकी अभिव्यक्ति ही वह शिल्प है जो संवेदना जगाने का कार्य करती है। भाषा के इस रूप का साक्षात्कार इस साहित्य में पग–पग पर होता है।''[46]

ध्वनि या नाद भाषा का स्वाभाविक गुण है। ध्वनि, वर्ण, शब्द, वाक्य के परस्पर संबंधों से भाषा की निर्मिति होती है। रिपोर्ताज साहित्य की अनेकशः रचनाएँ भाषा के ध्वन्यात्मक गुण से परिपूर्ण हैं। विवेकी राय, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती आदि रिपोर्ताजकारों ने भाषा के इस गुण का प्रयोग अपने रिपोर्ताजों में किया है। ध्वन्यात्मक भाषा के प्रयोग से घटना या दृश्य की स्वाभाविकता एवं प्रामाणिकता में अभिवृद्धि होती है। 'विदापत नाच' रिपोर्ताज से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

''चलू मन, चलू मन...

धिन धिनक धिनक, धिन धिनक धिनक....

कि आहो रामा, नैहरा में अगिया लगायब कि...

डिम डिमिक, डिमिक, डिम डिमिक डिमिक...।''[47]

जब किसी व्यवस्था या व्यक्ति आधारित विसंगति, विद्रूपता एवं असमाजिक रीति–नीति, आचार–व्यवहार को बिना लाग लपेट के अभिव्यक्त किया जाता है तो व्यंग्य की सृष्टि होती है। भाषा का अनिवार्य गुण है व्यंग्यात्मकता। व्यंग्यात्मक भाषा अप्रत्यक्ष रूप से सुनने वाले के हृदय पर प्रहार करती है और सुनने वाले की स्थिति हास्यास्पद हो जाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– ''व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहास्यास्पद बना लेना हो जाता हो।''[48]

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', फणीश्वरनाथ रेणु, मणि मधुकर, श्रीकांत वर्मा, विवेकी राय, ललित शुक्ल, रांगेय राघव, धर्मवीर भारती, प्रकाशचंद्र गुप्त आदि सभी रिपोर्ताजकारों ने अपने रिपोर्ताजों में व्यंग्य का सहारा लेकर अव्यवस्था की न्यूनता को उजागर किया है। अली मुहम्मद व्यंग्य की शक्ति एवं मारक क्षमता को प्रकाशित करते हुए कहते हैं– ''रिपोर्ताज लेखक व्यंग्य के माध्यम से समाज में व्याप्त असंगतियों को उजागर करता है। भाषाई व्यंग्य बाण अपनी मारक क्षमता का तभी बोध करा सकता है, जब उसका प्रयोग पूरी परिस्थिति को समझकर, कार्य–कारण की श्रृंखला बिठाकर किया गया हो। रिपोर्ताज साहित्य में व्यंग्य भाषा का प्रयोग पूर्ण संगति और आवश्यकतानुसार यथा स्थान किया गया है। इसकी पैनी मार से संवेदना की तीव्रता कई गुना बढ़ जाती है। लगभग सभी रिपोर्ताज लेखकों ने इस भाषाई–मिसाइल का प्रयोग किया है। शोषक, अत्याचारी, रिश्वतखोर इसकी मार से तिलमिला जाते हैं।''[49]

भारत के अंग्रेजीकरण पर अपने रिपोर्ताज 'जुलूस रुका है' में विवेकी राय की व्यंग्यात्मक क्षमता का उदाहरण द्रष्टव्य है– ''हल जोतने वाले नंगे हरिजन मजदूर का लड़का स्कॉलरशिप के पैसे से पुस्तकें नहीं, रेडीमेड सूट खरीदता है। बाप की

आँखें जुड़ा जाती हैं। लड़का पढ़ रहा है, 'आफीसर' हो रहा है। सर, असली अंगरेजी –राज तो अब जमता जा रहा है।''[50]

रिपोर्ताज साहित्य में व्यंग्यात्मक भाषा ने जीवन व समाज की अमानवीय शक्तियों पर कड़े प्रहार किए हैं। तीव्र अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रक्रिया में, ये भाषा प्रयोग स्वाभाविक रूप से स्वतः प्रयुक्त हो गए हैं। अमृतराय लिखते हैं कि– ''श्रीमान, आप सचमुच श्रीमान हैं, क्योंकि दुनिया की सारी श्री बटोर–बटोर कर आप अपने तहखानों में भरते जा रहे हैं। यहाँ तक कि जब सारी दुनियाँ के आदमी भूखों मर रहे हैं, आपके सूअर गेहूँ खा–खाकर मोटे हो रहे हैं।''[51]

श्रीकांत वर्मा ने हिन्दुस्तान की गरीबी को केन्द्र में रखकर अत्यंत ही मार्मिक व्यंग्य खींचा है। वे लिखते हैं– ''तुम क्यों बीच में पड़ रहे हो? तुम्हें मैं मुफ्त देखने दूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास पैसा नहीं है। तुम हिन्दुस्तानी हो।''[52]

सती–प्रथा एक सामाजिक बुराई है। इस सामाजिक बुराई पर व्यंग्य करते हुए बलराम लिखते हैं– ''जो लोग चित्रकूट जाया करेंगे, वे लगे हाथ 'जारी की सती', की चिता की परिक्रमा करना भी नहीं भूलेंगे, खासकर वे जिनकी सती साध्वियाँ उनके साथ होंगी, ताकि उनके मरने पर उनके साथ ही जल मरने की प्रेरणा उन्हें मिल सके।''[53]

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने व्यंग्य भाषा का प्रयोग कर प्रेमचंद के उन आलोचकों पर करारी चोट की है, जो प्रत्यक्षतः उनके विरोधी थे और उनके मरने के बाद सबसे अधिक हमदर्द। प्रभाकर जी लिखते हैं– ''मैंने कहा– बाबू जी बात यह है कि हमारे देश में नर्सों की बहुत कमी है और स्यापेवालियों की बहुतायत है।''[54]

उपरोक्त रिपोर्ताजकारों के अतिरिक्त धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, भगवतशरण उपाध्याय, कुबेरनाथ राय जैसे रिपोर्ताजकारों ने व्यंग्य क्षमता से रिपोर्ताज को सँवारा है, सशक्त साहित्यिक विधा बनाया है।

रिपोर्ताज की भाषा का प्रमुख गुण है– चित्रात्मकता। रिपोर्ताजकार भाषा के माध्यम से ऐसा चित्र खींचता है कि घटना या दृश्य आँखों के सामने चलचित्र के समान साकार हो उठते हैं। ओम प्रकाश सिंहल, चित्रात्मकता को रिपोर्ताज शिल्प

का सर्वोत्तम गुण मानते हुए लिखते हैं कि– ''शिल्प की दृष्टि से रिपोर्ताज का सर्वप्रथम गुण है चित्रोपमता। नानाविध छोटी–छोटी घटनाओं और विवरणों के माध्यम से सवाक् चित्रपट के समान प्रभावी चित्र का निर्माण रिपोर्ताज का अभीष्ट होता है।''[55]

मणिम धुकर ने 'सती की देवल' का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं– ''पूरब के नाके पर कोट सती की देवल है और एक लेसुए का पीला रुख। मटमैले पत्ते रह रहकर खजले कुत्ते की तरह कान फड़फड़ाते हैं, फिर सहमे से आस–पास की सांय–सांय को सहारा देने लगते हैं। एक काली शाख नीचे की तरफ झुककर बीच में दुहरी हो गई है, जैसे अधलेटी सायंड की टांग।''[56]

चित्रात्मक भाषा का प्रयोग लगभग सभी रिपोर्ताज लेखकों ने अपने रिपोर्ताजों में किया है। रांगेय राघव, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', मणि मधुकर, निर्मल वर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, कुबेरनाथ राय, फणीश्वरनाथ रेणु, रामकुमार, भगवतशरण उपाध्याय, शिवसागर मिश्र, भदंत आनन्द कौसल्यायन, धर्मवीर भारती, विवेकी राय, ललित शुक्ल आदि ने इस भाषा का प्रयोग अत्यंत ही सजीव ढंग से किया है।

रिपोर्ताज की भाषा सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति की होती है। अतः इन रचनाओं में आँचलिकता का प्रयोग अनायास ही हुआ है। ग्रामीण पात्रों की बोली की देशज ध्वनियों से लैश सजीव भाषा का प्रयोग फणीश्वरनाथ रेणु, मणि मधुकर, विवेकी राय, रांगेय राघव, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', धर्मवीर भारती आदि ने अपने रिपोर्ताजों में खूब किए हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताजों में मगही और नेपाल के तराई क्षेत्र की भाषा की रंगत देखने योग्य है। मगही का प्रयोग शुद्ध रूप में नहीं है अपितु मगही जानने वाले आसानी से समझ सकते हें। रेणु लिखते हैं– ''गाँव में कौनो मरद–पुरुखवन केर पता न है! कहाँ, गेल हो ई सब?''

''जइते कहाँ? कमावे कोड़े ला।''– तुरत जवाब मिला।

''चुल्हवा में की पक्कत हलै? धुँइयाँ देखैहियेक।''

''पक्के के की है जे पकतई! लड़कोरिया लेल गोइठवा में अगिया सुलगत हय–ओकरे धुँइयाँ...।''

पक्के के कुछ नउ हउ– त, ई बचवा सब की खइतउ? की गे–तोर की नाम है? बोल ना लजावे है काहे? ई लइका केक्कर है?.... बीमार है? ओ?.... भुक्खल है– खाये बिना एकर एइसन दसा है...ओ... ।''[57]

न केवल आँचलिक भाषा अपितु रिपोर्ताजकारों ने स्थानीय गीतों को भी अपने रिपोर्ताज साहित्य में व्यक्त किया है। स्थानीय गीतों ने भाषा की आँचलिकता को वह शक्ति दी जिससे विषय वस्तु अपनी पूर्णता एवं स्थानीयता बोध के साथ और भी प्रामाणिक हो गया है। रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', विवेकी राय, मणि मधुकर आदि ने अपने रिपोर्ताजों में भाषा के इस अचूक शक्ति का प्रयोग किया है। 'पंक्षी की लाश' रिपोर्ताज में रेणु स्थानीय गीत के माध्यम से करुणा उभारते हैं। वे लिखते हैं–

''कटि गेल कासी–कुशी छितरी गेल थम्हवा

खुलि गेल मूँज केर डोरिया– रे सुन सखिया!

बीचहित नदिया में अइले हिलोरवा

छुटी गेलै भैया केर बहियाँ– रे सुन सखिया।

... डुबी गेलै भैया केर बेड़वा– रे सुन सखिया।''[58]

रांगेय राघव ने भी अपने रिपोर्ताजों में स्थानीय गीतों को अत्यंत सजीवता के साथ व्यक्त किया है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण–

''कांग्रेस लीगेर मिलन बिना

देशेर संकट दूर होबे ना...

दूर होबे ना।''[59]

रिपोर्ताजों में भाषा का आँचलिक रूप और भी प्रभावशाली हुआ है। इससे एक ओर तो अनुभूतियों की हू–ब–हू अभिव्यक्ति हुई है, वहीं भाषा का सौंदर्य और भी निखर उठा है।

रिपोर्ताज की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सहजता एवं सरलता है जिससे रचना एक विशिष्ट सौंदर्य से भर उठती है। शब्दों को नया अर्थ मिलता है

और अभिव्यक्ति को नई राह। रिपोर्ताज में भाषा जीवन के अत्यंत निकट आ जाती है। यही कारण है कि इस साहित्य में बोलचाल की भाषा, पात्रानुकूल भाषा, आँचलिक भाषा का रंग बहुतायत से आया है। अली मुहम्मद लिखते हैं– ''रिपोर्ताज की भाषा के संबंध में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यहाँ इसकी एक अलग पहचान उभरी है। गद्य की भाषा अपनी सहजता में जीवनधर्मी गंध लिए कितनी अर्थग्राही हो सकती है, यह इस साहित्य की भाषा से जाना जा सकता है। रिपोर्ताज लेखकों ने जन जीवन में प्रयुक्त साधारण बोलचाल की भाषा को ही गद्य की प्रकृति के अनुसार अर्थ संगति प्रदान की है। यही कारण है कि अधिकांश लेखकों ने साहित्यिक खड़ी बोली को ही रचना माध्यम के रूप में स्वीकार किया है।''[60]

संदर्भ सूची

[1] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 95
[2] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 121
[3] वही, पृ. 167
[4] वही, पृ. 186
[5] ऋणजल धनजल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.115
[6] रांगेय राघव ग्रंथावली : सं.– डॉ. सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 200
[7]वही, पृ. 237
[8] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 103
[9] क्षण बोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 188
[10] साहित्यानुशीलन : शिवदान सिंह चौहान, पृ. 57
[11] जलते और उबलते प्रश्न : विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ. 234
[12] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन, पृ. 225
[13] वही, पृ. 227
[14] वही, पृ. 226
[15] वही, पृ. 226
[16] हिन्दी रिपोर्ताज : डॉ. वीरपाल वर्मा, पृ. 99
[17] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन, पृ. 225
[18] काव्यशास्त्र : डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 252
[19] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 123
[20] रांगेय राघव ग्रंथावली : सं.– सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 200
[21] ऋणजल धनजल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 35
[22] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, पृ. 22
[23] सौन्दर्यशास्त्र के तत्व : डॉ. कुमार विमल, पृ. 218–19
[24] रेणु रचनावली, भाग 4 : सं.– भारत यायावर, पृ. 98
[25] खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 60
[26] क्षण बोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 160–61
[27] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, किताबघर, पृ. 63–64
[28] खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 16–17
[29] रेणु रचनावली, भाग 4 : सं.– भारत यायावर, पृ. 129
[30] आत्मनेपद–अज्ञेय, पृ. 42
[31] काव्यशास्त्र : डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 263
[32] आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द : बच्चन सिंह, पृ. 69
[33] ऋणजल–धनजल–फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 34
[34] गन्धमादन : कुबेरनाथ राय, पृ. 146
[35] ठूँठा आम : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 81
[36] खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 126
[37] क्षण बोले कण मुसकाए : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 155
[38] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 206
[39] जलते और उबलते प्रश्न : विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ. 234
[40] ऋणजल धनजल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 34
[41] धर्मवीर भारती ग्रंथावली : चंद्रकांत बांदिबडेकर, पृ. 135
[42] पार्वती के कंगन : ललित शुक्ल, पृ. 92
[43] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन– अली मुहम्मद, पृ. 208
[44] खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 21

[45] रांगेय राघव ग्रंथावली : सं.– डॉ. सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 231–232
[46] हिन्दी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन– डॉ. अली मुहम्मद, पृ. 210
[47] रेणु रचनावली भाग 4 : सं.– भारत यायावर, पृ. 23
[48] कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 164
[49] हिन्दी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन, पृ. 212
[50] जुलूस रुका है : विवेकी राय, पृ. 7
[51] लाल धरती : अमृतराय, पृ. 3
[52] अपोलो का रथ : श्रीकांत वर्मा, पृ. 73
[53] प्रतिध्वनियाँ : बलराम, पृ. 18
[54] क्षण बोले, कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ. 79
[55] गद्य की नई दिशाएँ : ओम प्रकाश सिंहल, पृ. 74–75
[56] सूखे सरोवर का भूगोल : मणि मधुकर, पृ. 9
[57] ऋणजल धनजल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 106
[58]वही, पृ. 49
[59] रांगेय राघव ग्रंथावली : सं.– सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 205
[60] हिन्दी रिपोर्ताज : परंपरा और मूल्यांकन, पृ. 221

उपसंहार

रिपोर्ताज विधा हिन्दी साहित्य की विधाओं में नवीन विधा है जो अपने उद्‌भव काल से एक लंबी यात्रा कर चुकी है। रिपोर्ताज को साहित्य में जिस स्थान का अधिकारी होना चाहिए वह स्थान उसे अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है। इसका कारण यह नहीं है कि इसमें उच्चकोटि का साहित्य विद्यमान नहीं है या साहित्यिक अवदान में यह किसी से कम है। वास्तविकता तो यह है कि इस विधा द्वारा भी साहित्य को एक नई पहचान मिली। यह विधा अपनी साहित्यिकता और सार्थकता में किसी भी स्तर पर कम नहीं है। हाँ, यह जरूर है कि इस साहित्य का आलोचनात्मक स्तर पर अभाव है।

'रिपोर्ताज'– फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसका प्रचलन सर्वप्रथम रूसी साहित्य में हुआ। 'रिपोर्ताज' के लिए हिन्दी साहित्य में रिपोर्ट, रिपोर्ट मात्र, आशु–निबंध, निबंधात्मक गद्य काव्य, आँखों देखा हाल, आँखों देखी रपट और सूचनिका जैसे शब्दों का चलन किया गया था किन्तु ये शब्द अपने अर्थव्याप्ति में सीमित थे। इन शब्दों से कोई न कोई विशेषता प्रकट तो अवश्य हुई किन्तु रिपोर्ताज विधा के लिए ये शब्द पर्याप्त उपयुक्त नहीं थे। हिन्दी साहित्य के विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयुक्त किए गए शब्दों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि इस विधा के लिए प्रचलित शब्द 'रिपोर्ताज' ही सर्वाधिक उपयुक्त है और फ्रांसीसी भाषा का शब्द होते हुए भी इसे हिन्दी में हूबहू अपना लिया गया। रिपोर्ताज का स्वरूप विश्लेषण के अंतर्गत रिपोर्ताज की परिभाषा के संबंध में हिन्दी साहित्य के तमाम आलोचकों, विश्लेषकों एवं रिपोर्ताजकारों द्वारा दी गई परिभाषा को विवेचित और विश्लेषित किया गया और यह तथ्य उजागर किया गया कि रिपोर्ताज विधा पत्रकारिता की देन है और इसका रिपोर्ट के साथ गहरा संबंध है किन्तु मानवीय मूल्य और संवेदनशीलता जैसे तत्त्व रिपोर्ताज को रिपोर्ट से अलग करते हैं। पल–पल परिवर्तित होने वाले मानवीय एवं साहित्यिक मूल्यों को पकड़ने में सक्षम रिपोर्ताज एक ऐसा प्रभावशाली रूप विधान है जिसमें वर्णित होने वाली, सामयिक यथार्थ घटनाएँ और उनके प्रभाव इतने संप्रेषणीय होते हैं कि ये घटनाएँ विश्व समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। द्रुतगामी वास्तविकता का वहन

करने वाली इस विधा में मानवीय मूल्य, सामयिक प्रभाव और स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति तीव्रतम होती है।

अन्य समरूप विधाओं से रिपोर्ताज का अंतर स्पष्ट करने के लिए रिपोर्ताज के तत्त्वों का विवेचन–विश्लेषण किया गया है। इस विवेचन–विश्लेषण ने रिपोर्ताज की उन संभावनाओं की पड़ताल की है जो अन्य किसी विधा में दृष्टिगत नहीं होते। वो रूप–विधायक तत्त्व ही है जो इस विधा को रिपोर्ट से रिपोर्ताज में बदल देते हैं। तत्त्वों का यह असामान्य रूप अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग रिपोर्ताज को क्रांतिकारी संघर्ष का माध्यम बना देती है जिसके आधार पर यह विधा ऐतिहासिक जीवंत तथ्य के साथ ही वर्तमान की संघर्षमयी वास्तविकता का वाहक बनता है।

रिपोर्ताज विधा पत्रकारिता से जन्मजात जुड़ी है। रिपोर्ट एवं रिपोर्ताज दोनों का पत्रकारिता से गहरा संबंध है। कुछ समानता होते हुए भी दोनों में पर्याप्त अंतर भी है। इस अंतर को सूक्ष्म दृष्टि एवं विवेक दृष्टि से परखा गया है। इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के कथन देकर 'रिपोर्ट' और थाने–अदालत में दर्ज की जाने वाली रपट से भी रिपोर्ताज की भिन्नता रेखांकित की गई है। रिपोर्ट में साधारण और नगण्य सी घटनाओं को स्थान प्राप्त हो सकता है किन्तु रिपोर्ताज किसी विशिष्ट घटना, दृश्य, उत्सव और युद्ध आदि का ही हो सकता है।

रिपोर्ताज का गद्य की अन्य विधाओं के साथ संबंध दिखाकर यहाँ यह बताने की कोशिश की गई है कि जहाँ इस विधा का उनसे समानता है, वहाँ कई स्तरों पर असमानता भी है। यद्यपि रिपोर्ताज विधा अन्य सभी गद्य विधाओं से अधिक प्रामाणिक और जीवन के निकट है अतः इस विधा का लेखन उतना आसान नहीं है जितना अन्य विधाओं का। रिपोर्ताज ने अन्य गद्य विधाओं से सामग्री लेकर अपने आप को सजाया है। अन्य गद्य विधाओं की विशिष्टताएँ रिपोर्ताज में घुलमिल गई हैं, रिपोर्ताज की अपनी हो गई है।

स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर रिपोर्ताज परंपरा का अध्ययन उसके उद्‌भव के साथ करने का प्रयास किया गया है। रिपोर्ताज विधा का उद्‌भव किस प्रकार एवं किन परिस्थितियों में हुआ, हिन्दी साहित्य में इस विधा की निर्वाध परंपरा कहां से प्रारंभ होती है, इन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की जाँच–पड़ताल करने की कोशिश की गई

है। हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज का उद्‌भव हमारी अपनी साहित्यिक परंपराओं से हुआ। स्वतंत्रता पूर्व की रिपोर्ताज परंपरा पर किया गया अध्ययन एवं विश्लेषण हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु युग को रिपोर्ताज का उद्‌भव काल ठहराता है। स्वतंत्रता पूर्व रिपोर्ताज की जो सुदृढ़ परंपरा विकसित हुई, स्वातंत्र्योत्तर काल में खूब फली–फूली। स्वतंत्रता पूर्व के कुछ रिपोर्ताजकार जैसे कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', प्रकाशचंद्र गुप्त ऐसे लेखक थे जो स्वतंत्रता पश्चात भी लिखते रहे। प्रकाशचंद्र गुप्त, अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ रेणु, लक्ष्मीनारायण लाल आदि ऐसे लेखक उभरकर आए जिनकी पहचान पहले अन्य विधाओं में ही थी। यदि संपूर्ण हिन्दी रिपोर्ताज परंपरा पर दृष्टि डालें तो कुछ उपलब्धियाँ, और कुछ संभावनाओं के नए आयाम परिलक्षित होते हैं जिसमें लेखकों के साथ–साथ पत्र–पत्रिकाओं के योगदान दृष्टिगत होते हैं। हंस, विशाल भारत, धर्मयुग, सारिका एवं साप्ताहिक हिन्दुस्तान ऐसे प्रमुख पत्र–पत्रिकाएँ थी जिन्होंने रिपोर्ताज साहित्य को न सिर्फ स्थान प्रदान की अपितु उसे उन्नत भी किया।

साहित्य का विषय असीमित होता है। लोक जीवन, समाज, राजनीति, संस्कृति एवं तमाम विषयों से गुंफित साहित्य अपनी पूर्णता प्राप्त करता है। हिन्दी रिपोर्ताज भी उन नवीन विधाओं में से एक है जो साहित्य के दायरे को समृद्ध ही नहीं करता, नए–नए विषयों के प्रयोग को गति प्रदान करता है, नई दिशा निर्धारित करता है। रिपोर्ताज विधा का सीधा संबंध उन विषयों से जुड़ता है जिन्हें साहित्य और जीवन में भेद करके नहीं देखा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि जितने भी विषय जीवन से जुड़े हैं, समाज एवं संस्कृति के हैं, उन सबसे रिपोर्ताज न सिर्फ टकराता है, अपितु उन्हें आत्मसात कर साहित्य के मायने को अलग ढंग से परिभाषित भी करता है।

हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य का कथ्य विश्लेषण के अंतर्गत उन सभी विषयों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है जो मानव जीवन से जुडे हैं, उसके प्रगति एवं संस्कृति से जुड़े हैं। उन तथ्यों को भी विश्लेषित किया गया है जो प्रकृति के कारण–कार्य की परिधि में आते हैं। प्राकृतिक आपदाएँ, मानवनिर्मित समस्याएँ, यांत्रिक दुर्घटनाएँ, साहित्यिक समस्याएँ एवं ऐतिहासिक तथ्यों को खँगालने का

प्रयास किया गया है जो रिपोर्ताजों में अत्यंत ही मार्मिक ढंग से कला का रूप प्राप्त किए हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, विवेकीराय, धर्मवीर भारती, कुबेरनाथ राय, रांगेय राघव, लक्ष्मीनारायण लाल, मणिमधुकर आदि रिपोर्ताजकारों ने अपनी समर्थ लेखनी के माध्यम से रिपोर्ताज साहित्य को समृद्ध किया है, इसकी विवेचना की गई है। रिपोर्ताज वस्तु या घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया पर आधारित होता है। घटनाएँ प्राकृतिक और मानवजनित दोनों हो सकती हैं। चूंकि रिपोर्ताज लेखक की तीव्र संवेदना घटनाओं एवं उसके प्रभाव के साथ होती है ऐसी स्थिति में घटना चाहे प्राकृतिक हो या मानवजनित, समान संवेदना की माँग करती है। हिन्दी रिपोर्ताज में साहित्यिक समस्याओं को भी विषय वस्तु बनाया गया है। किसी साहित्यकार के स्मारक, जन्मभूमि, कर्मभूमि या किसी साहित्य सम्मेलन, गोष्ठी, पुरस्कार वितरण समारोह, अभिनंदन समारोह, पुस्तक विमोचन समारोह की अनुभूतियों को भी रिपोर्ताज विधा के अंतर्गत विवेचित और विश्लेषित किया गया है। ऐतिहासिक तथ्यों को भी विवेचन और विश्लेषण के क्रम में स्थान प्राप्त हुआ है जिसमें महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को रिपोर्ताज का विषय बनाया गया है। इतिहास के किन्हीं अनछुए, विस्तृत पहलुओं को उजागर करने के लिए लेखक उन्हें आधार रूप में ग्रहण कर रचना का ताना–बाना बुनता है।

रिपोर्ताज एक क्रांतिकारी विधा है जो युगीन संदर्भों और जीवन मूल्यों का सचेत संवाहक है। रिपोर्ताज का ताना–बाना जीवन मूल्यों के धागे से ही बुना जाता है। आज का समाज इतना द्रुतगामी है, उसका रूप इतनी तेजी से बदलता है कि आज की जो गंभीर समस्याएँ हैं जब तक उनका समाधान खोजते हैं तब तक वे पुरानी हो जाती हैं। नित नए–नए प्रश्नों का उभरना मानवीय जीवन और समाज से संबद्ध होता है पर उनका उत्तर खोजा जाना आवश्यक है क्योंकि इन प्रश्नों के समाधान पर ही मानव जाति की सभ्यता और संस्कृति का भविष्य निर्भर है। इन घटनाओं का प्रभाव सर्वव्यापी होता है। पूरा राष्ट्र इन घटनाओं की सीमा में होता है। रिपोर्ताज विधा युग की समस्याओं को पहचानने, पकड़ने एवं उनका समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। साहित्य रचना का उद्देश्य है मानव के यथार्थ सत्य में छुपे आत्मा के सौंदर्य को खोजकर भाव के माध्यम से विचार से समन्वय करके प्रस्तुत

करना। इस उद्देश्य को रिपोर्ताजकार तभी प्राप्त कर सकता है जब वह अपने युग के प्रति ईमानदार हो और जीवन मूल्यों की उसे समझ हो। देशप्रेम, स्वतंत्रता, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, मानवीय संवेदना एवं जीवनानुभव जैसे मूल्यों को हिन्दी रिपोर्ताज साहित्य : 'युगीन संदर्भ और जीवन मूल्य' विषयान्तर्गत विवेचित एवं विश्लेषित किया गया है।

रिपोर्ताज साहित्य का अनुभूति पक्ष जितना विशद, मार्मिक, समृद्ध एवं जीवनमूल्यों को पकड़ने में समर्थ है, उसका अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही समृद्ध है। रिपोर्ताज विधा ने अन्य विधाओं से सामग्री एवं रचना कौशल लेकर अपने आप को सजाया है, सँवारा है। रिपोर्ताजकारों ने शैली–शिल्प के नए–नए प्रयोग किए हैं। किसी भी बात को कहने का नया ढंग विकसित किया गया है। इसकी कथ्य की नवीनता ही इसकी प्राण है जिसके द्वारा सामान्य से सामान्य संदर्भों को भी विशिष्ट बना दिया है। रिपोर्ताज लेखक का शब्द भंडार अत्यंत विशाल दिखाई देता है। विषय और स्थान के अनुसार ही शब्द विन्यास किया गया है। शब्दों का तेजी से प्रस्फुटन और उन्हें उसी तेजी से अर्थ और स्थान देकर रिपोर्ताजकारों ने यह महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया है जो अन्य विधा के रचनाकारों के लिए असंभव सा जान पड़ता है। रिपोर्ताजकारों ने बिंबों और प्रतीकों का उपयोग रिपोर्ताज की प्रभावशीलता को तीव्र करने में किया है। बिंबों और प्रतीकों का सफल प्रयोग रिपोर्ताज को काव्यानुभूति के निकट ला खड़ा कर देती है। रिपोर्ताज की भाषा सामान्यतः गद्य विधा की भाषा नहीं होती है। अगर रिपोर्ताज तीव्रगामी एवं क्रांतिकारी विधा है तो उसकी भाषा भी उसी के अनुरूप ही होगी। सद्य प्रस्फुटन, गुणसंपन्नता, प्रवाहमयता, मार्मिकता, ध्वन्यातमकता, व्यंग्यात्मकता, अलंकारिता, आँचलिकता आदि प्रमुख भाषायी विशिष्टता है जिनसे रिपोर्ताजारों ने रिपोर्ताज विधा को समृद्ध किया है। अधिकांश रिपोर्ताज साहित्य जीवन के दुख–दैन्य, करुणा–संत्रास, संघर्ष आदि से संबंधित हैं। अतः अलंकार, ध्वनि, व्यंग्य, आदि कविता के ही नहीं अपितु रिपोर्ताज के भी प्रभावी अभिव्यक्ति साधन हो गए हैं।

रिपोर्ताज साहित्य की शैली किसी बँधे'–बँधाए मार्ग से नहीं गुजरी है। विषयानुसार वह ढली है। बाढ, सूखा–अकाल और युद्ध की मार्मिक दशाओं में वह

भावात्मक रही तो व्यवस्था का पर्दाफाश करते समय वह व्यंग्यात्मक हो गई। कहना चाहे तो कह सकते हैं कि रिपोर्ताज साहित्य की अपनी एक शैली विकसित हुई जिसे रिपोर्ताज शैली कह सकते हैं।

इस शोध कार्य में रिपोर्ताज के अनुभूति एवं अभिव्यक्तिक पक्ष में नए एवं विधागत विशिष्ट संभावनाओं को तलाशा गया है जिसके आधार पर रिपोर्ताज संबंधी नई धारणाओं को बल मिलेगा। अन्य गद्य विधाओं की भाँति रिपोर्ताज को भी उसका स्थान प्राप्त हो सके इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विवेचन और विश्लेषण किया गया है। इस शोध प्रबंध में रिपोर्ताज साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए यह तथ्य स्पष्ट किया गया है कि अभी भी रिपोर्ताज साहित्य का शास्त्रीय विवेचन और विश्लेषण किया जाना शेष है। अन्य विधाओं की तरह रिपोर्ताज विधा शोध का हिस्सा बने, इसके लिए सुधी जनों को अपनी रुचि–दिखानी होगी। यह तथ्य भी प्रकट किया गया है कि अभी भी अनेक रिपोर्ताज उपलब्ध नहीं हैं। पुरानी पत्र–पत्रिकाओं से ढूँढकर उनका पुनर्प्रकाशन आवश्यक है। रिपोर्ताज विधा में लेखन हेतु अपार संभावनाएँ हैं अतएव नए लेखकों को रिपोर्ताज लेखन हेतु प्रेरित किया जाए और विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में इस विधा को समुचित स्थान मिले जिससे भविष्य में शोध की संभावनाएँ विकसित हो सकें।

संदर्भ–ग्रंथ–सूची

प्राथमिक स्रोत

1 उपेन्द्रनाथ अश्क : रेखायें और चित्र
नीलाभ प्रकाशन,
इलाहाबाद, 1955

2 कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : क्षण बोले कण मुस्काए
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
पाँचवाँ संस्करण, 2003

3 कुबेरनाथ राय : गंधमादन
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,
तृ सं. 1998

4 धर्मवीर भारती : मुक्तक्षेत्रे – युद्धक्षेत्रे
युद्ध यात्रा
धर्मवीर भारती ग्रंथावली, खंड–सात
संपादक–चंद्रकांत बांदिवडेकर,
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999

5 निर्मल वर्मा : हर बारिश में
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,
चं सं. 2006

6 प्रकाशचंद्र गुप्त : रेखाचित्र
विद्यार्थी ग्रंथागार,
इलाहाबाद, प्र.सं. 1962

7 फणीश्वरनाथ रेणु : ऋणजल – धनजल
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
नई दिल्ली, 1977
: नेपाली क्रांति कथा
रेणु रचनावली, भाग–4,
सं.– भारत यायावर,
राजकमल प्रकाशन

8 भगवतशरण उपाध्याय : खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली,
द्वितीय सं.–2005

9 भदंत आनंद कौसल्यायन : देश की मिट्टी बुलाती है
संस्कार साहित्यमाला, कैलाश भवन,
बंबई, प्रथम संस्करण, 1966

10 मणि मधुकर : सूखे सरोवर का भूगोल
प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली
प्रथम संस्करण–1981

11 यशपाल जैन : उत्तराखण्ड के पथ पर
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली, 1958

12 रघुबीर सहाय : वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण–1983

13 रांगेय राघव : तूफानों के बीच
रांगेय राघव ग्रंथावली–8
सं.–डॉ. सुलोचना रांगेय राघव
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1982

14 ललित शुक्ल : सोजालोबो
यूनाइटेड बुक हाउस, चाँदनी चौक
दिल्ली, प्र. सं.– 1981
: पार्वती के कंगन
किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली
प्र. सं.–1991

15 विवेकी राय : जुलूस रुका है
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र. सं. – 1977

16 शिवसागर मिश्र : वे लड़ेंगे हजार साल
प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार,
दिल्ली 1981

17 श्रीकांत वर्मा : अपोलो का रथ
राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज,
नई दिल्ली, प्र.सं. 1975

द्वितीयक स्रोत

1 अली मुहम्मद : हिन्दी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन
फस्ट एडीसन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण– 2004

2 ओम प्रकाश सिंह (संपादक) : आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, भाग 3
प्रकाशन संस्थान
नयी दिल्ली, 2007

3 ओमप्रकाश सिंहल : गद्य की नयी दिशाएँ
पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1981

4 अंजलि तिवारी : फणीश्वरनाथ रेणु का साहित्य
ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1983

5 कामेश्वरशरण सहाय : हिन्दी का संस्मरण साहित्य
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1982

6 डॉ. कुमार विमल : सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
नई दिल्ली, 1998

7 कृष्णदेव झारी : भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत
शारदा प्रकाशन, दरियागंज
नई दिल्ली

8 कैलाशचन्द्र भाटिया : हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ
यूनाइटेड बुक हाउस, चाँदनी चौक,
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979

9 खेलचन्द आनन्द : आधुनिक हिन्दी गद्य
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 1976

10 गुलाब राय : काव्य के रूप
आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट
दिल्ली 1981

11 गोविन्द रजनीश (संपादक) : रांगेय राघव का रचना संसार
मैकमिलन इंडिया लि., कम्युनिटी सेंटर
नारायण, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1982

12 जगदीशचन्द्र जोशी : हिन्दी गद्य साहित्य – एक सर्वेक्षण
चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1966

13 जीवन प्रकाश जोशी : हिन्दी गद्य के सोपान
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1960

14 तारिणीचरण दास : साहित्य और उसकी विविध
विधाओं का अध्ययन
सासनीगेट, अलीगढ़, प्रथम सं.–1981

15 द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी व
झाबर मल्ल शर्मा (संपादक) : माधव मिश्र निबन्ध माला
इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग, संवत 1992

16 दिविक रमेश : नये कवियों के काव्य–शिल्प–सिद्धांत
पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली 1991

17 धर्मवीर भारती,
लक्ष्मीकांत वर्मा (संपा) : निकष (तीसरा और चौथा
संयुक्त संकलन)
साहित्य भवन, प्रा. लि. प्रयाग,
जनवरी 1957

18 धीरेन्द्र वर्मा (संपादित) : हिन्दी साहित्य कोश
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
द्वितीय संस्करण, संवत् 2020 वि.

19 नगेन्द्र (संपादक) : हिन्दी साहित्य का इतिहास
मयूर पेपर बैक्स, नोएडा,
छब्बीसवाँ संस्करण, 1999

20 नमिता सिंह : कुबेरनाथ राय और उनका साहित्य
ग्रंथायन, सासनीगेट, अलीगढ़,
प्रथम संस्करण 1982

21 नरेन्द्र कोहली : हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत
वाणी प्रकाशन, दरियागंज
नई दिल्ली, 1989

22 पुष्पपाल सिंह : हिन्दी साहित्य : आठवाँ दशक
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1984

23 पुष्पा आनंद भरकर : धर्मवीर भारती – व्यक्ति और
साहित्यकार
अलका प्रकाशन, कानपुर, 1987

24 पुष्पा सुधाकर जतकर : रचनाकार रेणु
वाणी प्रकाशन, दरियागंज,
नयी दिल्ली, 1992

25 प्रकाशचन्द्र गुप्त : आधुनिक हिन्दी साहित्य – एक दृष्टि
आलोक प्रकाशन, बीकानेर, 1952

26 प्रकाशचन्द्र गुप्त : आज का हिन्दी साहित्य
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज,
नई दिल्ली, 1996

27 बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास
लोकभारती प्रकाशन, विद्यार्थी संस्करण
महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 2003

28 बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दरियागंज, नयी दिल्ली, 1996

29 बच्चन सिंह : हिन्दी आलोचना के बीज शब्द
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली
तृतीय संस्करण, 2001

30 बलवन्त लक्ष्मण कोटमिरे : हिन्दी गद्य के विविध रूपों का
उद्‌भव और विकास
किताब महल, इलाहाबाद, प्र. स. 1958

31 बहादुर सिंह : हिन्दी साहित्य का इतिहास
विवेक प. हाउस, चौड़ा रास्ता
जयपुर 1990

32 ब्रजरत्न दास : भारतेन्दु हरिश्चंद्र
हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, तृ. सं.
सन, 1962

33 भगीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी, एकादश संस्करण, 1994

34 भारत यायावर (संपादक) : रेणु का जीवन
वाणी प्रकाशन, आवृत्ति
दरियागंज, दिल्ली 2010

35 भारत यायावर (संपादक) : रेणु के साथ
वाणी प्रकाशन
दरियागंज, दिल्ली, 2002

36 मक्खनलाल शर्मा : हिन्दी रेखाचित्र – सिद्धान्त और विकास
शब्द और शब्द, राजौरी गार्डन,
नई दिल्ली

37 मन्मथनाथ गुपत (संपादक) : समसामयिक हिन्दी साहित्य :
उपलब्धियाँ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज,
नई दिल्ली, 1967

38 माज़दा असद (संपादक) : गद्य के विविध रूप
ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली,
संस्करण 1994

39 माज़दा असद : गद्य की नयी विधाओं का विकास
ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 1991

40 माधुरी दुबे : हिन्दी गद्य का वैभव काल
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1960

41 मनोज मिश्र : मैंने दंगा देखा
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
दरियागंज, दिल्ली, 2007

42 मुरारीलाल गोयल 'शापित' : द्विवेदी युग : गद्य साहित्य – पं. माधव
प्रसाद मिश्र का योगदान,
साहित्य केन्द्र प्रकाशन
दिल्ली, प्र. सं.– 1987

43 मोहन अवस्थी (संपादक) : हिन्दी निबंध की विभिन्न शैलियाँ,
फैक्सटन प्रेस,
इलाहाबाद, 1969

44 राजेन्द्र यादव : कहानी : स्वरूप और संवदेना
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज,
नई दिल्ली, 1968

45 रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
द्वितीय संस्करण 1968

46 रामविलास शर्मा : प्रगति और परम्परा
किताब महल, जीरो रोड, इलाहाबाद

47 रामविलास शर्मा : कथा विवेचना और गद्य शिल्प
वाणी प्रकाशन, कमलानगर, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1982

48 रेखा अवस्थी : प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य
मैकमिलन इंडिया लि. नारायणा
नई दिल्ली–1978

49 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1968

50 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : जलते और उबलते प्रश्न
बोहरा प्रकाशन, जयपुर, 1969

51 वीरपाल वर्मा : हिन्दी रिपोर्ताज
कुसुम प्रकाशन,
आदर्श कॉलोनी, मुजफ्फरनगर,
प्रथम संस्करण 1987

52 श्याम सुंदर घोष : साहित्य के नये रूप
कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड
अजमेर, 1969

53 शिवगोपाल मिश्र : प्राकृतिक आपदाएँ
ज्ञानगंगा, चावड़ी बाजार, दिल्ली, 2013

54 शिवदान सिंह चौहान : साहित्यानुशीलन
आत्माराम एन्ड सन्स,
कश्मीरी गेट, दिल्ली 1955

55 शान्तिस्वरूप गुप्त व सत्यदेव चौधरी : भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन,
अशोक प्रकाशन, 1971

56 सिस्टर क्लेमेंट मेरी : हिन्दी साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद

57 सुरेन्द्र चंद्र त्यागी (संपादक) : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य
आशिर प्रकाशन, सहारनपुर,
प्र. सं. 1986

58 हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर
राजकमल प्रकाशन
प्रा. लि. दरियागंज
दिल्ली 1980

59 हरवंशलाल शर्मा व कैलाशचंद्र भाटिया (संपादक) : हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास भाग–14
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

60 हरवंशलाल शर्मा : हिन्दी रेखाचित्र
हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उ. प्र., 1969

पाश्चात्य साहित्य पुस्तकें :–

1 एल्बर्ट विलियम्स जानरीड : टैन डेज दैट शुक दा वर्ल्ड–
हिन्दी अनुवाद
''दस दिन जब दुनिया हिल उठी''
प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1987
हिन्दी अनुवादक– त्रिभुवन नाथ
वितरक संस्था– पीपुल्स पं. हाउस (प्रा.)
लिमिटेड, रानी झांसी रोड, दिल्ली 1987

2 जूलियस फ्यूचिक : नोट्स फ्रॉम गैलोज
हिन्दी अनुवाद– फांसी के तख्ते से
अनुवादक– नेमिचंद्र जैन
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
दिल्ली; 2007